प्रवचन-क्रम

पहला प्रवचन

नी सईयो मैं गई गुवाची

पहला प्रश्नः ओशो, आज प्रारंभ होने वाली प्रवचनमाला का शीर्षक हैः आपुई गई हिराय। निवेदन है कि संत पलटू के इस वचन का आशय हमें समझाएं।

आनंद दिव्या, पलटू का वचन महत्वपूर्ण है। छोटा, लेकिन ऐसे जैसे कोई कुंजी हो कि बड़े से बड़े ताले को खोल दे, कि ताले को खोल कर एक पूरे साम्राज्य का मालिक तुम्हें बना दे।

सूत्र तो छोटे ही होते हैं। लेकिन सूत्रों में छिपे हुए रहस्य बड़े होते हैं। एक-एक सूत्र एक-एक शास्त्र बन सकता है। सूत्र तो यूं है जैसे कोई हजारों गुलाब के फूलों को निचोड़े और एक बूंद इत्र बने। लेकिन उस एक बूंद इत्र की कीमत हजारों फूलों से भी ज्यादा है। उस एक बूंद इत्र की सुगंध, हजारों फूल जो काम न कर सकें, कर सकती है।

पलटू सीधे-सादे आदमी हैं, पंडित नहीं हैं, शास्त्रों के ज्ञाता नहीं हैं, लेकिन स्वयं का अनुभव किया है। और वही शास्त्रों का शास्त्र है। वेद से चूके तो कुछ खोओगे नहीं; अपने से चूके तो सब गंवाया। कुरान आई या न आई चलेगा, लेकिन स्वयं की अनुभूति तो अनिवार्य है।

जो अपने को बिना जाने इस जगत से विदा हो जाते हैं, वे आए ही नहीं; आए तो व्यर्थ आए; उन्होंने नाहक ही कष्ट झेले। फूल चुनने आए थे और कांटों में ही जिंदगी बिताई। आनंद की संभावना थी, ऊर्जा थी, बीज थे, भविष्य था, लेकिन सब मटियामेट कर डाला। जिससे आनंद बनता उससे विषाद बनाया। जो अमृत होता उससे जहर निर्मित किया। जिन ईंटों से स्वर्ग का महल बनता उन्हीं ईंटों से, अपने ही हाथों से, नरक की भट्टियां तैयार कीं। और चूक छोटी सी, चूक बड़ी छोटी सी--कि अपने को बिना जाने जीवन की यात्रा पर चल पड़े; अपने को बिना पहचाने जूझ गए जीवन के संघर्ष में; अपने को बिना पहचाने हजार-हजार कृत्यों में उलझ गए; खूब बवंडर उठाए, आंधियां उठाईं, तूफान उठाए; दौड़े, आपाधापी की, छीना-झपटी की; मगर यह पूछा ही नहीं कि मैं कौन हूं, कि मेरी नियति क्या है, कि मेरा स्वभाव क्या है।

और जब तक कोई व्यक्ति अपने स्वभाव को न जान ले, जो भी करेगा गलत करेगा; और जिसने स्वभाव को जाना, वह जो भी करेगा सही करेगा।

इसलिए मैं तुम्हें नीति नहीं देता हूं और न कोई ऊपर से थोपा गया अनुशासन देता हूं; देता हूं केवल एक प्यास--एक ऐसी प्यास जो तुम्हें स्वयं को जानने के लिए उद्वेलित कर दे, जो तुम्हारे भीतर एक ऐसी आग जलाए कि न दिन चैन न रात चैन, जब तक कि अपने को न जान लो।

और जिसने भी अपने को जाना है, फिर कुछ भी करे, उसका सारा जीवन सत्य का जीवन है। लोग पहचानें कि न पहचानें, लोग मानें कि न मानें, स्वभाव की अनुभूति के बाद, सत्य की किरणें वैसे ही विकीर्णित होने लगती हैं जीवन से, जैसे सुबह सूरज के ऊगने पर रात विदा हो जाती है, और पक्षियों के कंठों में गीत आ जाते हैं, और फूलों में प्राण आ जाते हैं। रात भर सोए पड़े थे, आंखें खोल देते हैं। पंखुरियां खुल जाती हैं, गंध विकीर्णित होने लगती है। ऐसे ही स्वयं का अनुभव परम का अनुभव है।

पलटू का पूरा वचन हैः

पलटू दीवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।

पिय को खोजने मैं चली, आपुई गई हिराय।।

ऐसी किंवदंती है कि चीन की दीवाल, जो कि दुनिया की सबसे बड़ी दीवाल है, उसमें कुछ ऐसे स्थल हैं कि जिन पर खड़े होकर अगर आदमी दूसरी तरफ झांके, तो जोर से कहकहा लगा कर हंसता है और कूद पड़ता है।

कहानी ही है, लेकिन कहानी महत्वपूर्ण है, कहानी प्रतीकात्मक है, कहानी राज-भरी है। जो मित्र साथ आए थे और जो दीवाल के नीचे खड़े राह देखते हैं कि जो चढ़ गया है दीवाल पर, वह खबर देगा कि उस पार क्या है! लेकिन वह तो कहकहा लगा कर हंसता है और छलांग मार जाता है। वह तो भूल ही जाता है कि पीछे मित्र भी खड़े थे, कि संगी-साथी भी आए थे, कि उन्हें खबर भी देनी है, कि उन्होंने इसीलिए चढ़ने में सहायता दी है।

और संगी-साथी बड़ी मुश्किल में पड़ जाते हैं। राज और भी गहरा हो गया। रहस्य मिटा तो नहीं, और भी उलझ गया। पहेली सुलझी तो नहीं, और बड़ी हो गई। अब तक तो यही सवाल था कि दीवाल के उस पार क्या है? अब यह भी सवाल है कि जिस आदमी को हमने भेजा था उसने लौट कर हमें यह भी न कहा कि क्या है! और कहकहा क्यों लगाया? हंसा क्यों खिलखिला कर? और खिलखिला कर हंसता यह भी ठीक था, भलामानस बता तो जाता कि बात क्या है। कूद ही गया, खो ही गया। उसी कहानी की तरफ यह इशारा है।

पलटू दीवाल कहकहा!

पलटू कह रहे हैं, परमात्मा ऐसी जगह है, वह प्यारा ऐसी जगह है जैसे दीवाल कहकहा।

मत कोउ झांकन जाय।

कोई झांकने मत जाना। रोकते, सावधान करते, सचेत करते--परमात्मा को खोजने मत निकलना। गांठ बांध लो यह बात--कहते पलटू--कि परमात्मा को खोजने जो गया खतरे में पड़ा। खतरा क्या है? खतरा हैः

पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।

गई तो थी खोजने पिया को, मगर खुद खो गई। चले तो थे पाने कुछ, जो पास था वह भी गंवा बैठे। मगर पलटू का इशारा समझना। पलटू यह कह रहे हैं कि मैं तुम्हें सावधान तो किए देता हूं, इसलिए सावधान किए देता हूं कि पीछे मुझसे न कहना कि यह तुमने किस खोज पर हमें भेज दिया, यह तुमने कैसी उलझन में हमें डाल दिया! पीछे मुझे मत कहना। लेकिन प्यारे को अगर खोजना हो तो इतनी तैयारी से चलना। अपने को पूरा दांव पर लगा सकते हो तो ही कदम उठाना। खुद को खोने की तैयारी हो तो ही उसे पाने के अधिकारी हो सकोगे।

धन्यभागी हैं वे, जिनमें इतना साहस है, जिनकी ऐसी छाती है कि अपने को गंवा सकते हैं, क्योंकि वे ही उस परम को पाने के अधिकारी बनते हैं। जो मिटने को राजी है वह विराट हो जाता है। क्योंकि इस जगत में मिटता तो कुछ भी नहीं; केवल सीमाएं बनती हैं और मिटती हैं। बूंद जब सागर में उतरती है तो क्या खोती है? अपने को नहीं खोती। एक अर्थ में खोती है। बूंद तो अब न रही, बूंद को बनाने वाली सीमाएं तो अब गईं। वह जो क्षुद्र संकीर्ण जगत था बूंद का, वह जो घेरा था, परिधि थी, वह जो नक्शा था, वह तो गया। बूंद तो गई बूंद की तरह। लेकिन सच में क्या बूंद ने कुछ खोया, कुछ गंवाया? या कमाया? जो बूंद हैं अभी उनको तो यूं ही लगेगा कि सिर्फ गंवाया। लेकिन सागर जानता है--और बूंद जो अब सागर हो गई है वह भी जानती है--कि गंवाया कुछ भी नहीं, पाया सब कुछ; गंवाईं सिर्फ क्षुद्र सीमाएं और पा लिया विराट।

पलटू कह रहे हैंः पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।

सोचा तो था कि प्यारे को खोज लूं। सोचा तो था कि बिना उसे खोजे कैसे चलेगा! सोचा तो था कि बिना उसे जाने जिंदगी का क्या अर्थ, क्या मूल्य! जीवन में कैसा उत्सव? कैसा आनंद? लेकिन खोज बड़ी अजीब जगह पर जाकर समाप्त हुई।

पलटू दीवाल कहकहा!

परमात्मा क्या था दीवाल कहकहा था। हंसी तो आई, बहुत आई। हंसी किस पर आई? हंसी अपने पर आई।

कहते हैं, बोधिधर्म जब ज्ञान को उपलब्ध हुआ, परम ज्ञान को उपलब्ध हुआ, तो सात दिन तक अहर्निश हंसता रहा, रुका ही नहीं, सोया नहीं। संगी-साथी परेशान हुए। शक तो उन्हें हमेशा था कि यह आदमी कुछ पागल है, दीवाना है। सत्य के खोजी सदा ही झूठ की दुनिया में रहने वाले लोगों को दीवाने मालूम पड़े हैं। और ठीक भी है कि दीवाने मालूम पड़ें। क्योंकि झूठ की दुनिया का गणित अलग, तर्क अलग, हिसाब-किताब अलग, सोच-समझ अलग। झूठ की दुनिया का आयाम अलग। सत्य की दुनिया का गणित और। सत्य की दुनिया का तर्क और। सत्य की दुनिया के तराजू और। सत्य की दुनिया और असत्य की दुनिया के बीच कहीं कोई तालमेल नहीं; एक-दूसरे के विपरीत। यहां बाहर के धन की कीमत है; वहां भीतर की धन्यता की कीमत है। यहां बाहर के पद का मूल्य है; और वहां भीतर परमपद की ही प्रतिष्ठा है। यहां बाहर की दुनिया में, झूठ की दुनिया में, खिलौनों से लोग उलझे हैं; और भीतर की दुनिया में जिन्हें जाना है उन्हें खिलौने तोड़ देने पड़ते हैं। यहां बाहर हर आदमी जल रहा है, आग में जल रहा है; अगर भागता भी है तो एक आग से दूसरी आग में भागता है।

सर पर ढेरों धूल जमी है, भागो!

टखने-टखने आग बिछी है, भागो!

बंद है कारोबार, दुकानें खाली;

और सड़कों पर भीड़ लगी है, भागो!

मंजिल है दो-चार कदम की दूरी पर;

और आगे दीवाल खड़ी है, भागो!

धरती का दिल कांप रहा है शायद;

घर-घर हाहाकार मची है, भागो!

सर पर ढेरों धूल जमी है, भागो!

टखने-टखने आग बिछी है, भागो!

मगर भागोगे कहां? यहां से वहां। एक कारागृह से दूसरे कारागृह में। एक दुकान से दूसरी दुकान में। एक मंदिर से दूसरी मस्जिद में। एक मस्जिद से दूसरे गिरजाघर में। बाइबिल से कुरान, कुरान से गीता, गीता से वेद। भागोगे कहां? एक शब्द से दूसरा शब्द, एक उलझन से दूसरी उलझन। हां, थोड़ी देर राहत मिलती है।

जैसे लोग मरघट की तरफ अरथी को लेकर चलते हैं तो रास्ते में कंधा बदल लेते हैं; बाएं कंधे पर रखी थी अरथी, दाएं पर रख लेते हैं। वजन वही, कंधे भी अपने हैं, फिर बायां हो कि दायां, क्या फर्क पड़ता है? लेकिन थोड़ी देर को राहत मिल जाती है। बायां थक गया, दाएं पर रख लेते हैं। फिर दायां थक गया तो बाएं पर रख लेते हैं।

यूं ही चल रही है दुनिया। हिंदू मुसलमान हो जाते हैं, मुसलमान हिंदू हो जाते हैं। ईसाई हिंदू हो जाते हैं, हिंदू ईसाई हो जाते हैं। जैन बौद्ध हो जाते हैं, बौद्ध जैन हो जाते हैं। कंधे बदल लेते हैं, मगर अरथी वही--वही मुर्दा लाश! अपनी ही लाश ढो रहे हैं, किसी और की भी नहीं।

सर पर ढेरों धूल जमी है, भागो!

टखने-टखने आग बिछी है, भागो!

मगर भागोगे कहां? यहां सारी पृथ्वी पर तो आग बिछी है। एक दुख से दूसरा दुख। एक उलझन से दूसरी उलझन। कभी-कभी यूं हो जाता है कि बड़ी उलझन में पड़ जाओ तो छोटी उलझन भूल जाती है। जैसे सिर में

दर्द था। और डाक्टर को दिखाने गए कि सिर में दर्द है। और डाक्टर ने कहा, सिरदर्द की फिक्र छोड़ो, अरे यह कुछ भी नहीं--तुम्हारे पेट में कैंसर है!

सिरदर्द एकदम समाप्त हो जाएगा। इतना बड़ा उपद्रव खड़ा हो गया कि पेट में कैंसर है। अब किसको फुरसत पड़ी! अब किसके पास समय बचा! अब तो सिरदर्द यूं मालूम पड़ेगा जैसे कोई विलास कर रहे हो, कोई भोग कर रहे हो, कोई मजा ले रहे हो। सिरदर्द! बात गई।

बर्नार्ड शा के जीवन में यूं उल्लेख है। उसने आधी रात को अपने चिकित्सक को फोन किया। बर्नार्ड शा की उम्र भी तब अस्सी साल थी। और चिकित्सक भी उसका पुराना, पचास साल पुराना चिकित्सक था। उसकी उम्र कोई पचासी साल थी। आधी रात को खबर की कि जल्दी आओ, मुझे यूं लगता है कि हृदय का दौरा पड़ा है। बचूंगा नहीं! नहीं तो आधी रात तुम्हें जगाता नहीं। और मुझे मालूम है कि तुम मुझसे भी ज्यादा बूढ़े, मगर तुम पर ही मेरा भरोसा है और तुम्हीं मेरे शरीर को जानते भी हो। मजबूरी है, क्षमा करना, लेकिन आना होगा।

बूढ़ा चिकित्सक उठा। किसी तरह पहुंचा। सीढ़ियां चढ़ा। आधी रात, बूढ़ा आदमी, हाथ में डाक्टर का वजनी बैग, लंबी सीढ़ियों की चढ़ाई। जब ऊपर पहुंचा तो बैग को तो पटक दिया उसने फर्श पर और कुर्सी पर लेट गया, हांफ रहा था और पसीना-पसीना हो रहा था। बर्नार्ड शा घबड़ा कर बैठ गया कि क्या मामला है! उस डाक्टर ने तो आंखें बंद कर लीं, उसने इतना ही कहा कि मालूम होता है हृदय का दौरा पड़ रहा है। बर्नार्ड शा भागा, ठंडा पानी छिड़का, पंखा किया, हाथ-पैर दबाए, नाड़ी देखी, जो भी बन सकता था वह किया। पंद्रह-बीस मिनट में डाक्टर थोड़ा स्वस्थ हुआ, आंख खोलीं, अपना बैग उठाया और बर्नार्ड शा से कहा कि मेरी फीस!

बर्नार्ड शा ने कहा, क्या मजाक करते हो! फीस मैं तुमसे मांगूं या तुम मुझसे? इलाज तुमने मेरा किया ही नहीं; इलाज तो दूर, आकर और झंझट खड़ी कर दी। मैं तो भूल ही गया कि मुझे हृदय का दौरा पड़ा है। मैं तो तुम्हें बचाने में लग गया।

चिकित्सक ने कहा कि वह मेरा इलाज था। तुम्हें हृदय का दौरा भुलाने के लिए मैंने यह व्यवस्था की थी, यह आयोजन था।

बर्नार्ड शा ने जिंदगी में बहुत लोगों से मजाक किए हैं, लेकिन उसने लिखा है कि मेरे चिकित्सक ने मुझे मात दे दी। फीस देनी पड़ी। बात सच थी। क्योंकि मेरी बीमारी तो तिरोहित हो चुकी थी, मैं तो भूल ही चुका था। सामने आदमी मर रहा हो, किसको फुरसत कि अपना हृदय का दौरा, छोटी-मोटी धड़कन... । बूढ़ा पुराना परिचित डाक्टर मर रहा है, बेचारा आधी रात आया है, इसकी फिक्र करो। मेहमान की फिक्र करो कि अपनी फिक्र करो। मैं तो भूल ही गया--बर्नार्ड शा ने लिखा है--और फीस देनी पड़ी। उचित भी मालूम पड़ी।

यहां जिंदगी में लोग बीमारियां बदल लेते हैं। और अगर अपनी बीमारियां काम नहीं आतीं तो दूसरों की बीमारियां ले लेते हैं। अगर अकेले तुम दुखी हो रहे हो, विवाह कर लो। महादुखी हो जाओगे, पुराने दुख विस्मृत हो जाएंगे।

एक प्रेयसी अपने प्रेमी से कह रही थी कि अब हम देर न करें, अब जल्दी ही प्रणय के बंधन में बंध जाएं। मैं तुम्हें भरोसा दिलाती हूं कि तुम्हारे दुखों को हमेशा आधा-आधा बांट लूंगी।

उस युवक ने कहा, लेकिन मुझे कोई दुख ही नहीं है।

उस युवती ने कहा, मैं अभी की बात नहीं कर रही। मैं विवाह के बाद की बात कर रही हूं। अभी की कौन बात कर रहा है! एक दफा विवाह तो होने दो।

फिर लोग अपने को समझाने के लिए रास्ते खोज लेते हैं।

मुल्ला नसरुद्दीन मुझसे कह रहा था कि मेरे और मेरी पत्नी के बीच कभी कोई झगड़ा नहीं होता, हम काम आधा-आधा बांट लेते हैं।

मैंने कहा कि मुझे जरा विस्तार से समझाओ कि काम आधा-आधा कैसे बांट लेते हो।

उसने कहा कि जैसे उदाहरण के लिए, दो उदाहरण देता हूं, एक प्राचीन, एक नवीन। प्राचीनः जब मैंने विवाह किया था, तो पहली ही रात हमने यह तय कर लिया कि अगर कभी कोई झगड़ा हो जाए, दो में से कोई एक भी क्रुद्ध हो जाए, तो पत्नी घर में रहे, मैं घर के बाहर चला जाऊं। सो तब से सड़कों पर भ्रमण करते ही जिंदगी बीती है। मगर इसका लाभ भी हुआ; स्वास्थ्य भी अच्छा है, ताजी हवा, व्यायाम। अभी बुढ़ापे में भी जवान आदमी को चारों खाने चित्त कर सकता हूं।

मैंने कहा, यह हुआ प्राचीन उदाहरण। नवीन उदाहरण क्या?

उसने कहा, कल की ही बात लें। पत्नी को चाय पीने की तलफ जगी, आधी रात, झकझोर कर मुझे उठाया कि चाय पीनी है। आधा-आधा बांट लिया। उसे चाय पीनी है, मैंने चाय बनाई। फिर उसने चाय पी, मैंने बर्तन धोए। ऐसा आधा-आधा बंटता है, काम सुविधा से चलता है। कोई झगड़ा नहीं, कोई झांसा नहीं।

लोगों को अकेले में सुख हो तो तृप्ति नहीं होती। भीड़-भाड़ चाहिए। कोई उपद्रव सिर पर लेंगे। उससे एक लाभ होता है, पुराने उपद्रव भूल जाते हैं। इसलिए बुढ़ापे में लोग याद करते हैं कि बचपन के दिन बड़े सुख के दिन थे।

कोई बच्चा इस बात से राजी नहीं है। क्योंकि हर बच्चा जल्दी से जल्दी बड़ा होना चाहता है। हर बच्चा चाहता है जल्दी बड़ा हो जाए। कोई बच्चा बच्चा होने से प्रसन्न नहीं है, क्योंकि हजार तकलीफें। सर्दी के दिन और सुबह से ही स्कूल। और स्कूल में हर तरह की लानत-मलामत, हर तरह के दंड। घर आए तो दूसरे दिन स्कूल की तैयारी। बाप अलग डांटे, मां अलग डांटे, मोहल्ले के बदमाश छोकरे अलग सताएं। छोटे बच्चे की जिंदगी का छोटे बच्चे को पता है। वह जल्दी से जल्दी बड़ा हो जाना चाहता है। उसे पता है कि हर चीज के लिए निर्भर रहना पड़ता है। दो-दो पैसे के लिए मांगो। घर के बाहर जाना है तो भी आज्ञा चाहिए। कुछ भी करना है तो गुलामी है। कौन गुलामी पसंद करता है!

लेकिन बुढ़ापे में ये सब बातें भूल जाती हैं। जिंदगी ने इतने दुख देखे, एक से एक बड़े दुख देखे, कि बचपन उन सबकी तुलना में स्वर्गीय मालूम होने लगता है। लगता है वही स्वर्णयुग था।

और जो बात एक-एक आदमी के संबंध में सही है, वही समाजों, देशों और जातियों के संबंध में सही है। हर समाज यही सोचता है कि अतीत में सतयुग था, स्वर्णयुग था। वह इसी मनोविज्ञान का विस्तार है। उसमें कुछ फर्क नहीं है। कोई स्वर्ग कभी नहीं था। लेकिन हां, दुख धीरे-धीरे हम इतने बड़े कर लिए हैं कि उनकी तुलना में अतीत के दिन सुखद मालूम होते हैं।

मनुष्य के मन की एक प्रकृति है। शायद वैसी प्रकृति न होती तो आदमी को जिंदा रहना मुश्किल हो जाता। वह प्रकृति यह है कि वह सुख को तो चुन-चुन कर सजा लेता है, उनकी तो फूलमालाएं बना लेता है और दुख को विस्मृत करता जाता है। नहीं तो जिंदगी बहुत मुश्किल हो जाए। जीओ भी दुख में और इकट्ठा भी दुख हो, तो जीओगे कैसे? भार बहुत हो जाएगा। जीओ तो दुख में, लेकिन सुख की कल्पनाएं और सुख की स्मृतियां बढ़ा-चढ़ा कर इकट्ठी करते चले जाओ। ऐसा कोई जमाना न था... ।

दुनिया के सबसे पुराने शिलालेख बेबीलोन में मिले हैं, सात हजार वर्ष पुराने शिलालेख! लेकिन अगर तुम शिलालेखों को पढ़ो तो तुम हैरान होओगे। अभी-अभी शिलालेख पढ़े जा सके हैं; जो संदेश उन पर खुदे हैं वे बड़े हैरान करते हैं। क्योंकि संदेश अत्याधुनिक मालूम होते हैं। आज के ही सुबह के अखबार में छपे हों, ऐसे मालूम होते हैं। अभी स्याही भी नहीं सूखी, ऐसे मालूम होते हैं। एक पुराने बेबीलोन के पत्थर पर यह संदेश है कि कैसे अच्छे दिन थे पुराने दिन, कैसे स्वर्णयुग थे जो बीत गए। और अब ये कैसे बुरे दिन आए हैं, कैसे दुर्दिन आए हैं कि जहां देखो वहीं अनाचार, अत्याचार। सात हजार साल पहले! बच्चे मां-बाप की नहीं सुनते हैं। पत्नियां पतियों की नहीं मानती हैं। वृद्धों की कोई इज्जत नहीं है। विद्यार्थी गुरुओं का अनादर कर रहे हैं।

बस यूं समझो कि कुछ आधुनिक शब्दों की कमी है--घिराव, हड़ताल। वरना सभी कुछ हो रहा है।

गौतम बुद्ध बयालीस वर्ष तक सतत बोले। और इस बयालीस वर्ष में उन्होंने क्या समझाया लोगों को--चोरी मत करो! बेईमानी मत करो! पर-स्त्री को न भगाओ! हिंसा न करो! आत्महत्या न करो! क्या तुम सोचते हो स्वर्णयुग रहा होगा, जहां गौतम बुद्ध को बयालीस साल निरंतर समझाना पड़ा--चोरी न करो, बेईमानी न करो, आत्महत्या न करो, दूसरे की स्त्री न भगाओ, अपनी ही स्त्री से राजी रहो, इतना ही काफी है! अगर स्वर्णयुग था तो इतने चोर बुद्ध को मिले कहां? अगर स्वर्णयुग था और कोई किसी की स्त्री भगा ही नहीं रहा था, तो बुद्ध किसको समझाते थे कि दूसरों की स्त्रियां मत भगाओ? दिमाग खराब था? होश में थे कि सन्निपात में बक रहे थे? बयालीस साल सन्निपात भी नहीं चलता। और रोज सुबह से सांझ बस यही शिक्षण। और हजारों लोग सुनते थे। जरूर बात में कोई सार्थकता होगी।

पुराने से पुराने ग्रंथ भी तो वही नीति की बातें करते हैं जो आज तुम कर रहे हो। यहूदियों की पुरानी किताब और उनकी दस आज्ञाएं क्या कहती हैं? यही, जो हम आज कहते हैं। कोई फर्क नहीं हुआ। अगर इलाज नहीं बदला है तो बीमारी कैसे बदली होगी? अगर इलाज वही है तो बीमारी भी वही रही होगी। यह पर्याप्त प्रमाण है। और दूसरों की स्त्रियां भगाई जा रही थीं। अरे औरों की बात छोड़ दो, राम तक की स्त्री को लोग भगा कर ले गए! और तुम स्वर्णयुग कहते हो। साधारण गरीब आदमी की, किसी चमार की, किसी भंगी की, इसकी स्त्री की क्या कीमत! जब राम तक की स्त्री को भगा कर ले गए तो जगजीवनराम की स्त्री कौन फिक्र करेगा! कि चौधरी जी, तुम तो चुप रहो! अरे राम की नहीं बची, तुम किस खेती की मूली हो! अपने घर बैठो, चरखा कातो!

क्या-क्या खेल हो रहे थे! और रावण तो बुरा आदमी था, माने लेते हैं कि बुरा आदमी था, जैसा कि कहानियां कहती हैं, भगा ले गया होगा। राम तो भले आदमी थे। लक्ष्मण तो भले आदमी थे। शूर्पणखा ने, रावण की बहन ने लक्ष्मण को निवेदन किया कि मुझसे विवाह करो। आव देखा न ताव, बड़े भैया की आज्ञा ली कि काट दूं इसकी नाक? और बड़े भैया बोले, हां!

कोई बात हुई, कोई शिष्टाचार हुआ? कि हेमामालिनी तुम्हें मिल जाए और कहे कि मुझे आप से विवाह करना है और तुम उसकी नाक काट लो! नहीं करना था, कह देते--नहीं करना। कि बाई माफ कर, कि मैं पहले ही से विवाहित हूं। नाक काटने का सवाल ही कहां उठता है? और रामचंद्र जी भी स्वीकृति दे दिए कि हां, मत चूक चौहान! ऐसा शुभ अवसर मत चूक!

राम तो अच्छे आदमी हैं। इनमें तो कुछ बुराई दिखाई पड़ती नहीं, ये तो मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। लेकिन जब मैं यह पढ़ता हूं कि राम ने आज्ञा दे दी नाक काटने की--एक स्त्री की, जिसका कोई कसूर न था। इसमें कोई कसूर है? अब किसी को किसी पर प्रेम आ जाए, इसमें कोई कसूर है? अरे सीधा तो रास्ता है कि कह देते कि माफ करो, मैं विवाहित हूं, कहीं और तलाश करो; कि जरा देर से आईं, पहले आतीं तो सोचता। लेकिन उसकी नाक काटने का तो कोई भी न्याय नहीं है। और ये मर्यादा पुरुषोत्तम ने भी कह दिया कि हां, काट लो।

फिर भी मैं देखता हूं कि रावण ने इसका बदला नहीं लिया। नहीं तो सीता की नाक तो काट ही सकता था। यह तो बिल्कुल ही न्यायसंगत होता। इसमें कोई बुराई की बात न होती। लेकिन सीता को रावण ने छुआ भी नहीं। और रावण को तुम जलाए चले जा रहे हो और स्वर्णयुगों की बातें कर रहे हो, सतयुगों की बातें कर रहे हो!

और पीछे लौटो, परशुराम हुए। उन्होंने पृथ्वी को सोलह दफे क्षत्रियों से खाली कर दिया। ऐसी कटाई की! घास-पात भी आदमी काटता है तो थोड़ा हिसाब रखता है। उन्होंने घास-पात की तरह क्षत्रियों की कटाई कर दी। फिर भी स्वर्णयुग था!

नहीं कभी कोई स्वर्णयुग था। नहीं कभी कोई सतयुग था। लेकिन मामला यूं है कि आदमी का मन दुख को विस्मृत करता है। दुख ऐसे ही काफी है, अब उसको और क्या स्मरण करना! तो कांटों को भूलता जाता है, फूलों को चुनता जाता है। चुनता ही नहीं, उनको खूब सजाता है, रंगता है, बड़े करता है, सुंदर बनाता है।

तुम जिस राम की पूजा कर रहे हो उसमें निन्यानबे प्रतिशत तुम्हारी कल्पना है। तुम जिस महावीर की पूजा कर रहे हो उसमें निन्यानबे प्रतिशत तुम्हारा सपना है। तुम पत्थर की बनाई गई मूर्ति की ही पूजा नहीं कर रहे हो, कि कारीगर ने पत्थर की मूर्ति बनाई और तुम उसकी पूजा कर रहे हो। तुमने उस मूर्ति में जो प्राण-प्रतिष्ठा की है, वह भी काल्पनिक है।

जैन कहते हैं कि महावीर के शरीर से पसीना नहीं बहता।

पागल हो गए हो! चमड़ी थी कि प्लास्टिक? कुछ होश-हवाश की बातें करो! चमड़ी में तो छिद्र हैं। और छिद्रों का उपयोग ही यह है कि उनसे पसीना बहे। और बिहार में पसीना न बहता हो, हद हो गई! तो फिर पसीना कहां बहेगा? कोई साइबेरिया में बहेगा? तिब्बत में बहेगा?

और महावीर स्नान नहीं करते। क्योंकि स्नान करने से, पानी में छोटे-छोटे जीव-जंतु हैं, वे मर जाएंगे।

बिहार की धूल-धवांस से मैं परिचित हूं। बिहार की गर्मी, बिहार की धूल-धवांस, नंग-धड़ंग महावीर का घूमना, कपड़े-लत्ते भी नहीं, धूल की पर्तों पर पर्तें जम गई होंगी। शायद इसीलिए पसीना न बहता हो, यह हो सकता है। लेकिन पसीना भीतर ही भीतर कुलबुला रहा होगा और दुर्गंध भयंकर उठती होगी। क्योंकि दतौन भी नहीं करते वे, नहाते भी नहीं।

पसीना सफाई कर देता है बह कर, रंध्रों पर जम गई धूल को बहा ले जाता है। जैसे आंख में धूल पड़ जाए तो आंसू आ जाते हैं। आंसू का मतलब है कि धूल को बहाने की तरकीब। वह धूल को बहा कर ले जाता है आंसू। ऐसे ही पसीना तुम्हारे शरीर पर जमी हुई धूल को बहा कर ले जाता है। वह प्राकृतिक व्यवस्था है। लेकिन हमारी कल्पनाओं के जाल! हमने ऐसे जाल बिछा रखे हैं--झूठे जाल, जिनमें कोई सचाई नहीं। हमारी मूर्तियां झूठी, मूर्तियों में की गई प्राण-प्रतिष्ठा झूठी।

लेकिन कारण है। कारण यह है कि हम इतने दुख में जी रहे हैं कि हमें कोई तो आशा चाहिए, कोई तो दीया चाहिए, कहीं से तो रोशनी मिले--काल्पनिक ही सही। आंख बंद करके हम कल्पना ही कर लेते हैं दीये की, तो भी राहत मिलती है, तो भी थोड़ा भरोसा आता है कि अगर कल दीये जले थे तो कल फिर जल सकते हैं।

आदमी जीता है आशा के भरोसे। मगर सचाई यह है कि आदमी दुख ही दुख में जीता है। सुख में तो थोड़े से लोग पहुंचे हैं। वे वे ही लोग हैं जिन्होंने अपने को खोने की हिम्मत की। अपने को खोने की हिम्मत का अर्थ होता हैः अहंकार को विसर्जित करना। यूं समझो कि सारे दुखों को एक शब्द में निचोड़ कर रखा जा सकता है, वह शब्द है--अस्मिता, अहंकार, मैं-भाव।

पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।

आनंद दिव्या, पलटू कह रहे हैं कि मैं प्यारे को खोजने चली, लेकिन खुद खो गई।

यूं मत समझ लेना कि खुद के खो जाने से प्यारा नहीं मिला। खुद के खो जाने से ही प्यारा मिलता है। जब तक अहंकार है तब तक प्रेम नहीं। और जहां प्रेम है वहां अहंकार नहीं।

इसलिए तो तुम्हारे तथाकथित साधु-संत, महात्मा प्रेम-शून्य हो जाते हैं। अहंकार तो भारी हो जाता है--तपश्चर्या का अहंकार, त्याग का अहंकार, योग का अहंकार, यह साधा, वह साधा, व्रत किए, नियम किए, साधन किए। कितने गोरखधंधे तुम्हारे साधु करते हैं!

गोरखधंधा शब्द ही गोरखनाथ से चला। गोरखनाथ ने इतनी साधनाएं करवाईं अपने शिष्यों को कि लोग कहने लगे कि यह तो गोरखधंधा है। इस नाक पर अंगूठा रखो, उस नाक से सांस लो। यह आंख बंद करो, वह आंख खोलो। दोनों आंखें बंद करो, भीतर की आंख खोलो। सिर के बल खड़े होओ। यूं झुको, त्यूं झुको, सिद्धासन जमाओ, पद्मासन जमाओ, सर्वांगासन जमाओ। और क्या-क्या आसन--मयूरासन, गोदोहासन!

महावीर को ज्ञान की उपलब्धि हुई तब वे गोदोहासन में बैठे थे। अब मैं बहुत सोचता हूं कि गोदोहासन में बैठे क्या कर रहे थे! एक बात तो सच है, साफ है कि न गौ दोह रहे थे, न भैंस दोह रहे थे। महावीर को कहां गौ और भैंस दोहने से जोड़ोगे! और महावीर अगर गौ को दोहते भी तो गौ भाग खड़ी होती। और जिन्होंने सब

छोड़ दिया वे गौ को कहां दोहते फिरेंगे! और किसी दूसरे की गौ दोहेंगे? कभी नहीं। अपना भी छोड़ दिया, दूसरे की संपत्ति को दोहना तो ठीक नहीं। ये महावीर गोदोहासन में बैठे क्या कर रहे थे? गोदोहासन तुम समझते हो न? जैसा कि ग्वाला बैठता है, मटकी दोनों अपने टखनों के बीच में रखे हुए, उकडूं--गोदोहासन। अब ये किसी कल्पना की गौ दोह रहे थे, क्या कर रहे थे? और क्या अदभुत अवस्था में समाधि उपलब्ध हुई!

इस सब को गोरखधंधा ही कहना होगा।

अगर मुझे कोई कहे कि गोदोहासन करने से समाधि मिलेगी, मैं कहूंगा, भाड़ में जाए समाधि! ऐसी समाधि का क्या करेंगे जो गोदोहासन में बैठने से मिलती हो? और फिर जब भी ढंग से बैठोगे तभी खो जाएगी, क्योंकि वह मिलती गोदोहासन में है।

एक ही चीज छोड़ने जैसी हैः अहंकार। लेकिन ये आसन, योग, प्राणायाम साधने वाले लोग, उपवास, व्रत-नियम करने वाले लोग, ये जटा-जूटधारी, अग्नि जलाए हुए बैठे हैं चारों तरफ! क्यों जल्दी कर रहे हो भैया? नरक में तो बहुत अग्नि जल रही है, वहीं तो पड़ोगे! वहीं खूब धूनी रमाना। चौबीस घंटे धूनी रमाए रखना। क्या जल्दी पड़ी है ऐसी? यहां चार दिन राहत के मिले, सुख से जी लो। मगर नहीं, चैन नहीं। अभ्यास कर रहे हैं वे। नरक का अभ्यास यहीं से कर रहे हैं। ठीक भी है एक लिहाज से, गणित साफ है, कि जहां जाना है वहां का अभ्यास तो कर लो। एकदम से पहुंच गए तो मुश्किल होगी।

मैंने सुना है--आगे की कहानी होनी चाहिए--कि मोरारजी देसाई संसार से चल बसे। सोचा तो उन्होंने बहुत था कि स्वर्ग जाएंगे, मगर कोई स्वर्ग दिल्ली तो है नहीं। वहां कोई दिल्ली की सांठ-गांठ तो चलती नहीं। पहुंचे नर्क। शैतान ने कहा कि आप ऐसे भले आदमी हैं, खादी पहनते हैं। और एक कुर्ता भी मोरारजी दो दिन पहनते हैं। इसलिए जब वे बैठते हैं कुर्सी पर तो पहले कुर्ते को दोनों तरफ से उठा लेते हैं। क्या बचत कर रहे हैं! अरे गरीब देश है, बचत तो करनी ही पड़ेगी। इस तरह एक दफा और लोहा करने की बचत हो जाती है। पहले दोनों पुछल्ले ऊपर उठा कर बैठ गए, ताकि सलवटें न पड़ जाएं। सिद्ध पुरुष हैं! चर्खा हमेशा बगल में दबाए रखते हैं, चलाएं या न चलाएं। शैतान ने कहा कि और आप काम ऊंचे करते रहे, गजब के काम करते रहे, तो आपको हम एक अवसर देते हैं कि नरक में तीन खंड हैं, आप चुन लें। आमतौर से हम चुनने नहीं देते, हम भेजते हैं। आपको हम सुविधा देते हैं कि आप चुन लें।

इससे उनका दिल प्रसन्न भी हुआ कि चलो कम से कम इतनी सुविधा तो मिली। पहला खंड जाकर देखा तो बहुत घबड़ा गए। आग के कढ़ाहों में लोग तले जा रहे थे, जैसे आदमी न हों पकोड़े हों! बहुत घबड़ाए कि यह तो जरा ज्यादा हो जाएगा। कहा कि दूसरे खंड में ले चलो।

दूसरे खंड में देखा, बड़ी घबड़ाहट हुई, कीड़े-मकोड़े आदमियों में छेद कर-कर के गुजर रहे हैं, एक-एक आदमी में हजार-हजार छेद कर डाले हैं उन्होंने। आदमी क्या है, जैसे कि मधुमक्खी का छत्तना! छेद ही छेद। कोई कीड़ा इधर से आ रहा है, कोई उधर से जा रहा है। मरते भी नहीं आदमी, छेद पर छेद हुए जा रहे हैं। और कीड़े यहां से वहां दौड़ रहे हैं। उन्होंने कहा, यह हालत तो दिल्ली से भी बुरी है। इससे तो दिल्ली में ही अच्छे थे। तीसरे खंड में ले चलो।

तीसरे खंड में जरा अच्छा लगा। ऐसे तो अच्छा नहीं था, मगर पुराना अभ्यास था इसलिए अच्छा लगा। तीसरे खंड में उन्होंने देखा कि लोग घुटना-घुटना मल-मूत्र में खड़े हुए हैं। कोई चाय पी रहा है, कोई काफी पी रहा है; यहां तक कि फैंटा, कोकाकोला! उन्होंने कहा, यह जंचेगा, क्योंकि फिफ्टी परसेंट तो मेरा भी अभ्यास है। मल-मूत्तर में मूत्तर का तो मेरा भी अभ्यास है। अब खड़े ही होना है, कोई हर्जा नहीं। परमहंस मेरी वृत्ति पुरानी ही है। और यह अच्छा है कि सिर्फ खड़े ही रहना है। शैतान थोड़ा मुस्कुराया। अब मोरारजी में इतनी बुद्धि तो है नहीं कि उसकी मुस्कुराहट का मतलब समझ लेते। खड़े हो गए, फौरन कोकाकोला का आर्डर दिया। क्योंकि तरसे जा रहे थे कोकाकोला को। शिवांबु पीते-पीते थक गए थे। और अब यहां कोई देखने वाला भी नहीं था,

कोई गांधीवादी भी नहीं था, कोई चुनाव का भी सवाल नहीं था, कोई मत का भी सवाल नहीं था। अब कौन मौका चूके, पी ही लो कोकाकोला! कोकाकोला आया, और आधा ही पी पाए थे कि एकदम से घंटी बजी और एक आदमी ने आकर खबर दी कि बस, चाय-काफी-कोकाकोला ब्रेक खत्म! अब सब अपना शीर्षासन के बल खड़े हो जाओ! सो जल्दी से लोग शीर्षासन के बल खड़े हो गए। तब मोरारजी को पता चला कि कहां फंसे। मगर फिर भी अभ्यास तो था ही। फिफ्टी परसेंट अभ्यास तो वे नरक का यहीं कर लिए हैं, रहा फिफ्टी परसेंट सो वहां कर लेंगे।

लोग अभ्यास कर रहे हैं, जैसे कि यहां दुख की कुछ कमी है! अपनी तरफ से दुख खड़े करते हैं। यह भी एक मनोवैज्ञानिक उपाय है। क्योंकि जब दुख तुम पर बाहर से आता है, आकस्मिक आता है, तो तुम्हारे अहंकार को चोट पहुंचती है। लेकिन जब तुम खुद ही खड़ा करते हो तो तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलती है। यही तो अनशन में और उपवास में भेद है। भूखे मरो तो दुख होता है; उपवास करो तो अहंकार को मजा आता है। काम एक ही है, दोनों में कुछ भेद नहीं। शरीर को वही तकलीफ है। शरीर को वही पीड़ा है। चाहे भूखे मरो, चाहे उपवास करो। शरीर से पूछो तो शरीर को तो एक ही क्रिया से गुजरना पड़ रहा है। लेकिन उपवास करने वाला महात्मा हो जाता है; उसकी शोभायात्रा निकलती है; उसको फूलमालाएं लोग चढ़ाने आते हैं। और भूखे मरते आदमी की तरफ कोई देखता भी नहीं; भूखा मर रहा है तो लोग आंख बचा कर निकल जाते हैं कि कौन झंझट में पड़े! अरे अपने पापों का फल भोग रहा है, भोगने दो!

आचार्य तुलसी, जैन मुनि कहते हैं कि अगर कोई अपने पापों का फल भोग रहा है तो बाधा नहीं डालनी चाहिए, क्योंकि बाधा डालोगे तो उस बेचारे को फिर आगे पापों का फल भोगना पड़ेगा। यह तेरापंथ का दर्शन है। इसमें अगर कोई आदमी सड़क के किनारे भूखा मर रहा है तो तुम आंख बचा कर निकल जाना। क्योंकि अगर तुमने उसको खिलाया, पिलाया, भोजन दिया, तो तुमने उसके पाप-कर्म का जो बंध था उसको और आगे सरका दिया, पोस्टपोनमेंट करवा दिया। बेचारा किसी तरह निपटे ले रहा था, पिछले जन्म में किए होंगे पाप, भूखा मर कर काटे ले रहा था पाप, तुमने वह भी न करने दिया। अब हो सकता है उसको एक जन्म और लेना पड़े--तुम्हारी हरकत के कारण। तुमने कुछ उसका भला न किया, बहुत बुरा किया।

तेरापंथ के जीवन-दर्शन में सेवा का कोई स्थान नहीं है। आश्चर्य की बात है! तर्क के भी कैसे जाल खड़े हो जाते हैं! महावीर और अहिंसा को मानने वाले लोगों में कभी एक ऐसा संप्रदाय भी पैदा होगा जो इस तरह की बात करेगा, महावीर भी लाख सिर पटकते तो सोच न पाते! यह कल्पनातीत था। लेकिन आदमी जो कल्पनातीत है उसको भी करके दिखा देता है, चमत्कार करके दिखा देता है।

उपवास करो, अपने को खुद सताओ, तो सम्मान मिलता है। यहां लोग दुखी हैं। दुखी हैं अहंकार के कारण। लेकिन इस दुख से बचना हो तो और बड़ा दुख अपने हाथ से अपने ऊपर थोप लो। उससे एक तरह का सुख मिलेगा कि यह दुख अपना चुनाव है।

और ध्यान रहे, लोग अपने चुनाव से नरक भी जाएं जो सुखी होंगे और दूसरे के चुनाव से स्वर्ग भी भेजे जाएं तो सुखी न होंगे। क्योंकि अपने चुनाव में मैं-भाव भरता है, अहंकार पुष्ट होता है। और मजा यह है कि अहंकार सारे दुखों की आधारशिला है। और जब तक अहंकार है तब तक प्रेम नहीं; और जब तक प्रेम नहीं, प्रार्थना नहीं; और जब तक प्रार्थना नहीं तब तक कैसा परमात्मा? ये सब प्रेम के ही विस्तार हैं। ये प्रेम के ही खिलाव हैं। यह प्रेम का ही फूल खिलता चला जाता है तो प्रार्थना बनता है, परमात्मा बनाता है। अपनी परिपूर्णता में प्रेम ही परमात्मा है। लेकिन प्रेम को पाने के लिए पहली शर्त अहंकार छोड़ने की करनी पड़ती है।

किस अहद में इंसान को रास आई नफरत
खुद से की दीवार तुम गिरा क्यों नहीं देते

कौन सा दुर्भाग्य का क्षण था कि आदमी को नफरत रास आ गई, घृणा रास आ गई। क्योंकि घृणा के कारण अहंकार बढ़ता है।

किस अहद में इंसान को रास आई नफरत
खुद से की दीवार तुम गिरा क्यों नहीं देते

और यह खुद से बनाई हुई दीवार, इतना कष्ट भोग रहे हो, गिरा क्यों नहीं देते? इतनी सी ही बात, आनंद दिव्या, पलटू कह रहे हैं--

पलटू दीवाल कहकहा, मत कोउ झांकन जाय।
पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।।

मेरी नजर से न देखो मुझे खुदा के लिए
बडी कठिन है ये मंजिल मेरी वफा के लिए
चमन में उम्र गुजारी मगर सबा की तरह
तरस गए हैं किसी दर्द-ए-आश्ना के लिए
तलब की राह थी दुश्वार, दूर थी मंजिल
कदम-कदम पे सहारे तेरी जफा के लिए
कभी-कभी तो किसी के गरूर का दामन
मचल गया है मेरे दस्ते-नारसा के लिए
वुफूरे-शौक ने आवारा कर दिया वर्ना
सबा चमन के लिए है, चमन सबा के लिए
हरम से तोड़ के हर रब्ते-जिंदगी "ताबां"
हुई है वक्फ जबीं एक नक्शे-पा के लिए

एक छोटी सी तलाश है कि कहीं दिव्यता का चरण-चिह्न मिल जाए। अगर उसके लिए सारे मंदिरों और मस्जिदों से भी नाते तोड़ लेने पड़ें तो तोड़ देना।

हरम से तोड़ के हर रब्ते-जिंदगी "ताबां"
काबे से भी नाता तोड़ना पड़े तो तोड़ देना।
हरम से तोड़ के हर रब्ते-जिंदगी "ताबां"
हुई है वक्फ जबीं एक नक्शे-पा के लिए

बस एक चरण-चिह्न की तलाश करना, एक दिव्यता की तलाश करना। और वे चरण-चिह्न सब तरफ मौजूद हैं, क्योंकि परमात्मा सब तरफ मौजूद है, हर घड़ी मौजूद है। तुम्हारी आंख खुली होनी चाहिए। और आंख पर पर्दा क्या है? छोटा सा पर्दा है, अहंकार का पर्दा है। अहंकार का पर्दा हो तो मंजिल बड़ी कठिन और अहंकार का पर्दा न हो तो मंजिल बड़ी सरल।

मेरी नजर से न देखो मुझे खुदा के लिए
बड़ी कठिन है ये मंजिल मेरी वफा के लिए
चमन में उम्र गुजारी मगर सबा की तरह
तरस गए हैं किसी दर्द-ए-आश्ना के लिए
तलब की राह थी दुश्वार, दूर थी मंजिल
कदम-कदम पे सहारे तेरी जफा के लिए
कभी-कभी तो किसी के गरूर का दामन
मचल गया है मेरे दस्ते-नारसा के लिए
वुफूरे-शौक ने आवारा कर दिया वर्ना
सबा चमन के लिए है, चमन सबा के लिए
हरम से तोड़ के हर रब्ते-जिंदगी "ताबां"

हुई है वक्फ जबीं एक नक्शे-पा के लिए

एक छोटे से चरण-चिह्न पर सब वार दो, सब न्योछावर कर दो, समर्पित हो जाओ। और क्या है हमारे पास समर्पित होने को? यही एक घाव है, जिसका नाम अहंकार है। यही एक मवाद है। इस मवाद को फेंक दो। खाली कर लो अपने को इस अहंकार से। मिट रहो "मैं" की तरह, तो तुम हो जाओगे "उसकी" तरह। और तब बड़ी हंसी आएगी।

पलटू दीवाल कहकहा!

हंसी इस बात पर आएगी, जैसे बोधिधर्म को सात दिन तक हंसी आई। और जब पूछा उसके मित्रों ने कि क्यों हंसते हो? तो उसने कहा, मैं इसलिए हंसता हूं कि अपने ही हाथ से बनाई दीवाल थी और खुद ही सोचता था कि कारागृह में पड़ा हूं। न कोई पहरेदार था, न कोई जंजीर थी। अपनी ही कल्पना की जंजीर थी, और सोचता था बंधा हूं। कोई पहरेदार न था, और सोचता था कि भागूं तो कैसे भागूं! सच तो यह है कोई दीवाल न थी, सिर्फ कल्पना की दीवाल थी, जब चाहता तब निकल जाता। कोई रुकावट न थी, कोई बाधा न थी, कोई अड़चन न थी। और रुका रहा जन्मों-जन्मों। और आज जब बाहर आ गया हूं तो हंसी आती है अपनी मूढ़ता पर, किसी और पर नहीं हंस रहा हूं।

पलटू दीवाल कहकहा!

तुम भी हंसोगे; जिस दिन मैं को अलग हटा कर रख दोगे, बहुत हंसोगे, बेतहाशा हंसोगे। अपने पर हंसोगे कि कैसा पागलपन! कैसी नासमझी! दुख थे नहीं, मैंने निर्मित किए। और जब चाहता, एक क्षण में तोड़ दे सकता था। लेकिन नहीं तोड़े, और मजबूत करता रहा, और पोषण देता रहा, और उनकी जड़ों को सींचता रहा।

पिय को खोजन मैं चली, आपुई गई हिराय।

अगर खोजने चले हो पिया को तो इतनी तैयारी भर, बस इतनी तैयारी भरः अपने को खोने की तैयारी। और तुम्हारे हाथ में कुंजी है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, "आपुई गई हिराय"--यह बात कुछ गूढ़ मालूम पड़ती है। क्या बात है, खोजने वाला खुद को पा लेता है या खो देता है? खोज का क्या अर्थ, जिसमें खोजी न रहा! कबीर साहब ने कहा हैः जिन खोजा तिन पाइयां। और आप हमें निरंतर कहते हैंः स्वयं को खोजो, स्वयं को पा लो।

ओशो, हमें बोध देने की अनुकंपा करें।

आनंद प्रतिभा,

बात गूढ़ भी है, गूढ़ नहीं भी। गूढ़ है अगर शब्दों में उलझ जाओ, नहीं तो बड़ी सीधी-साफ है।

कबीर कहते हैंः जिन खोजा तिन पाइयां। जिसने खोजा उसने पाया।

लेकिन किसने खोजा? खोजने वाला कौन है?

कबीर का दूसरा वचन हैः हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।

हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।

खोजते-खोजते कबीर खो गया।

बुंद समानी समुंद में, सो कत हेरी जाई।।

और अब बड़ी मुश्किल हुई। अब बड़ी मुश्किल हुई कि बूंद समुद्र में खो गई, अब उसे वापस कैसे पाऊं?

और फिर बाद में तो उन्होंने बदल ही दिया। बाद में बात और भी गहरी हो गई। बाद में उन्होंने कहा--

हेरत-हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराई।

समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।।

बूंद समुद्र में चली गई थी, शायद कोई रास्ता खोज भी लेते, निकाल भी लेते। बूंद छोटी चीज थी, सागर बड़ी चीज थी, कहीं न कहीं मिल जाती देर-अबेर, खोजते, जन्मों-जन्मों में पा ही लेते। मगर अब तो मामला बिल्कुल ही बिगड़ गया।

समुंद समाना बुंद में, सो कत हेरी जाई।

अब तो वश के बाहर बात हो गई। समुद्र ही बूंद में समा गया। अब कैसे खोजें? अब तो कुछ बचा ही नहीं, बूंद और समुंद एक हो गए। अब तो दुई न रही। कहां फासला खड़ा करें?

शब्दों में अटको तो आनंद प्रतिभा, झंझट हो जाएगी। तो कबीर ठीक कहते हैंः जिन खोजा तिन पाइयां। जिसने खोजा उसने पाया। लेकिन खोजने वाले ने कब पाया? अगर उसको ध्यान में रखो तो इस सूत्र को बदल दोः जिन खोया तिन पाइयां। मैं सुधार किए देता हूं। कबीर से मैं निपट लूंगा, तू फिक्र छोड़। जब मुलाकात होगी तब हम निपट लेंगे। बदल दोः जिन खोया तिन पाइयां। जिसने खोया उसने पाया। मगर मतलब एक ही है, चाहे खोजो, चाहे खोओ। बिना खोजे कोई खोने नहीं जाता और बिना खोए कोई खोज नहीं पाता।

कबीर का एक और प्यारा वचन हैः कि पहले मैं खोजता फिरता था, खोजता फिरता था और परमात्मा का कोई पता ही न चलता था। लाख खोजा और न पाया। फिर एक ऐसी घड़ी आई कि खोजते-खोजते मैं खो गया। और तब से मामला बदल गया; तब से बात ही बदल गई; तब से परमात्मा मेरे पीछे-पीछे लगा फिरता है--कहत कबीर-कबीर! हरि लगे पाछे फिरत! अब मैं, लाख चिल्लाओ, सुनता ही नहीं। अरे जब मैं चिल्लाता था, तुमने न सुना, कि मैं खोजता फिरा, खोजता फिरा, कि हे हरि, हे हरि, कहां हो? नहीं मिले, नहीं मिले। अब तो मैं ही खो गया। और जब से मैं खो गया हूं तब से तुम्हें क्या सूझी कि अब मेरे पीछे फिर रहे हो, डुंडी पीटते फिरते हो, शोरगुल मचाते हो, छाया की तरह पीछे लगे रहते हो, दिन-रात पीछा नहीं छोड़ते।

हरि लगे पाछे फिरत, कहत कबीर-कबीर!

मगर अब कौन है सुनने को? कबीर तो जमाना हुआ जा चुका। अब बचा कौन?

शब्दों में मत अटकना! शब्दों में अटकने से भूल हो जाएगी।

तू कहती हैः "आपुई गई हिराय--यह बात कुछ गूढ़ मालूम पड़ती है।"

"कुछ" नहीं, यूं तो "बहुत" गूढ़ है। और यूं जरा भी गूढ़ नहीं। सत्य की यही खूबी है। अगर शब्द में अटको तो बहुत उलझन; और अगर सार को पकड़ लो तो जरा भी उलझन नहीं।

तू कहती हैः "यह क्या बात है, खोजने वाला खुद को पा लेता है या खो देता है?"

दोनों बातें एक साथ घटती हैं। ये खोना और पाना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं करूं भी तो क्या करूं? इधर खोओ, उधर पाओ। उधर पाया कि इधर खोया। ये अलग-अलग घटती ही नहीं बातें, एक साथ घटती हैं।

लेकिन जिंदगी को जरा गौर से देखो तो इसी विरोध को सब जगह पाओगे। रात और दिन जुड़े हैं। अब कहां रात और कहां दिन! कहां अंधेरा और कहां रोशनी! जन्म और मृत्यु जुड़े हैं। कहां जन्म और कहां मृत्यु! बिल्कुल विपरीत, मगर एक ही सिक्के के दो पहलू। सुख और दुख जुड़े हैं, कुरूपता और सौंदर्य जुड़े हैं, फूल और कांटे जुड़े हैं। यहां विपरीत ऊपर से ही विपरीत दिखाई पड़ते हैं, भीतर से जुड़े हुए हैं, भीतर से परिपूरक हैं, कांप्लीमेंटरी हैं, विरोधी नहीं हैं। और यह सबसे बड़ा विरोध हैः खोना और पाना।

अब आनंद प्रतिभा तो इनकम टैक्स की बड़ी आफिसर है, सो उसको अड़चन आती होगी। अर्थशास्त्री है। कहां खोना और कहां पाना, बिल्कुल उलटी-उलटी बातें! अगर खोया तो पाओगे कैसे? अगर पाया तो खोया कैसे? अब जैसे मेरे जैसा व्यक्ति अगर आनंद प्रतिभा के दफ्तर में पहुंच जाए तो बड़ी गड़बड़ मचे। मेरे खाते-बही सब अंट-संट हों, लेना-देना कुछ पक्का पता लगाना ही मुश्किल हो जाए कि क्या लेना है, क्या देना है; क्या बचा,

क्या हानि हुई। मैं तो इसको समझाऊं कि हानि-लाभ सब बराबर। अरे जितना खोया उतना पाया। जिसने ज्यादा खोया उसने ज्यादा पाया। जिसने ज्यादा पाया उसने ज्यादा खोया। स्वभावतः इनकम टैक्स वाली बुद्धि, आनंद प्रतिभा कहे--यह भी क्या मामला है!

कुछ हैरानी की बात है, इनकम टैक्स के आफिसों में जितने मेरे संन्यासी हैं, और किसी आफिस में नहीं। आनंद प्रतिभा है यहां, बोधिसत्व हैं यहां, और भी दो-तीन... । अब मैंने जिंदगी में कभी इनकम टैक्स दिया नहीं। दूं ही क्या, देने वाला ही नहीं। नौकरी भी करता था तो जब वह घड़ी आई कि तनख्वाह मेरी इतनी हो जाए कि उस पर इनकम टैक्स लगे, मैंने कहा कि वह कम ही रहने दो! इनकम टैक्स की झंझट में कौन पड़ेगा? सो मैंने तनख्वाह नहीं बढ़वाई। जब वे ज्यादा ही जिद्द करने लगे कि तनख्वाह तो बढ़ेगी ही, क्योंकि वह तो नियम के अनुसार है, तो मैंने कहा, इस्तीफा ले लो, मगर इनकम टैक्स, वह मैं नहीं दूंगा। अपनी जिंदगी में मैंने नहीं दिया। कौन इस झंझट में पड़े? कम तनख्वाह पर राजी था, मगर वे राजी नहीं थे।

वे कहने लगे, तनख्वाह तो लेनी पड़ेगी, वह तो कानून है। कब तक हम इसको रोकेंगे? और आपकी रोकेंगे तो दूसरे लोग एतराज उठाएंगे। और आप क्यों परेशान होते हैं? इनकम टैक्स तो थोड़ा सा ही कटेगा, तनख्वाह ज्यादा बढ़ती है।

मैंने कहा, ज्यादा और कम का सवाल नहीं है। इनकम टैक्स का गणित ही मेरी समझ में नहीं आता। मेरा गणित और है।

तो मैंने कहा, इस्तीफा ही ले लो। वह झंझट मिटी। जब मैंने अपने प्रिंसिपल को कहा कि इस्तीफा ही ले लो, तो उन्होंने मुझे ऐसे देखा जैसे मैं पागल हूं। मैंने उनसे कहा, ऐसे मत देखो। हालत बिल्कुल उलटी है, पागल तुम हो!

उन्होंने कहा, आप ऐसा करो कि सात दिन छुट्टी लेकर विचार तो कर लो, नौकरी छोड़नी कि नहीं?

मैंने कहा कि विचार करके मैंने कभी कुछ किया? अरे निर्विचार ही तो मेरी शिक्षा है।

उन्होंने कहा, भई तुम्हें जो करना हो--अपना सिर पीट लिया--तुम्हें जो करना हो करो।

तो मैंने कहा, कागज हो तो दे दो, तो यहीं मैं इस्तीफा लिख दूं।

फिर भी बेचारे समझाए कि घर से लिख कर भेज देना, सोच-विचार कर लो, परिवार में पूछ लो, मित्रों को पूछ लो, थोड़ा... । कोई भी कदम उठाना तो सोच-समझ कर। अच्छी नौकरी, इसे यूं नहीं छोड़ देते।

मैंने कहा, फिर वही बात! अरे नौकरी कितनी ही अच्छी हो, नौकरी ही है! मैं ठहरा मालिक आदमी। और क्या तुम सोचते हो कि तुम्हारी नौकरी में मैं कुछ खाक नौकर था?

उन्होंने कहा, यह तो मैं भी मानूंगा कि नौकर तो तुम थे, लेकिन नौकर तुम थे नहीं।

क्योंकि मैंने कभी छुट्टी की दरखास्त नहीं दी और जब चाहा तब छुट्टी पर रहा। सच पूछो तो महीने में पंद्रह दिन छुट्टी। और प्रिंसिपल इस डर से मुझसे कहें न, क्योंकि उन्होंने मुझसे कुछ कहा कि इस्तीफा। और विद्यार्थी मुझे प्रेम करें, तो वे कहें पंद्रह दिन आए तो भी ठीक, जितने दिन आए उतने ही ठीक। और यूं भी नहीं था कि मैं अपने गांव में ही रहा जहां विश्वविद्यालय था, सारे मुल्क में घूमता रहता। अखबारों में खबरें छपतीं। प्रिंसिपल मुझे कहते कि भैया, इतना तो कम से कम करो, तुम्हें छुट्टी नहीं लेनी है मत लो, मगर अखबार में खबर छपती है कि तुम कलकत्ते में थे और यहां हम दफ्तर में दिखा रहे हैं। तुम हमें फंसाओगे, फांसी लगवाओगे!

मैंने उनसे कहा कि चमत्कार होते हैं, इसमें क्या अड़चन है? यह तो आध्यात्मिक देश है, यहां तो हर तरह के चमत्कार होते हैं। इसमें कोई अड़चन नहीं है। शरीर यहां, आत्मा कलकत्ते में!

वे कहते, ये बातें मैं किसको समझाऊंगा और कौन मेरी सुनेगा?

अब प्रतिभा जो है, इसका अपना गणित है। इस बेचारी का गणित मैं समझता हूं--कि यह कह रही है कि यह कुछ समझ में नहीं आती बात, खोजने वाला खुद को पा लेता है या खो देता है?

ये दोनों बात एक साथ घटती हैं प्रतिभा।

और तू पूछती हैः "खोज का क्या अर्थ है, जिसमें खोजी ही न रहा!"

आया न इनकम टैक्स का हिसाब, कि जब खोजी ही न रहा तो खोज का क्या अर्थ! मगर यह मामला ही ऐसा है। यह मामला ही दीवानों का, पियक्कड़ों का, पागलों का है। यहां खोज करने वाला जब मिट जाता है तब खोज पूरी होती है। मंजिल पर आते-आते यात्री गल जाता है, तब मंजिल मिलती है। जब तक कि यात्री थोड़ा भी बचा है, तब तक उतना ही व्यवधान है मंजिल में और उसमें। जब बिल्कुल न बचा... ।

रामकृष्ण कहते थेः दो नमक के पुतले सागर की थाह लेने गए; लौटे ही नहीं। लौटते क्या खाक! ऐसा भी नहीं कि थाह न मिली, थाह जरूर मिली। मगर नमक के पुतले थे, सागर में गलते गए, गलते गए; जैसे गहरे गए वैसे गलते गए। जब बहुत गहरे पहुंच गए, थाह तो मिल गई, मगर लौटने को न बचे। एक-दूसरे से कहा भी होगा कि भैया, अब क्या करें? हम तो बचे ही नहीं। लौटने वाला तो बचा ही नहीं। और लोग राह देखते होंगे, प्रतीक्षा करते होंगे। उन्होंने कहा, अब करें प्रतीक्षा, हम कर भी क्या सकते हैं! जो गया सो गया! वे तो डूब गए, विलीन हो गए। विलीन हुए बिना सागर की थाह पाई भी नहीं जा सकती। विलीन होकर ही पाई जा सकती है।

सुन, बुल्लेशाह क्या कहते हैं--

नी सईयो मैं गई गुवाची, खोल घूंघट मुख नाची।

जित वल देखां दिसदा ओही, कसम उसे दी होर न कोई।

बहू मुअक्कम फिर गई घरोई, जद गुरु दी पत्तरी वाची।

नी सईयो मैं गई गुवाची...

नाम-निशान न मेरा सईयो, जो आखां तुसी चुप कर रहियो।

एह गल मूल किसे न कहियो, बुल्ला खूब हकीकत जाची।

नी सईयो मैं गई गुवाची...

अर्थात अरी सखियो, मैं तो खो गई! मुख से घूंघट उठा कर नाच रही हूं।

खो गई हूं इसलिए मुख से घूंघट उठा कर नाच रही हूं। अब भीतर कोई है ही नहीं, तो अब छिपाना किसको?

अरी सखियो, मैं तो खो गई! मुंह से घूंघट उठा कर नाच रही हूं।

अब लज्जा क्या! लोक-लज्जा क्या! अब तो मैं हूं ही नहीं, बस घूंघट ही है, भीतर तो कोई भी नहीं, शून्य है, समाधि है।

जिस ओर देखूं वही दिखता है। उसी की कसम कि कोई और नहीं है, बस वही है। और जब गुरु की पाती पढ़ी, घर की बहू फिर घर आ गई। अरी सखियो, मैं तो खो गई! सखियो, मेरा नाम-निशान नहीं बचा। तुम्हें जो बताया है, तुम उसके संबंध में चुप रहना, किसी से कुछ भी न कहना। यह मूल बात किसी को न बताना। बुल्लेशाह कहते हैं कि मैंने खूब हकीकत की जांच की है। अरी सखियो, मैं तो खो गई!

ये वचन प्यारे हैं।

नी सईयो मैं गई गुवाची!

मैं तो खो गई। और इसलिए घूंघट खोल कर नाच रही हूं। अब जब भीतर कोई है ही नहीं तो किसको छिपाना?

कश्मीर में एक अदभुत महिला हुईः लल्ला। हिंदुस्तान ने दो ही नग्न तीर्थंकरों को जन्म दिया है--एक महावीर को और एक लल्ला को। कश्मीर में तो लोग कहते हैं कि हम दो ही शब्दों को जानते हैं--एक अल्ला और एक लल्ला। इतना आदर है लल्ला का! लल्ला बड़ी सुंदर स्त्री थी। कश्मीरी स्त्री थी, सुंदर स्त्री थी, अल्हड़ स्त्री थी। और सौंदर्य बाहर का ही नहीं था, भीतर का भी था। और उसने सब कपड़े फेंक दिए और नग्न हो गई।

महावीर को तो हम बरदाश्त भी कर लें कि चलो आदमी हैं, कोई बात नहीं, आदमियों का क्या! यूं ही लंगोटी लगाए फिरते रहते हैं। चलो लंगोटी छोड़ दी, और क्या, कुछ ज्यादा नहीं छोड़ा। ऐसे भी क्या थी, लंगोटी ही तो थी। और यहां हिंदुस्तान में साधु-संन्यासी तिग्गी लगाते हैं, लंगोटी भी नहीं। तिग्गी मतलब बस आखिरी समझो, उसके बाद फिर कुछ बचता ही नहीं। मतलब तिग्गी से कम कुछ किया ही नहीं जा सकता। अभी पश्चिम की स्त्रियां तिग्गी लगाना सीख रही हैं, भारत के पुरुष तो बहुत जमाने से अभ्यास कर रहे हैं तिग्गी लगाने का। चलो तिग्गी छोड़ दी महावीर ने, कोई बात नहीं। लेकिन लल्ला ने वस्त्र छोड़ दिए। और जब लल्ला से कोई पूछता कि तूने वस्त्र क्यों छोड़ दिए? तो लल्ला कहती, मैं हूं ही नहीं। अब वही है। अब उसको क्या वस्त्र पहनाने? अब उसको किससे छिपाना? उसी को उसी से छिपाना?

नी सईयो मैं गई गुवाची!

अरी सखियो, मैं तो खो गई।

खोल घूंघट मुख नाची।

अब क्या डरूं? अब तो घूंघट खोल दिया है, अब तो वस्त्र हटा दिए हैं। अब तो शून्य है, शून्य का नाच हो रहा है।

जित वल देखां दिसदा ओही।

जहां देखा वही दिखाई पड़ता है। अब किससे छिपाना है और किसको छिपाना है? बाहर भी वही, भीतर भी वही।

कसम उसे दी होर न कोई।

अब कसम भी खाऊं तो किसकी खाऊं! उसकी ही कसम खाती हूं कि उसके सिवाय और कोई भी नहीं है।

बहू मुअक्कम फिर गई घरोई।

आ गई बहू फिर से घर।

जद गुरु दी पत्तरी वाची।

जिस दिन गुरु का पत्र मिल गया, प्रेम-पाती मिल गई, बहू घर आ गई।

नी सईयो मैं गई गुवाची।

अब मैं तो खो गई सखियो।

नाम-निशान न मेरा सईयो।

कुछ भी न बचा, नाम-निशान भी न बचा, मेरी सखियो।

जो आखां तुसी चुप कर रहियो।

और वह कहती है कि जो मैंने कहा, जो मैंने बताया, उसे चुपचाप पीकर रह जाना। कहना मत, किसी को बताना मत। क्योंकि लोग समझेंगे नहीं।

अब यही मेरी झंझट है प्रतिभा, कि मैंने तुझे बता दिया। और तुझे सवाल खड़ा हो गया कि यह क्या मामला है--खोना और पाना, दोनों एक साथ कैसे? और कबीर तो कहते हैंः जिन खोजा तिन पाइयां। और जब खोजी ही न रहा तो फिर खोज कैसी?

मगर मैं कह रहा हूं इसलिए कि मेरे पास जो इकट्ठे हुए हैं वे दीवाने हैं और इस गणित को भी समझ सकेंगे।

नजर में ढल के उभरते हैं दिल के अफसाने

ये और बात है कि दुनिया नजर न पहचाने

दुनिया की बात छोड़ दो। मगर तुम तो समझो!

बुल्लेशाह कहते हैंः

एह गल मूल किसे न कहियो, बुल्ला खूब हकीकत जाची।

नी सईयो मैं गई गुवाची।

किसी से कहना ही मत, कोई मानेगा ही नहीं कि खोजने वाला खो गया, तब खोज पूरी हुई। कौन मानेगा? गणित के जगत में, तर्क के जगत में इसका क्या अर्थ होगा?

बुल्लेशाह का एक वचन और है--

यार पाया सईयो मेरियो नी
मैं तां अपना आप गवा के नी
रही सुद्ध न बुद्ध जहान केरी
थक्की बिरत आनंद में जा के नी
अट्ठे जाम बिसराम न कम कोई
दुई ज्ञान की भाह जला के नी
बुल्लाशाह मुबारकां लख देवो
बहिए जान जानी गल ला के नी

अर्थात हे मेरी सखियो, मैंने तो अपना यार पा लिया, अपने आपको गवां कर।

यार पाया सईयो मेरियो नी
मैं तां अपना आप गवा के नी

अपने को खोकर मैंने तो अपने प्यारे को पा लिया। सारे जहां की सुध-बुध न रही। वृत्तियां थक गईं और आनंद में सब समा गया। आठों पहर अब विश्राम है और कोई काम बचा नहीं। ज्ञान की अग्नि में दुई को जलाने के बाद।

दो को तो जलाना ही होगा। जहां दो जल जाते हैं वहीं तो ध्यान है, वहीं समाधि है। जहां मैं नहीं, जहां तू नहीं।

बुल्लेशाह कहते हैंः लाख मुबारक हों। अब हम बैठ गए अपनी जान में जानी को गले लगा कर। लाख मुबारक हों।

खुद को धन्यवाद दे रहे हैं कि धन्यवाद बुल्लेशाह, तू भी धन्यभागी है कि अपने प्यारे को गले से लगा कर बैठ गया! और गले से लगा कर ही नहीं, एक होकर बैठ गया! अब अलग होने की कोई विधि भी न रही, उपाय भी न रहा।

और तू फिक्र मत कर, प्रतिभा, तू तो खो जाएगी। खो ही जाना चाहिए, क्योंकि रह-रह कर क्या पाया है, सिवाय दुख के? अहंकार ने सिवाय नरक के किसको क्या दिया है? निरहंकार ने परमात्मा दिया है। जरा-जरा खोकर देख! और मैं जानता हूं कि जरा-जरा खोकर तू देख भी रही है, मगर हिसाब-किताब से चल रही है। कुछ हर्जा भी नहीं। लेकिन जरा सा भी चखेगी खोने को... और मैं जानता हूं कि वह स्वाद लग गया है और अब बचना मुश्किल है। वह स्वाद पकड़ रहा है, इसीलिए तो सवाल भी उठा है। सवाल भी बौद्धिक नहीं है सिर्फ, आत्मिक है। सिर्फ यूं ही कुतूहल नहीं है, भीतर की जिज्ञासा है। क्योंकि भीतर प्रतिभा को भी तो डर लग रहा है कि अब मैं डांवाडोल हो रही हूं, खो रही हूं, डूबी जा रही हूं। इसके पहले कि डूब ही जाऊं, पूछ तो लूं कि डूबने के बाद जो मिलेगा उसके मिलने का कोई सार भी होगा, क्योंकि मैं तो बचूंगी ही नहीं।

जरूर सार होगा। क्योंकि मैं तो सिर्फ असार है, सार तो मैं की मृत्यु में है। मैं की मृत्यु परमात्मा का जन्म है।

आज इतना ही।

दूसरा प्रवचन

धर्म तो आंख वालों की बात है

पहला प्रश्नः ओशो, विश्वविख्यात धर्म-चिंतक पाल टिलिक कहते हैं कि अकेला होना हर आदमी की किस्मत में बदा है और भगवान भी उसकी यह किस्मत नहीं छीन सकता। एक तरह से हर आदमी अकेला रहने के लिए अभिशप्त है।

ओशो, क्या यह सच है? क्या आप भी आदमी को उसके अकेलेपन से छुटकारा नहीं दिला सकते हैं?

नरेंद्र बोधिसत्व,

धर्म और चिंतन विपरीत आयाम हैं। धर्म का कोई चिंतन नहीं होता। और जहां तक चिंतन है वहां तक धर्म नहीं है। इसलिए धर्म-चिंतक जैसा शब्द स्व-विरोधी है। धर्म तो अनुभव है निर्विचार, निर्विकल्प समाधिस्थ अवस्था का। चिंतन है मन की प्रक्रिया और धर्म है अनुभव उन अपूर्व घड़ियों का जब मन अनुपस्थित होता है।

इसलिए पहली तो तुमसे बात कहूं कि पाल टिलिक को मैं कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं मानता हूं। चिंतक निश्चित वे थे, लेकिन बस चिंतक। चिंतक से धर्म का फासला इतना बड़ा है जितना कि जमीन से आकाश का नहीं है। चिंतन का अर्थ हैः अंधा आदमी सोच रहा है कि प्रकाश क्या है; या कि बहरा सोच रहा है संगीत क्या है। और सोचेगा तो कुछ न कुछ धारणाएं निर्मित करेगा, अंधा भी प्रकाश के संबंध में कुछ धारणाएं निर्मित करेगा। सुन सकता है, पूछ सकता है, ब्रेल लिपि के द्वारा पढ़ भी सकता है; प्रकाश के संबंध में जो लिखा गया है उसकी सारी जानकारी संगृहीत कर सकता है; उस जानकारी में एक व्यवस्था, एक तर्क, एक सुनियोजन भी ला सकता है। लेकिन अंधा फिर भी अंधा है। लाख जाने प्रकाश के संबंध में, प्रकाश को नहीं जान पाएगा। और प्रकाश के संबंध में जानना प्रकाश को जानना नहीं है। ईश्वर के संबंध में जानना ईश्वर को जानना नहीं है। प्रेम के संबंध में जानना प्रेम को जानना नहीं है।

इस भेद को बहुत ही स्पष्ट समझ लो।

धर्म तो आंख वालों की बात है--जिन्होंने देखा। इसलिए तो हमने इस देश में धर्म की परम अनुभूति को दर्शन कहा है; चिंतन नहीं, मनन नहीं, विचार नहीं, तर्क नहीं--अनुभूति, अंतर-साक्षात्कार, भीतर की आंख का खुल जाना।

ये तो प्रतीक हैं। कोई भीतर आंख नहीं है। लेकिन देखने का एक ऐसा ढंग भी है, जब तुम्हारी दृष्टि पर विचारों का धुआं नहीं होता, चिंतन-मनन की बदलियां नहीं होतीं। एक ऐसा देखने का ढंग भी है, जब तुम्हारा चैतन्य का आकाश पूर्णतया निरभ्र होता है, जब तुम्हारे भीतर की ज्योति निर्धूम जलती है। तब जाना जाता है। तब पहचाना जाता है।

धर्म दर्शन है, चिंतन नहीं। क्योंकि धर्म मन नहीं है, मनातीत समाधि है।

पाल टिलिक जो भी कहेंगे--कितना ही सुंदर हो, तर्कबद्ध हो--गलत ही होगा, सही नहीं हो सकता। कभी भूल-चूक से अंधे के हाथ बटेर लग भी जाए तो उसे तुम कोई बहुत मूल्य मत देना। कभी कोई चारों दिशाओं में तीर चलाता रहे और एकाध तीर निशाने पर लग भी जाए तो उसे तुम कोई धनुर्धर तो न कहोगे।

एक सम्राट एक गांव से गुजरता था। यह कथा सूफी कथा है। उस सम्राट को एक ही शौक था, एक ही उसका रुझान था। और वह था--दुनिया का सब से बड़ा धनुर्धर हो जाना। और निश्चित ही वह बहुत कुशल था। उसने बड़ी प्रतियोगिताएं जीती थीं; बड़े-बड़े सम्राट उसके सामने मात खा गए थे; बड़े-बड़े धनुर्धर पराजित हुए थे। लेकिन अब भी उसे लगता था कि मेरी कला अपनी परिपूर्णता पर नहीं पहुंची, अभी भी देर है। वह खुद तृप्त न था। जीत तो हाथ लगी थी, लेकिन उसे खुद कमियां दिखाई पड़ती थीं। जीत गया था, क्योंकि औरों में और

भी ज्यादा कमियां थीं, और और भी ज्यादा अपूर्ण थे। मगर यह उसे साफ दिखाई पड़ता था कि जीत का कारण मेरी पूर्णता नहीं है, उनकी अपूर्णता है। वह अभी भी तलाश में था कि कोई और राजों को खोलने वाला मिल जाए। इसी तलाश में ही निकला था। किसी ने खबर दी थी, दूर पहाड़ों में एक बुजुर्ग धनुर्धर रहता है। अपनी जवानी में उसने बड़ी ख्याति पाई थी। उसका निशाना अचूक है। रथ पर सवार हो वह उसी की खोज में निकला था।

लेकिन बीच में एक गांव पड़ा और चकित हुआ। चकित हुआ इसलिए कि गांव के दरख्तों पर, दरवाजों पर, दीवालों पर जगह-जगह उसने तीर चुभे देखे। और हर तीर ठीक निशाने पर लगा था, सौ प्रतिशत ठीक! क्योंकि दीवाल पर, दरवाजों पर, वृक्षों पर वर्तुल खिंचे थे चाक से और तीर ठीक बीच में लगा था, इतने बीचों-बीच कि उसे लगा कि पीछे खोजूंगा पहाड़ में छिपे हुए बुजुर्ग धनुर्धर को--जीवित भी हो या न हो--लेकिन यह कौन धनुर्धर है जिसकी मैंने खबर ही नहीं सुनी! उसने गांव में पूछताछ की।

लोग हंसने लगे। उन्होंने कहा, वह कोई धनुर्धर नहीं है। शेखचिल्ली है।

पर उसने कहा, तुम फिक्र न करो, शेखचिल्ली हो कि कोई भी हो, पागल हो तो भी कोई बात नहीं, उसका निशाना अचूक है।

लोग कहने लगे, आप समझने की कोशिश करो। उसका निशाना अचूक वगैरह कुछ भी नहीं है। वह सिर्फ पागल है। असल में, उसका काम यह है कि वह पहले तीर मार देता है और फिर जाकर वर्तुल बना देता है। इसलिए वर्तुल के बीच में तो तीर लगेगा ही। तीर तो पहले ही मार देता है, निशाना बाद में बना देता है। इसलिए आपको कभी भी उसके तीरों में कहीं कोई भूल-चूक न दिखाई पड़ेगी।

अक्सर जिनको तुम दार्शनिक कहते हो, वे ऐसे ही तीरंदाज हैं। विचारक जिनको तुम कहते हो, मनीषी जिनको तुम कहते हो, ऐसे ही तीरंदाज हैं। पहले तीर मार देते हैं, फिर निशान बना देते हैं। और तुम्हें भी उनकी बात जम जाती है, क्योंकि भाषा तुम्हारे ही अंधेपन की वे भी बोलते हैं। तुम्हें बुद्धों की बात तो शायद नहीं ही जमेगी, क्योंकि उनके और तुम्हारे बीच फासला बहुत। वे बोलते हैं उत्तुंग शिखरों से, हिमाच्छादित गौरीशंकर से, और तुम सुनते हो अपनी अंधेरी घाटियों से। वे बोलते हैं अपने जागरण से और तुम सुनते हो सोए-सोए, तंद्रा में खोए-खोए, मूर्च्छित, बेहोश। तुम तक बात पहुंचते-पहुंचते बिल्कुल बिगड़ जाती है, कुछ की कुछ हो जाती है।

पाल टिलिक विचारक हैं, चिंतक हैं। लेकिन मैं उन्हें धर्म-चिंतक नहीं कहूंगा। क्योंकि धर्म से चिंतन का कोई संबंध ही नहीं। किसी को धार्मिक-चिंतक कहना ऐसे ही है, जैसे किसी को स्वस्थ-बीमार कहना। बेमानी! अर्थहीन! या तो बीमार होगा या स्वस्थ होगा। स्वस्थ होगा तो बीमार नहीं, बीमार होगा तो स्वस्थ नहीं।

धर्म है निस्तरंग चित्त की प्रतीति। और विचार तो तरंगें हैं। और विचारक को तो और भी तरंगें होती हैं, तुमसे भी ज्यादा तरंगें होती हैं। तुम तो कभी-कभी निर्विचार के किसी क्षण में उतर भी जाते हो, लेकिन जिनको तुम विचारक कहते हो वे तो करीब-करीब विक्षिप्त होते हैं। विचार की अंतिम परिणति विक्षिप्तता है, सत्य का साक्षात्कार नहीं। और निर्विचार की अंतिम परिणति सत्य का साक्षात्कार है, बुद्धत्व है।

दूसरी बात, पाल टिलिक कहते हैंः "अकेला होना हर आदमी की किस्मत में बदा है।"

विचारक और क्या कहेगा? अंधा टटोल रहा है, दरवाजे का उसे पता नहीं। दरवाजा है भी, यह भी उसे पता नहीं। दरवाजा कभी था, यह भी उसे पता नहीं। बस टटोल रहा है। लग जाए हाथ तो ठीक। लेकिन टटोलने में बड़बड़ाता है, कुछ-कुछ कहता है, कुछ-कुछ बोलता है। ऐसी ही यह बड़बड़ाहट है। यह सन्निपात है। टिलिक का यह कहना--"अकेला होना हर आदमी की किस्मत में बदा है"--यह वक्तव्य उस आदमी का है जिसने अकेलापन तो जाना है, लेकिन एकांत नहीं जाना। और अकेलापन एकांत से बड़ी और बात है।

एकांत को तो जाना है किसी महावीर ने। इसलिए महावीर ने उस परम दशा को नाम दिया हैः कैवल्य। बस केवल चेतना शेष रह जाती है। और सब संसार गया। दूसरा गया। सिर्फ चैतन्य बचा--इतना शुद्ध, दर्पण जैसा, जिसमें अब कोई छाया भी नहीं बनती। कोई और है ही नहीं जिसकी छाया बने। इसको तुम अकेलापन मत कहना। यह है एकांत। एकांत आनंद की अवस्था है और अकेलापन विषाद की।

अकेलेपन का अर्थ है कि तुम्हें दूसरे की कमी अखरती है। अकेलेपन का अर्थ है कि तुम चाहोगे कि कोई होता। अकेलेपन का अर्थ है कि तुम अंधेरे में हो। अकेलेपन का अर्थ है कि तुम अपने साथ होने को राजी नहीं हो; तुम्हें दंश है, पीड़ा है। तुम इस अकेलेपन से छूट निकलना चाहते हो। जाकर सिनेमागृह में बैठ जाओगे, क्योंकि क्या करो, अकेले हो! अकेले ही लोग ताश भी खेलते हैं। ऐसे भी खेल हैं जिसमें दूसरे की जरूरत नहीं होती, खुद ही दोनों तरफ से चालें चलते हैं। समय को काटते हैं। अकेले लोग धर्मसभाओं में चले जाते हैं। क्या करें और? लेकिन उनकी धर्मसभाएं सिनेमागृहों से बहुत भिन्न नहीं। उनके मंदिर, उनकी मस्जिद, उनके गुरुद्वारे, उनके गिरजे धार्मिक ढंग के क्लब हैं, और कुछ भी नहीं। कोई रोटरी क्लब का मेंबर हो जाता है। कोई लायन क्लब का मेंबर हो जाता है। जैसे आदमी होने से कोई तृप्ति नहीं, इनको लायन होना पड़ेगा! जैसे आदमी होने से बहुत परेशान हैं, बहुत पीड़ित हैं।

एक रोटरी क्लब का गवर्नर रास्ता भटक गया जंगल में। बामुश्किल खोज पाया एक झोपड़े को। जिस स्त्री ने दरवाजा खोला, वह भी खुश हुई, क्योंकि वह भी अकेली थी। पति को दो दिन गए हुए, कह गया था सांझ तक लौट आएगा, दो सांझें बीत गईं और उसका पता नहीं; वह भी बड़ी अकेली थी और बड़ी डरी थी। और यह सुंदर, स्वस्थ, कीमती वेशभूषा में रोटरी क्लब का गवर्नर! उसने स्वागत किया। जो भी उस गरीब औरत से बन सका, भोजन बनाया, खिलाया-पिलाया, और कहा कि बड़ी कृपा हुई कि आप आ गए। उसने कहा, धन्यवाद मुझे देना चाहिए, क्योंकि मैं भटक गया, रात मुझे कहीं विश्राम करना था। स्त्री ने कहा कि मैं खुश हूं, क्योंकि मैं अकेली थी और परेशान थी। आप आए तो अच्छा हुआ।

रोटरी क्लब का गवर्नर, सज्जन आदमी, थोड़ा हिचकिचाया। अकेली स्त्री, जंगल का वास्ता, इसके साथ इस झोपड़े में रुकना या नहीं?

उस स्त्री ने कहा, आप आश्वस्त रहें, कोई चिंता न करें। मेरे पति का बिस्तर खाली है, आप सो सकते हैं।

वह सो तो गया, लेकिन नींद न आए। अकेला। करवटें बदले।

उस गरीब स्त्री को भी नींद न आए। वह भी अकेली, वह भी करवटें बदले। आखिर उस स्त्री ने पूछा कि मैं कुछ सेवा कर सकती हूं?

उसने कहा, नहीं-नहीं, कोई सेवा की बात नहीं। सो ही जाऊंगा, नींद आ ही जाएगी।

फिर थोड़ी देर, और फिर करवटें। फिर उस स्त्री ने पूछा उठ कर कि पैर दबा दूं, सिर दबा दूं, कोई तकलीफ है? किसी चीज की जरूरत हो तो संकोच न करें। मैं किसी भी काम आ सकूं तो मेरा सौभाग्य होगा।

युवती यूं तो गरीब थी, लेकिन सुंदर थी, युवा थी। रोटरी क्लब का गवर्नर यूं तो कई तरह के विचारों से भरा था, बड़े सपने देख रहा था; उन्हीं सपनों के कारण तो नींद न आती थी। वह स्त्री भी सपने देख रही थी। लेकिन कौन कहे, बात कौन तोड़े, कौन शुरू करे! यूं सुबह हो गई।

सुबह जब रोटेरियन गवर्नर विदा होने लगा, अपनी कार में बैठने के पहले उसने थोड़ी जानकारी लेनी चाही धन्यवाद देने के लिए--कैसा खेत है? कैसी खेतीबाड़ी है? मुर्गियां तेरी बड़ी सुंदर हैं! मुर्गे कितने हैं? तो मुर्गी तो एक ही थी, मुर्गे दो थे। रोटेरियन थोड़ा परेशान हुआ। उसने पूछा, यह मैं कुछ समझा नहीं--मुर्गी एक और मुर्गे दो! लोग तो पच्चीसों मुर्गी रखते हैं और एक मुर्गे से काम चला लेते हैं।

उस स्त्री ने कहा, क्या करूं! एक मुर्गा रोटेरियन गवर्नर है!

यहां हर आदमी अकेलेपन से परेशान है। लोग तलाश कर रहे हैं दूसरे की--कोई मिल जाए! किसी से अपने को भर लें! भीतर खालीपन है, रिक्तता है। और मजा यह है कि जो अपने से परेशान है, जो अपने से राजी नहीं, जो अपने साथ दो क्षण सुख से नहीं बैठ सकते हैं, वे सोचते हैं कि दूसरे को सुख दे सकेंगे। और दूसरे भी इसी अवस्था में हैं, सभी एक नाव पर सवार हैं। दूसरे सोचते हैं कि हम तो दुखी हैं अकेले में, लेकिन दूसरे को हम सुखी कर सकेंगे। और जब दो दुखी व्यक्ति, जिनका अकेलापन दोनों को काट रहा है, मिल जाते हैं, तो दुख घटता नहीं, अनंत गुना बढ़ जाता है। जुड़ता ही नहीं, जोड़ ही नहीं होता, गुणनफल हो जाता है। इसी को कहते हैं--सुखी दांपत्य जीवन! सारी पृथ्वी पर तुम सुखी दांपत्य जीवन को देखोगे। दुख अनंत गुना हो जाता है। मगर अकेले होने के दुख से लोग यही ज्यादा पसंद करते हैं, कम से कम अकेले तो नहीं हैं! उलझाए रखने को कुछ तो है, दुख ही सही, पीड़ा ही सही, परेशानी ही सही, कुछ तो है जो उलझाए रखता है, जो भीतर के शून्य को नहीं देखने देता, जो भीतर की रिक्तता को नहीं देखने देता। यह है अकेलापन।

लोग कामों में व्यस्त हैं। व्यर्थ के कामों में व्यस्त हैं। भाग रहे हैं, दौड़ रहे हैं। पूछो, क्यों? उत्तर नहीं है कोई पास सिवाय इसके कि अपने से परेशान हैं, अपने से भाग रहे हैं। हर आदमी अपने से भागा हुआ है। यह दुनिया भगोड़ों से भरी हुई है। इनमें से किसी को भी एकांत का कोई अनुभव नहीं है। पाल टिलिक को भी अकेलेपन का अनुभव है। और इसीलिए इस तरह के शब्दों का प्रयोग किया है। शब्द ही निंदा-सूचक हैं।

"अकेला होना हर आदमी की किस्मत में बदा है।"

किस्मत में बदा है! महावीर और बुद्ध, पतंजलि और लाओत्सु, जरथुस्त्र और जीसस एकांत की तलाश करते हैं, खोज करते हैं, अन्वेषण करते हैं; एकांत को साधते हैं, सम्हालते हैं, क्योंकि उससे बड़ी कोई संपदा नहीं है। महावीर कहेंगे कि अकेला होना बदा है?

महावीर तो कहेंगे कि भीड़ में होना बदा है। आदमी की किस्मत कि भीड़ में पैदा होता है, भीड़ में जीता है, भीड़ में बड़ा होता है। और भीड़ में पैदा होगा, भीड़ में जीएगा, भीड़ में बड़ा होगा--भेड़ हो जाएगा। आदमी कैसे होगा? और भीड़ में ही मर जाता है। यही भीड़ जब तुम पैदा होते हो तो घंटा-घड़ियाल बजाती है और यही भीड़ जब तुम मर जाते हो तो कंधों पर रख कर तुम्हारी अरथी को राम-नाम सत्य बोल कर मरघट पहुंचा आती है। तुम्हें कभी मौका ही नहीं मिलता कि थोड़ी देर को स्वयं हो जाते।

नहीं, महावीर या बुद्ध या कबीर यह कहने को राजी नहीं होंगे कि आदमी की किस्मत में अकेला होना बदा है। आदमी की किस्मत में भीड़ बदी हो भला, अकेला होना तो सौभाग्य है।

पाल टिलिक कहते हैंः "एक तरह से हर आदमी अकेला रहने के लिए अभिशप्त है।"

कैसा शब्द--अभिशप्त! अभिशाप! वरदान है एकांत, मगर एकांत का पाल टिलिक को कोई अनुभव नहीं है। एकांत तो ध्यान की साधना से मिलता है। ध्यान के बीज बोओ तो किसी दिन एकांत की फसल काटोगे।

अकेला होना तो बिल्कुल सरल है; दरवाजा बंद कर लो, द्वार बंद कर लो, रेडियो बंद कर दो, बैठ जाओ--अकेले हो। रोओ, सोचो--कहां जाएं, क्या करें क्या न करें! उसी अखबार को फिर से पढ़ो जिसको सुबह से तीन बार पढ़ चुके हो।

मैं एक घर में मेहमान था। अखबार पढ़ने वाले मैंने बहुत देखे, मगर जिनके घर मैं मेहमान था, वे लाजवाब थे। वे शुरू से पढ़ते थे। उस गांव के अखबार में शुरू में ही लिपटन का विज्ञापन, इसके बाद अखबार का नाम, इसके बाद संपादक का नाम। वे यहीं से पढ़ना शुरू करते। वही अखबार, वही लिपटन, वही संपादक, मगर वे यहीं से पढ़ना शुरू करते थे। और अंत तक पढ़ते थे--अंत, जहां किस छापेखाने में छपा है। और यह दिन में कई दफे करते थे वे। काम ही न था। मैंने उनसे पूछा कि यूं साधारणतः मुझे अचंभा नहीं होता, कबीरदास को बहुत होता था--एक अचंभा मैंने देखा! तुम्हें देख कर मुझे भी होने लगा है। तुम्हें देख कर मन होता है कि कहूं--

एक अचंभा मैंने देखा! तुम सुबह से इसी अखबार को कितनी दफे पढ़ते हो और वहीं से शुरू करते हो और वहीं अंत करते हो।

अब आनंद मैत्रेय प्रसन्न हो रहे हैं, वे भी यही करते हैं! और ऐसा भी नहीं कि आज का ही अखबार, पुराने भी इकट्ठे रखते हैं, थप्पी लगाते चले जाते हैं। कहते हैं न आदतें बड़ी मुश्किल से जाती हैं! संसद के सदस्य थे, दो सत्रों तक सदस्य रहे। किसी तरह मेरे चक्कर में पड़ गए। संसद से तो बचा लिया, दिल्ली से छुटकारा करवा दिया, मगर वे अपने चारों तरफ अखबार के ढेर लगाए चले जाते हैं। उनके कमरे को जो संन्यासिनियां साफ करने जाती हैं, वे मुझे खबर भेजती हैं कि अखबारों का क्या करें! क्योंकि वे तो बढ़ते ही जा रहे हैं। और नाहक उनकी रोज सफाई!

सांप भी चला जाता है, मगर लकीर तो रह ही जाती है। हाथी निकल जाता है, मगर पूंछ रह जाती है।

आदमी अकेला बैठ ही नहीं सकता। तुम जरा बैठ कर देखो, अचानक पाओगे कि पैर पर चींटी चढ़ रही है! और पाजामा खींच कर देखो, कहीं कोई चींटी नहीं! यह चींटी तुमने कल्पित कर ली। तुम्हारे अकेलेपन में कुछ न हो, न सही स्त्री, न सही पुरुष, चलो चींटी सही, चींटा सही! कुछ भी चढ़े तो! कुछ हो तो! कहीं कमर में दर्द, कहीं कान में सनसनाहट की आवाज, कहीं चूहा खटखट!

मुल्ला नसरुद्दीन को एक बीमारी थी कि वह रात में कई दफे उठ कर देखे कि बिस्तर के नीचे कोई है तो नहीं! सो ही न पाए। इधर नींद लगे कि उधर बस डर पैदा। डाक्टरों ने बहुत दवाइयां दीं, नींद की दवाइयां दीं। कोई दवाइयां काम न आएं। वह रात में कई दफे उठ कर देखे ही। आखिर डाक्टरों ने कहा कि यह मामला मानसिक है, तो मानसिक चिकित्सक के पास जाओ।

मानसिक चिकित्सक ने भी बहुत मनोविश्लेषण किया, बड़े सपनों की तलाश की। मगर सपनों वगैरह से कुछ लेना-देना हो तब!

आखिर मनोवैज्ञानिक ने भी कहा कि हाथ जोड़े भाई, यह बीमारी ठीक नहीं होगी। इसका कोई सूत्र ही नहीं मिलता, इसकी जड़ ही नहीं मिलती। यह है किस तरह की बीमारी? तुम देखते क्या हो बार-बार उठ कर?

कि मुझे शक पैदा हो जाता है कि कोई छिपा न हो।

अरे जब दरवाजे बंद हैं, ताला लगा कर सोए हो, खिड़कियां बंद हैं, कोई छिपा कैसे होगा?

नसरुद्दीन कहता कि मैं भी अपने को समझाता हूं कि अरे भई, ताला बंद है। मगर तब ख्याल आता है, पता नहीं आज खुला छोड़ दिया हो, खिड़की की भूल-चूक से सिटकनी न लगी हो। और आदमी ऐसे चालबाज हो गए हैं कि बाहर से सिटकनी खोल लें। कोई आ ही गया हो, एक दफा देख ही लूं। और बस उठा कि नींद खराब हो जाती है, फिर घंटे भर में बामुश्किल नींद लगती है और फिर वही।

कोई महीने भर बाद मनोवैज्ञानिक ने देखा कि नसरुद्दीन बड़ी तेज चाल से सुबह-सुबह घूमता हुआ बगीचे से लौट रहा है, बड़ा प्रसन्न दिखाई पड़ रहा है। पूछा कि आज बड़े प्रसन्न हो, उदासी नहीं, रात भर की थकान का क्या हुआ? अब उठ कर नहीं देखते?

उसने कहा कि सब खतम हो गया; मेरी सास क्या आई, दो मिनट में उसने बीमारी खतम कर दी! बड़े-बड़े डाक्टर हार गए, तुम भी हार गए, बड़े-बड़े मनोवैज्ञानिक हार गए, ताबीज बांधे, मजारों पर गया, फकीरों की सेवा की, क्या-क्या नहीं किया, सब गोरखधंधे कर लिए! मगर मेरी सास क्या गजब की स्त्री है, आई और खत्म कर दिया।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, भई मुझे भी बता दो। कभी किसी और को बीमारी हो ऐसी तो काम आ जाए।

उसने कहा कि मामला बड़ा सीधा-सादा है। वह गई और आरा उठा लाई और चारों पैर खाट के काट दिए। अब खाट लग गई जमीन से। अब लाख मैं शक करूं, क्या फायदा! अंदर कोई घुस ही नहीं सकता। अब शक करने से मतलब ही क्या है? उठ कर भी क्या देखना है? जमीन पर ही पड़े हैं।

आदमी को अकेला छोड़ो, कुछ-कुछ सोचेगा। जरा हवा का झोंका आएगा और लगेगा भूत-प्रेत आ गए! कि कोई लफंगा बांसुरी बजा देगा, और वे सोचेंगे कि कृष्ण-कन्हैया तो नहीं आ रहे! कि कोई छत पर बंदर चलेगा, लगेगा कि हनुमान जी तो नहीं हैं! क्या-क्या ख्याल उठेंगे। ऊंचे-ऊंचे ख्याल उठेंगे।

अकेलेपन को आदमी भरता है; दुख ही सही, दुख से ही भर लेगा, कल्पना ही सही।

पाल टिलिक ने अकेलापन जाना होगा। अकेलेपन के लिए अंग्रेजी में शब्द हैः लोनलीनेस! और एकांत के लिए अंग्रेजी में शब्द हैः अलोननेस। बनते तो एक ही शब्द से हैं दोनों, मगर बड़े अलग हो जाते हैं। एकांत! एकांत का अर्थ है विधायकता, अपना होना। और अकेलेपन का अर्थ है दूसरे का मौजूद न होना। अकेलापन दूसरे पर दृष्टि बांधे है और एकांत अपने पर आ गया, अपने पर लौट आया। और एकांत अभिशाप नहीं है, वरदान है।

पाल टिलिक निश्चित ही विश्वविख्यात विचारक थे और ईसाइयों के बहुत बड़े धर्म-चिंतक; जैसा कि नरेंद्र बोधिसत्व ने कहा। ईसाई उनको धर्म-चिंतक मानते हैं। बड़े धर्मगुरु!

लेकिन क्या खाक धर्मगुरु! इन्होंने एकांत का स्वाद ही नहीं जाना। नहीं तो बात कुछ और ही होती। क्योंकि इस जगत में जो भी महत्वपूर्ण है, वे सारे फूल एकांत में खिले हैं। सहस्रदल कमल एकांत में खिला है, एकांत की झील में खिला है। समाधि के सारे इंद्रधनुष एकांत के आकाश में ही फैले हैं। मनुष्य की आत्मा ने ऊंचे से ऊंची उड़ान एकांत के जगत में ही ली है। मनुष्य ने अगर पहचाना है अपनी भगवत्ता को तो एकांत में पहचाना है।

इसलिए मैं पाल टिलिक से, नरेंद्र बोधिसत्व, राजी नहीं हूं; बिल्कुल राजी नहीं हूं, एकदम विरोध में हूं। हां, अकेलेपन के लिए वह जो कह रहा है, ठीक कह रहा है। मगर अकेलापन एकांत नहीं है। अकेलापन तो किसी को भी मिल सकता है।

पत्नी मायके चली गई और तुम अकेले हो गए। वही पत्नी, जिसे देख कर तुम घबड़ाते थे, जब मायके चली जाती है तो कैसी-कैसी प्रेम-पातियां लिख कर भेजने लगते हो! तुम पत्नी को नहीं लिख रहे हो प्रेम-पातियां, वह अकेलापन काट रहा है। अरे माना कि कभी सामान भी फेंकती थी तुम्हारे ऊपर, बेलन से भी मारती थी माना, माना कि सब्जी में ज्यादा नमक डाल देती थी जब गुस्सा होती थी और माना कि चाय दे देती थी बिना शक्कर के, यह सब माना--मगर कुछ तो होता था! कुछ खटर-पटर तो थी। घर में कुछ शोरगुल तो था। मेला तो लगा रहता था। अरे कुछ झमेला तो बना रहता था। जब से गई है, सन्नाटा है, एकांत है। न कोई झगड़ा है, न कोई झांसा है। अब बैठे रहो अकेले, करते रहो रामभजन।

मगर लाख रामभजन करो, कुछ हल नहीं होता। वह जो पत्नी गई है, उसकी याद आती है। उसके कृत्यों के कारण नहीं आती; उसके कृत्य आ जाएं, तब तो तुम अपने को सौभाग्यशाली समझो। उसके कृत्य याद नहीं आते। अभी तो याद आता है कि कम से कम थी, तो घर में कुछ चहलकदमी तो होती थी। नहीं है तो अकेलापन काटता है।

इसलिए मायके गई स्त्रियों को पतियों के जब प्रेम-पत्र मिलते हैं तो वे बड़ी प्रसन्न होती हैं; वे समझती हैं ये पत्र हमें लिखे गए हैं। गलती में हैं। वे बेचारे अपने अकेलेपन से परेशान हैं। इसलिए क्या-क्या अच्छी-अच्छी बातें लिखते हैं, कि हे प्राण-प्यारी, हे राजदुलारी, कि अब और न तड़फाओ, कि थोड़ा लिखा और ज्यादा समझना, कि चिट्ठी लिखी और तार समझना, और तार समझ कर बस एकदम आ जाओ।

ये सिर्फ अकेलेपन से घबड़ाए हुए हैं। ये ही अकेलेपन से घबड़ाए हुए लोग, अगर इनकी पत्नियां न हों, तो धार्मिक हो जाते हैं। कृष्ण-कन्हैया को बिठाए हुए हैं। झूला झुला रहे हैं। झूला झूलें कन्हैया लाल! अब कन्हैया लाल ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? क्यों इन बेचारों को झूला झुला रहे हो? इनको कोई और काम नहीं कि बस तुम्हारा झूला ही झूलते रहें? बैठे हैं, घंटी बजा रहे हैं, पूजा कर रहे हैं, मंत्र-तंत्र-यंत्र क्या-क्या नहीं कर रहे हैं! और कुल मामला इतना है कि शांत-मौन नहीं बैठ सकते हैं। कुल मामला इतना है।

स्त्रियों को भलीभांति पता है कि छुट्टी के दिन बच्चे भी घर में होते हैं, वे भी उपद्रव मचाते हैं और उनसे भी ज्यादा उपद्रव पति मचाता है। अकारण उपद्रव मचा देता है। अच्छी-भली चलती हुई घड़ी को खोल कर बैठ जाएगा, कि सफाई कर रहे हैं। कार के पहिए निकाल लेगा, इंजन खोल लेगा। क्या कर रहे हो?

तो कहेगा कि जरूरी है, कार के मैन्युअल में लिखा हुआ है।

गाड़ी अच्छी-भली चलती थी। लेकिन इसकी तकलीफ यह है कि कैसे बैठे! कुछ तो करेगा। कुछ उपद्रव तो करेगा। कुछ न करे तो चौबीस घंटे अनंत काल जैसे मालूम होंगे।

पाल टिलिक ने इसी तरह के अकेलेपन की अनुभूति की होगी, इसलिए बदकिस्मती कहते हैं, अभिशाप कहते हैं।

मैंने एकांत जाना है। और यहां मेरे पास जो लोग हैं, वे एकांत को जानने की दिशा में प्रतिपल आगे बढ़ रहे हैं। वे पाल टिलिक से राजी नहीं हो सकते। एकांत सौभाग्य है, वरदान है--इस जगत का सबसे बड़ा वरदान। क्योंकि जिस क्षण तुम परिपूर्ण रूप से एकांत हो जाते हो, उसी क्षण तुम मुक्त हो गए संसार से। अब तुम निर्भर न रहे--न वस्तुओं पर, न कृत्यों पर। अब तुम किसी चीज पर निर्भर न रहे। यही मुक्ति है, यही मोक्ष है।

नरेंद्र बोधिसत्व, तुमने पूछाः "भगवान, क्या यह सच है? क्या आप भी आदमी को उसके अकेलेपन से छुटकारा नहीं दिला सकते हैं?"

दूसरा कोई नहीं दिला सकता, क्योंकि दूसरा दिलाएगा तो दूसरा तो मौजूद रहेगा। फिर तुम दूसरे पर निर्भर हो जाओगे। अगर मैं तुम्हें तुम्हारे अकेलेपन से छुटकारा दिला दूं तो निश्चित ही तुम मुझ पर निर्भर हो जाओगे, क्योंकि मेरे बिना फिर तुम अकेले हो जाओगे। इसलिए कोई सदगुरु किसी को उसके अकेलेपन से छुटकारा नहीं दिलाता। हां, एकांत की तरफ इशारे करता है। एकांत की तरफ जाने का मार्ग सुझाता है, द्वार दिखाता है। एकांत की तरफ अंगुलियां उठाता है।

अकेलेपन से तुम्हें दूर नहीं करता, लेकिन एकांत की तरफ जाने के लिए सारा आयोजन जुटाता है। अकेलेपन से तो छुड़ाना बहुत आसान है। यही तो चल रहा है। मंदिरों में, मस्जिदों में, गुरुद्वारों में तुम्हारे तथाकथित धर्मगुरु, पंडित, संत-महात्मा और क्या कर रहे हैं? तुम्हें अकेलेपन से छुड़ा रहे हैं। वे तुमसे कह रहे हैं कि घबड़ाओ मत... ।

कल किसी ने मुझे प्रश्न पूछा था कि शिरडी के साईं बाबा मरने के पहले कह गएः घबड़ाओ मत! जो मुझे भजेगा, मरने के बाद भी मैं उसकी सहायता को मौजूद रहूंगा। जो मेरी शरणागति रहेगा, मैं भागा हुआ आऊंगा। जो मुझे पुकारेगा, उसकी पुकार खाली न जाएगी।

मुझे पता नहीं कि शिरडी के साईं बाबा कह गए या नहीं कह गए, मगर यही चल रहा है। शिरडी के साईं बाबा की मजार पर लोग जो इकट्ठे होते हैं वे किसलिए इकट्ठे हो रहे हैं? इन्हीं आश्वासनों के कारण। पता नहीं उन्होंने दिए कि नहीं। मैं नहीं सोचता कि दिए होंगे, क्योंकि वे आदमी इस तरह की बातें कहने वाले आदमी न थे। लेकिन ईजाद कर लिए होंगे पंडितों ने, पुरोहितों ने। जो उनके पीछे मजार के मालिक हो गए हैं, उन्होंने ईजाद कर लिए होंगे ये शब्द। और इन्हीं शब्दों के सहारे सारा का सारा धंधा चल रहा है। आदमी यही तो चाहता है कि जब पुकारूं, शिरडी के साईं बाबा भागे चले आएं, ताकि अकेला न रहूं। इधर आवाज दूं, उधर वे हाजिर। इधर घंटी बजाई कि उधर वे हाजिर।

तुमने शिरडी के साईं बाबा को कोई होटल का बैरा समझा है? तुम पागल हो गए हो! कोई सदगुरु ऐसा भागा-वागा नहीं आता और न आने की कोई जरूरत है। सदगुरु का काम तुम्हें निर्भर बनाना नहीं है, तुम्हें मुक्त करना है; तुम्हें इस योग्य बनाना है कि किसी की कोई जरूरत ही न रह जाए। भगवान की भी कोई जरूरत न रह जाए, तभी समझना कि सदगुरु ने तुम्हें कोई साथ दिया। कोई जरूरत न रह जाए, तुम अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, तुम अपनी निजता में आरूढ़ हो जाओ। इस अवस्था को ही कृष्ण ने स्थितप्रज्ञ की अवस्था कहा है।

दूसरा प्रश्नः ओशो,

बुल्लेशाह ने एक अक्षर का गुण गाया है।

इक अलफ पढ़ो छुटकारा है।

इस अलफों दो तीन चार होए, फिर लख करोड़ हजार होए।

फिर ओत्थों बेशुमार होए, इक अलफ दा नुकता न्यारा है।

इक अलफ पढ़ो छुटकारा है।

क्यों पढ़ना ए गड्डु कताबां दी, सिर चाई पंड अजाबां दी।

हुन होया शकल जलादां दी, अगे पैंडा मुशकल भारा है।

इक अलफ पढ़ो छुटकारा है।

बन हाफज हिफज कुरान करें, पढ़ पढ़ के साफ जबान करें।

फिर निहमत विच धयान करें, मन फिरदा ज्यों हलकारा है।

इक अलफ पढ़ो छुटकारा है।

बुल्ला बी बोहड़ दा बोया सी, उह बिरछ वडा जां होया सी।

जद विरध उह फानी होया सी, फिर रह गया बी अकारा है।

इक अलफ पढ़ो छुटकारा है।

अर्थात बुल्लेशाह कहते हैंः एक अक्षर पढ़ो--और छुटकारा है। इस एक अक्षर से दो तीन चार हुए, फिर लाख करोड़ हजार हुए, फिर उससे बेशुमार हुए। एक अक्षर का रहस्य अनूठा है। एक अक्षर पढ़ो--छुटकारा है।

किताबों की गठरी क्यों पढ़ते हो? सिर पर तुमने अजायबघर की वस्तुओं का ढेर लगा रखा है। और तुम्हारी शक्ल-सूरत जल्लादों की हो गई है। इसलिए आगे के पथ पर भारी मुश्किलें हैं। एक अक्षर पढ़ो--छुटकारा है।

तुम कुरान को रट-रट कर हाफज--कुरान के रक्षक--बन गए हो और पढ़-पढ़ कर अपनी जबान स्वच्छ कर रहे हो। फिर निहमत में ध्यान करते हो। परंतु मन तुम्हारा गोल-गोल घूम रहा है। एक अक्षर पढ़ो--छुटकारा है।

बुल्लेशाह कहते हैं कि वट-वृक्ष का बीज बोया था, वह वृक्ष बहुत बड़ा हो गया, फिर वह वृक्ष फानी हो गया, तो फिर वही बीज के आकार में हो गया। एक अक्षर पढ़ो--छुटकारा है।

ओशो, निवेदन है कि समझाएं कि यह एक अक्षर क्या है और इसके पढ़ने से मुक्ति का क्या संबंध है।

चैतन्य कीर्ति,

अक्षर शब्द में ही बड़ा राज छिपा है। अक्षर का अर्थ होता है, जिसका क्षय न हो, जो सदा है। फिर जिसने उसे जान लिया जो सदा है और जिसका क्षय नहीं होता, उसे जानने को कुछ भी नहीं बचता। उसने शाश्वत को जान लिया। और वह अक्षर तुम्हारे भीतर है। बाहर भी है, लेकिन उसे जानना हो तो पहले भीतर जानना होगा, क्योंकि भीतर करीब है और बाहर दूर है।

बुल्लेशाह ठीक कहते हैं। एक अक्षर के पढ़ने से जब सारी बात हो जाएगी, तो क्यों फिजूल की झंझट में पड़ रहे हो? क्यों विचारों के उपद्रव में पड़ रहे हो? यह सारी बारहखड़ी, यह वर्णमाला, और वर्णमाला से फिर और-और शब्दों का जोड़, और शब्दों से फिर सिद्धांत, और सिद्धांतों से फिर दर्शनशास्त्र--जंगल बड़ा होता चला जाता है और तुम खोते चले जाओगे। अक्षर ही काफी है, शब्दों के जंगल में न भटक जाना।

क्यों पढ़ना ए गड्डु कताबां दी।

यह क्या पागलपन है, क्यों किताबों की गठरी ढो रहे हो? जब कि तुम्हारे भीतर चैतन्य का सारा राज छिपा है। अमृत का कुंड तुम्हारे भीतर है और तुम किताबों में खोज रहे हो! सत्य तुम्हारी संपत्ति है और तुम भिखारी बने न मालूम कहां-कहां भटक रहे हो, किस-किस के सामने झोली फैला रहे हो!

"किताबों की गठरी क्यों पढ़ते हो? सिर पर तुमने अजायबघर की वस्तुओं का ढेर लगा रखा है।"

कितना बड़ा हो गया है ढेर! लेकिन ढेर की भी लोग बड़ी महिमा गाते हैं। जिसका ढेर जितना बड़ा, वह सोचता है उतनी ही महिमा की बात। और जिसकी किताबें जितनी पुरानी, जितनी सड़ी-गली, जितनी जीर्ण-जर्जर, वह सोचता है मेरे पास उतनी ही बड़ी धर्म की संपदा है। इसलिए हर धर्म चेष्टा करता है कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी। हिंदू कहते हैं, वेद सबसे ज्यादा पुराने। और पारसी कहते हैं, जेंदावेस्ता सबसे ज्यादा पुरानी। और जैन कहते हैं कि हमारे पहले तीर्थंकर का नाम ऋग्वेद में उपलब्ध है; जाहिर है कि हमारा धर्म ऋग्वेद से भी पुराना। क्योंकि जब तीर्थंकर का नाम ऋग्वेद में उपलब्ध है, तो एक बात तो पक्की है कि हमारा प्रथम तीर्थंकर समसामयिक न रहा होगा ऋग्वेद का। क्योंकि समसामयिक व्यक्ति को कोई समादर से पुकारता नहीं। और ऋग्वेद ने ऋषभदेव को बहुत आदर से पुकारा है। इतने सम्मान से पुकारा है, जो कि इस बात का सबूत है कि कम से कम दो सौ, तीन सौ साल तो बीत ही चुके होंगे।

आदमी बड़े अजीब हैं।

कल ही मेरे पास एक पत्र आया जर्मनी के एक बहुत बड़े धर्मगुरु का, जिसने लिखा है और जिसने रेडियो और टेलीविजन पर मेरे संबंध में वक्तव्य दिए हैं। उन वक्तव्यों में उसने यही बात कही है, वही बात मुझे लिखी है--कि और सब बातें मैं आपकी मान सकता हूं, लेकिन यह बात माननी असंभव है कि कोई जीवित व्यक्ति भगवान माना जाए।

अब विचारणीय यह है कि मरे व्यक्ति को भगवान मानने में उसे कोई तकलीफ नहीं, जीवित व्यक्ति को भगवान मानने में तकलीफ है। उसकी दलील यह है कि जीवित व्यक्ति को कैसे भगवान मानें!

यह तो बड़ा अनूठा तर्क हुआ! जब बुद्ध जीवित थे तो भगवान नहीं थे और जब मर गए तो भगवान हो गए! और जब महावीर जीवित थे तो भगवान नहीं थे और जब मर गए तो भगवान हो गए! एक बात इससे सिद्ध होती है कि भगवान का संबंध जीवन से नहीं, मौत से है। इसका मतलब यह है कि नीत्शे ठीक कहता है कि भगवान मर चुका है। अगर मरे हुए ही भगवान हो सकते हैं, तो फिर ऊपर जो आकाश में बैठा भगवान है, जिसकी चर्चा ईसाई करते हैं और प्रार्थना करते हैं, उसको ऊपर न बिठाओ, कब्र में दबाओ। जितना गड़ा दो गहरा उतना अच्छा, क्योंकि उतना बड़ा भगवान होगा। और यह तर्क कैसा कि जब कोई जीवित हो तो भगवान नहीं हो सकता और जब वही व्यक्ति मर जाए तो भगवान हो सकता है।

जैनों का तर्क यह है कि अगर ऋषभदेव को भगवान की तरह याद किया गया है तो जाहिर है कि उनको मरे काफी समय हो चुका होगा, कम से कम दो-चार सौ वर्ष तो निकल ही चुके होंगे। हमारा धर्म ऋग्वेद से ज्यादा पुराना है।

मगर हिंदू कुछ और कहते हैं। वे कहते हैं, ऋषभदेव नहीं है वह नाम, वृषभदेव है। हमारा मतलब सांड से है। हमारा मतलब कोई जैनियों के तीर्थंकर से नहीं है।

अब यह भी बड़ी मजे की बात है कि जैनियों के तीर्थंकर की प्रशंसा करने में उनको एतराज है, सांड की प्रशंसा करने में एतराज नहीं। सांड की बात ही और है! गऊमाता की सेवा में रत रहता है! शिवजी का पुराना सेवक है--नंदीबाबा! उनका पहरेदार है। जैसे हमारे नंदीबाबा हैं--संत महाराज! पक्के नंदीबाबा हैं! और जब मुझे नंदीबाबा खोजना पड़ा तो स्वभावतः पंजाबी को ही खोजना पड़ा, और तो कहां नंदीबाबा पाओगे! अब कोई बंगाली को नंदीबाबा बना कर बैठाओगे क्या? मूल नंदीबाबा भी पंजाब के ही रहे होंगे। और ऋग्वेद में जिस, हिंदुओं के हिसाब से वृषभदेव और जैनियों के हिसाब से ऋषभदेव, वे भी पंजाब के ही रहे होंगे वृषभदेव।

क्योंकि वस्तुतः ऋग्वेद पंजाब में ही रचा गया। सबसे पहले आर्य आए तो वे पंजाब में ही आए, फिर धीरे-धीरे फैले गंगा की तरफ उत्तर प्रदेश में, बंगाल तक पहुंचते-पहुंचते तो बहुत समय लग गया। इसलिए तो बंगाली एकदम ढीले हो गए। लंबी यात्रा, धोती बिल्कुल ढीली हो गई। थोड़ा-बहुत आर्यों का बल अगर रहा तो पंजाब में, पंजाब में थोड़ा पानी रहा। बंगाली तो बेचारा सिर्फ बाबू हो गया। बाबू यानी जिससे बदबू आती है--मछली की बदबू। बू सहित, अर्थात बाबू।

किताबों की गठरियां और दावे कि हमारी किताब सबसे ज्यादा पुरानी है, अजायबघर बना रखा है अपने सिर पर। हर आदमी ब्रिटिश म्यूजियम को ढो रहा है। और तब तुम्हारी शक्ल-सूरत अगर जल्लादों की हो गई तो आश्चर्य क्या! और तुम्हारे तथाकथित धार्मिकों ने सिवाय जल्लादी के और किया क्या है? हिंदुओं ने मुसलमान मारे, मुसलमानों ने हिंदू मारे, हिंदुओं ने बौद्ध मारे, ईसाइयों ने मुसलमान मारे, यहूदियों को मारा, मुसलमानों ने ईसाइयों को मारा। इस सारी जमीन पर इन किताबों के ठेकेदारों ने, इन कुरान, गीता और बाइबिल के मालिकों ने किया क्या है? जमीन को रक्त से भर दिया है।

ठीक कहते हैं बुल्लेशाह कि तुम्हारी शक्ल-सूरत जल्लादों की हो गई है। इसलिए आगे पथ पर भारी मुश्किलें हैं। उतारो ये किताबें अपने सिर से! एक अक्षर काफी है। अपने भीतर डूब जाओ। उस एक अक्षर के नाद को सुनो। उस एक अक्षर को हमने ओंकार कहा है। वह भीतर कलकल जो तुम्हारे चैतन्य का नाद है, वह जो तुम्हारी चेतना का संगीत है, वही अक्षर है। उस एक को पढ़ लो तो छुटकारा है।

क्या कर रहे हो? जबान को स्वच्छ कर रहे हो! घिस-घिस कर कुरान की आयतें जबान पर जबान को स्वच्छ कर रहे हो! कुरान न हुई कोई जीभ साफ करने की जीभी हुई! और फिर ध्यान क्या खाक करोगे! शब्दों से भरे हुए बैठोगे, ध्यान क्या करोगे? ध्यान में तो निःशब्द होना है, मौन होना है। फिर तुम्हारा मन गोल-गोल घूमेगा। वही आयतें, वही आरतियां, वही वंदन, वही जय गणेश जय गणेश, लौट-लौट कर आएगा। मन से तो मुक्त होना है और ये सारी किताबें तो मन को ही भरेंगी।

बुल्लेशाह कहते हैंः "वट-वृक्ष का बीज बोया था। वह वृक्ष बहुत बड़ा हो गया। फिर वह वृक्ष फानी हो गया, तो फिर वही बीज के आकार में हो गया। एक अक्षर पढ़ो--छुटकारा है।"

तुम्हारे भीतर बीज है--परमात्मा का, भगवत्ता का। उसी का फैलाव है। वही जीवन है। जन्म में वही शुरू होता है, पल्लवित होता है, मृत्यु में वही फिर वापस अपने मूलगृह में लौट जाता है। और जो मरने के पहले उस मूलगृह को पहचान लेता है, जो अपने मूलस्रोत पर आ जाता है, उसका जीवन धन्य हो जाता है। उसके जीवन में मुक्ति है। उसके जीवन में आनंद है। उसके जीवन में अमृत की वर्षा है।

आखिरी प्रश्नः ओशो,

आद्य शंकराचार्य की एक प्रश्नोत्तरी इस प्रकार है।

मूकोऽस्ति को वा बधिरश्च को वा
वक्तुं न युक्तं समये समर्थः।
तथ्यं सुपथ्यं न शृणोति वाक्यं
विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी--

गूंगा कौन है? जो समय पर उचित बात कहने में समर्थ नहीं है। बहरा कौन है? जो यथार्थ और सुपथ्य वचन नहीं सुनता है। और विश्वास के योग्य कौन नहीं है? नारी।

ओशो, इस प्रश्नोत्तरी पर कुछ कहने की अनुकंपा करें।

सहजानंद,

आद्य शंकराचार्य को पिटवाने का तुमने निर्णय ही कर रखा है? तुम क्यों उनके पीछे हाथ धोकर पड़े हो?

अगर उनको तुम्हारा पता होता तो वे कहतेः "विश्वास के योग्य कौन नहीं है? सहजानंद!"

जो-जो कूड़ा-कचरा तुम्हें उनमें मिल रहा है, तुम छांट-छांट कर ला रहे हो।

अब ये बच्चों जैसे उत्तरः "गूंगा कौन है? जो समय पर उचित बात कहने में समर्थ नहीं है।"

और कौन तय करेगा कि उचित बात क्या है? क्योंकि जिस बात को शंकराचार्य उचित कहते हैं, बुद्ध उचित नहीं कहते। जिस बात को बुद्ध उचित कहते हैं, महावीर उचित नहीं कहते।

शंकराचार्य कहते हैं, ब्रह्म सत्य है और जगत माया है।

और महावीर कहते हैं, ब्रह्म तो है ही नहीं। सत्य का सवाल ही नहीं उठता। आत्मा है--व्यक्तिगत आत्मा। स्मरण रहे, ब्रह्म का अर्थ होता है सार्वभौम आत्मा। महावीर व्यक्तिवादी हैं। महावीर कहते हैं, व्यक्तिगत आत्मा है, कोई सार्वभौम परमात्मा नहीं है। और जगत सत्य है।

और बुद्ध? बुद्ध कहते हैं, न कोई परमात्मा है, न कोई आत्मा है, न कोई जगत है--सब कल्पना है, सब कल्पना का खेल है।

किसको उचित कहोगे? कौन सही है? तब तो महावीर की दृष्टि में शंकराचार्य गूंगे और शंकराचार्य की दृष्टि में बुद्ध गूंगे और बुद्ध की दृष्टि में जीसस गूंगे, सभी गूंगे हो जाएंगे।

मुझसे अगर तुम पूछो, गूंगा कौन है? तो मैं कहूंगा, ध्यान गूंगा है। क्योंकि ध्यान में जो जाना जाता है उसे कभी नहीं कहा जा सका; आज तक नहीं कहा जा सका। लाख कहने के उपाय किए गए, सब उपाय व्यर्थ हुए। कह-कह कर भी अनकहा रह गया। इसलिए मैं तो ध्यान को गूंगा कहूंगा। शंकराचार्य की बात तो बचकानी है।

उपनिषद कहते हैं, जो कहे कि मैं जानता हूं, जानना कि नहीं जानता। और जो कहे कि मैं नहीं जानता हूं, जानना कि जानता है।

यह बात कुछ वजन की है।

सुकरात कहता है, मैं तो एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता।

यह बात थोड़े मतलब की है, थोड़ी गहराई की है।

बोधिधर्म से जब सम्राट वू ने पूछा, तुम कौन हो? बोधिधर्म ने कहा, मैं! मुझे कुछ पता नहीं।

क्या तुम सोचते हो बोधिधर्म को पता नहीं था? पता था। मगर कहो कैसे!

प्रसिद्ध झेन फकीर रिंझाई नदी के किनारे बैठा था। और एक विचारक उससे मिलने गया, रहा होगा पाल टिलिक जैसा विचारक। उसने पूछा कि संक्षिप्त में मुझे कहो कि तुम्हारी सारी देशना का सार क्या है? रिंझाई जैसा बैठा था वैसा ही बैठा रहा; जैसे उसने सुना ही नहीं! सोचा उस विचारक ने, लगता है बूढ़ा बहरा भी है। जोर से पूछा। फिर भी कुछ न बोला रिंझाई। हिला कर पूछा कि तुम्हें हो क्या गया है? अरे मैं पूछ रहा हूं कि तुम्हारी देशना का सार क्या है?

रिंझाई ने कहा, वही तो मैं बता रहा हूं। चुप बैठा हूं। तुम पूछ रहे हो, मैं बोल नहीं रहा हूं। यह मेरी देशना का सार है। पूछो लाख, बोला नहीं जा सकता।

चिंतक ने कहा कि यह बात मेरी पकड़ में न आएगी। थोड़ा तो कुछ कहो, संक्षिप्त ही सही। मैं कोई बुद्धू नहीं हूं। तुम संक्षिप्त सा ही कह दो, एक शब्द भी कह दो, तो समझ लूंगा।

फिर भी रिंझाई बोला नहीं। बोलने की बजाय उसने अपनी अंगुली से रेत पर लिख दिया--ध्यान।

विचारक ने पढ़ा और उसने कहा कि ठीक, कम से कम कुछ तो तुमने कृपा की, मगर इससे मुझे कुछ ज्यादा समझ में नहीं आता। कुछ थोड़ा विस्तार से कहो।

तो रिंझाई ने और बड़े अक्षरों में लिख दिया--ध्यान। विस्तार कर दिया।

चिंतक ने कहा, तुम पागल हो या क्या? छोटा अक्षर हो कि बड़ा, ध्यान तो ध्यान ही है। अरे जरा विस्तार से कहो।

रिंझाई ने कहा कि अब अगर और विस्तार मैंने किया तो नरक में पडूंगा। क्या तुम मुझसे झूठ बुलवाने की कसम खाकर आए हो?

सत्य बोला नहीं जा सकता। जिसने सत्य बोला है, वही गूंगा है।

इसलिए मुझसे अगर तुम पूछो सहजानंद--मूकोऽस्ति को वा? कौन है गूंगा? तो मैं कहूंगा, ध्यानी, समाधिस्थ।

और तुम अगर पूछो--बधिरश्च को वा? और बहरा कौन है?

शंकराचार्य कहते हैंः "जो यथार्थ और सुपथ्य वचन नहीं सुनता है।"

यह बात वही की वही है, उसमें कुछ बहुत फर्क नहीं है। कौन तय करे यथार्थ क्या है? कैसे निर्णय हो? सारे दुनिया के महाजन यथार्थ के संबंध में बड़ी भिन्न-भिन्न बातें कह रहे हैं। सुपथ्य क्या है? क्योंकि जो एक को पथ्य है, वह दूसरे को बीमारी है। और जो एक को बीमारी है, दूसरे को पथ्य हो सकता है। सुपथ्य क्या है? कौन सी चीज पच जाने वाली है? और कौन सी चीज यथार्थ है, अर्थपूर्ण है? निर्णय कौन करे? हक किसको है निर्णय करने का?

नहीं, इस तरह की बात मैं न कहूंगा। मैं तो उसे बहरा कहता हूं--जो सुनता है और फिर भी नहीं सुनता। मैं मन को बहरा कहता हूं। ध्यान को गूंगा और मन को बहरा।

अब तुम्हें मेरा गणित समझ में आ सकेगा। मन बहरा है, क्योंकि विचारों से भरा है। विचारों से इतना भरा है कि सुनता ही नहीं। भीड़ भीतर इतनी है, शोरगुल इतना है कि सुने तो कैसे सुने? सुन भी ले तो कुछ का कुछ सुन लेता है। अर्थ का अनर्थ कर लेता है। मन बहरा है। गूंगा नहीं है मन, ख्याल रखना--बड़ा बकवासी है, बड़ा मुखर है, वाचाल है! और यही अड़चन है। मन है मुखर, मगर बहरा। और ध्यान है गूंगा, मगर ज्ञाता। जो जानता है, बोल नहीं सकता। और जो बोल रहा है, जो निरंतर बोलता रहता है, दिन में भी और रात में भी, जो भीतर बकवास लगाए ही रखता है, जो क्षण भर को भी रुकता नहीं, वह जानता नहीं है।

शास्त्र मन से रचे गए हैं, इसलिए उनमें सत्य नहीं है। मन को छोड़ कर जो शून्य में जाता है, वह ध्यान में जाता है। वहां सत्य है। लेकिन फिर बोलने का उपाय नहीं है; फिर चुप्पी है, फिर गहन चुप्पी है; फिर सन्नाटा है, शाश्वत सन्नाटा है।

और आखिरी बात शंकराचार्य से पूछी गईः "विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी। विश्वास के योग्य कौन नहीं? नारी।"

सदियों से ये तथाकथित महात्मा, संत, साधु नारी से परेशान हैं। यूं तो कहते हैं लोग नारी को अबला, लेकिन कहना चाहिए महात्माओं को अबला। ये महात्मा ऐसे कंपते हैं, नारी क्या देखी इन्होंने कि एकदम इनको जूड़ी का बुखार चढ़ जाता है। एकदम एक सौ पांच, एक सौ छह डिग्री, एक सौ सात डिग्री... एकदम मरने के करीब पहुंचने लगते हैं। नारी को देखना ही भर काफी है कि इनके ऊपर कुछ सांप लोटने लगता है। यह क्या पागलपन है? यह कैसी विक्षिप्तता है?

मगर कारण साफ है। नारी से ही लड़ कर, नारी से ही पीठ दिखा कर ये भाग खड़े हुए हैं। ये सब रणछोड़दास जी हैं। ये भाग गए हैं नारी से।

और जिससे तुम भागोगे, वह तुम्हारा पीछा करेगा। और जिससे तुम डरोगे, भयभीत होओगे, उससे तुम कभी मुक्त न हो सकोगे। डर नारी में नहीं है, डर शंकराचार्य के मन में है। अन्यथा क्यों कोई नारी से डरेगा? नारी में क्या डराने वाला है? लेकिन शंकराचार्य डर रहे हैं नारी से। यह शंकराचार्य के संबंध में सूचना है, नारी के संबंध में नहीं।

मेरे संन्यासी को तो कोई नारी डराए! मेरा संन्यासी कभी यह न कहेगा कि मैं नारी से डरता हूं। और नारी से डरता हो तो मेरा संन्यासी नहीं। क्या डराएगी नारी? न मेरी नारियां, संन्यासिनियां डरती हैं पुरुषों से। क्या डरना है इनसे! अरे आदमी जैसे आदमी हैं, कोई जंगली जानवर हैं? क्या करेंगे? आदमी जैसे आदमी हैं, स्त्रियां जैसी स्त्रियां हैं। आदमी और स्त्रियां कोई अलग-अलग नहीं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। क्या डरना? किससे डरना? क्यों डरना?

मगर भय पैदा होता है दमन से। और एक दफा दमन का रोग भीतर लग जाए तो जितना भय पैदा होता है, फिर दुष्टचक्र पैदा हो जाता है--भय पैदा होता है तो और दबाते हैं; और दबाते हैं तो और भय पैदा होता है; और भय पैदा होता है तो और दबाते हैं। बस अब कोल्हू के बैल बने, अब इसके बाहर निकलना बहुत मुश्किल है, जब तक कि मेरे जैसा कोई दीवाना न मिल जाए। कि तुम लाख कहो हमें नहीं निकलना है, मगर वह निकाल ही ले। तुम कितना ही चिल्लाओ कि मैं नारी से डरता हूं, वह दो-चार नारियों को तुम्हारे पीछे लगा दे कि होने दो रासलीला; कि आद्य शंकराचार्य कुछ भी कहें, तुम तो बजाओ बांसुरी, बजने दो घूंघर, उठने दो पायल, छेड़ दो वीणा! कितनी देर डरेंगे बेचारे, थोड़ी देर में शांत होकर बैठ जाएंगे कि अब करना क्या! अब ये नारियां मानती ही नहीं, इन्होंने वीणा छेड़ ही दी और घूंघर बज ही रहे हैं, तो क्या डरना!

लेकिन ऋषि-मुनि डरते रहे, सदा से डरते रहे। ऋषि-मुनियों को डराने के लिए इंद्र एक ही काम करता रहा है कि बस कोई ऋषि-मुनि बेचारे ध्यान करने बैठे हैं--पता नहीं इन गरीबों के पीछे क्यों--कि बस आ गई उर्वशी, कि भेज दी मेनका। और मेनका आए और उर्वशी आए और ऋषि-मुनि चूक जाएं, हो नहीं सकता। लाख कसमें खाई थीं, सब भूल-भाल जाते हैं। एकदम धूनी वगैरह छोड़ कर खड़े हो जाते हैं, नहा-धो कर साज-शृंगार कर लेते हैं कि बाई ठहर, आया! कि अरे देखेंगे फिर, साधना की जल्दी क्या है, तपश्चर्या अगले जनम में कर लेंगे, जनम-जनम पड़े हैं! तभी तो हमने जन्मों की खोज की है कि चौरासी करोड़ योनियां हैं, क्या जल्दी है! और मेनका फिर आई न आई, कोई दूसरे ऋषि-मुनि के पास भेज दी गई। अरे हजारों ऋषि-मुनि हैं! कोई ज्यादा देर सिर के बल खड़ा रहा, किसी ने लंबा उपवास कर दिया, कोई कांटों के बिस्तर पर लेट गया, आई मेनका न आई। अब आ ही गई घर, घर आए मेहमान को कभी विदा नहीं करना चाहिए। अरे मेहमान तो देवता है, जब आ ही गया तो अब आ ही गया।

ऋषि-मुनियों को भ्रष्ट करने का एक ही उपाय रहा है कि मेनका को भेज दो। यह भी बड़ी अजीब बात है। कोई पहलवान को भेजते कि उनको देता दचके, पटकनी मारता, दुलत्ती झाड़ता, तो भी समझ में आता; हड्डी-पसली तोड़ता। भेजी मेनका!

मेरे संन्यासी के पास तो भेजे इंद्र! इधर मैं रोज इंद्र से कहता हूं कि कुछ भेजो! तो कई दफे इंद्र महाराज खुद छिपे हुए आते हैं, मेनका वगैरह को साथ ही नहीं लाते। क्योंकि मेनका वगैरह को साथ लाएं तो फिर इधर-उधर देख न पाएं। क्योंकि वह मेनका हुद्दे मारे कि यह इधर-उधर क्यों देख रहे हो? तुम इस स्त्री को इतने गौर से क्यों देख रहे हो? अकेले आते हैं, छिप कर आते हैं। कई-कई रूप में आते हैं।

यह शंकराचार्य को क्या डर है नारी से? नारी ने क्या किसी का बिगाड़ा है?

नहीं, अगर मुझसे पूछोगे तो विश्वास योग्य कौन नहीं है? मैं कहूंगा, अहंकार। तब तो कुछ बात आध्यात्मिक होती है।

यह क्या गैर-आध्यात्मिक उत्तर! गूंगा कौन? उचित बात कहने में जो समर्थ नहीं। बहरा कौन? जो सुपथ्य वचन नहीं सुनता। डरना किससे? नारी से। ये आध्यात्मिक बातें हैं?

अहंकार एकमात्र चीज है जिस पर अविश्वास करो, जिससे सारा विश्वास अलग कर लो, जिस पर संदेह करो। क्योंकि संदेह की अग्नि में अगर अहंकार जल जाए तो तुम्हारी आत्मा प्रकट हो सकती है।

कहां से बढ़ के पहुंचे हैं कहां तक इल्मो-फन साकी

मगर आसूदा इन्सां का न तन साकी न मन साकी
ये सुनता हूं कि प्यासी है बहुत खाके-वतन साकी
खुदा हाफिज चला मैं बांध कर सर से कफन साकी
सलामत तू, तिरा मैखाना, तेरी अंजुमन साकी
मुझे करनी है अब कुछ खिदमते-दारो-रसन साकी
रगो-पै में कभी सहबा ही सहबा रक्स करती थी
मगर अब जिंदगी ही जिंदगी है मौजजन साकी
न ला विश्वास दिल में, जो हैं तेरे देखने वाले
सरे-मकतल भी देखेंगे चमन-अंदर-चमन साकी
तिरे जोशे-रकाबत का तकाजा कुछ भी हो लेकिन
मुझे लाजिम नहीं है तर्के-मंसब दफअतन साकी
अभी नाकिस है मेयारो-जुनूं तंजीमे-मैखाना
अभी ना-मोतबर है तेरे मस्तों का चलन साकी
वही इन्सां, जिसे सरताजे-मख्लूकात होना था
वही अब सी रहा है अपनी अज्मत का कफन साकी
लिबासे-हुर्रियत के उड़ रहे हैं हर तरफ पुर्जे
बिसाते-आदमियत है शिकन-अंदर-शिकन साकी
मुझे डर है कि इस नापाकतर दौरे-सियासी में
बिगड़ जाए न खुद मेरा मजाके-शेरो-फन साकी
मनुष्य के जीवन का सारा काव्य बिगड़ गया इन दमित लोगों के कारण।
मुझे डर है कि इस नापाकतर दौरे-सियासी में
यह सब राजनीति है पुरुष और स्त्री के बीच।
मुझे डर है कि इस नापाकतर दौरे-सियासी में
बिगड़ जाए न खुद मेरा मजाके-शेरो-फन साकी
आदमी का सारा काव्य, सारा संगीत नष्ट हो गया है।
सलामत तू, तिरा मैखाना, तेरी अंजुमन साकी
मुझे करनी है अब कुछ खिदमते-दारो-रसन साकी
रगो-पै में कभी सहबा ही सहबा रक्स करती थी
मगर अब जिंदगी ही जिंदगी है मौजजन साकी
न ला विश्वास दिल में, जो हैं तेरे देखने वाले
सरे-मकतल भी देखेंगे चमन-अंदर-चमन साकी

जो तेरे देखने वाले हैं, ऐ परमात्मा, वे तुझे, सूली पर भी चढ़ा दो तो वहां से भी देखेंगे। सूली जिन्होंने चढ़ाई है उनमें भी देखेंगे।

और शंकराचार्य अभी नारी में भी नहीं देख पा रहे--जिसने कि उन्हें जन्म दिया है।

आज इतना ही।

तीसरा प्रवचन

सत्संग अर्थात आग से गुजरना

पहला प्रश्नः ओशो, आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले भगवान बुद्ध के एक श्रावक बिना भिक्षु हुए बुद्ध से जुड़े थे, और बुद्ध उन्हें भिक्षुओं से अधिक स्वस्थ और निकट मानते थे। आज का युग पहले से ज्यादा वैज्ञानिक और परिष्कृत है और आपके वचनों को ज्यादा ठीक समझ सकने वाले लोग भी मौजूद हैं, जो आपसे बिना संन्यास लिए शिष्यत्व स्वीकार करके आपसे जुड़ना चाहते हैं; फिर आप भी उन्हें अपने साथ जोड़ कर उनका शिष्यत्व क्यों स्वीकार नहीं करते हैं? और ऐसे लोगों में से एक मैं भी हूं।

ओशो, जरा मुझ पर भी दया करें।

श्रीचंद सखरानी, गौतम बुद्ध और विमलकीर्ति के बीच जो घटा, वह तुम्हारे और मेरे बीच नहीं घट सकेगा। बुनियादी आधार ही नहीं है।

पहली बातः विमलकीर्ति ने कभी भी बुद्ध से प्रार्थना नहीं की कि मुझे बिना भिक्षु बनाए शिष्य की भांति स्वीकार कर लें। शिष्यत्व स्वीकार करने का अर्थ ही यह होता है कि फिर गुरु जो कहे वह करना होगा। शिष्यत्व में शिष्य की ओर से शर्त नहीं हो सकती। शर्त होगी तो समर्पण कैसा? तुम तो पहले ही शर्त रख रहे हो कि संन्यास बिना दिए मुझे शिष्य की भांति स्वीकार कर लें। चलो, पहले न दूंगा, पीछे दूंगा। पहले शिष्य हो जाओ, फिर संन्यासी बना लूंगा। मगर शिष्य हो जाने के बाद इनकार कैसे कर सकोगे? और अगर इनकार कर सकोगे तो शिष्य कैसे?

शिष्य का अर्थ ही क्या है? विद्यार्थी तो नहीं। और विद्यार्थी होने से तुम्हें कौन रोक रहा है? तुम यहां आते हो, सुनते हो, जो सुन सकते हो सुनते हो, जो समझ सकते हो समझते हो, कौन तुम्हें रोकता है? लेकिन शिष्य होना तो गहरा नाता है, समर्पण का नाता है। और शर्त अगर पहले से ही मौजूद है तो एक शर्त के पीछे और शर्तें आएंगी। शर्त अकेली नहीं आती, जैसे बीमारी अकेली नहीं आती। और मैं तो एक भी शर्त स्वीकार नहीं कर सकता हूं।

फिर शिष्य होने से तुम्हें प्रयोजन क्या है? किसलिए शिष्य होना चाहते हो? अगर संन्यास से भय है तो शिष्य होकर भी क्या करोगे? क्योंकि मेरी सारी शिक्षा यही है कि कैसे जल में कमलवत जीना। उसे ही मैं संन्यास कहता हूं--संसार में रह कर और संसार के न होना। जीना संसार में, लेकिन संसार को स्वयं में न जीने देना। अगर उस बात के लिए ही राजी नहीं हो तो विद्यार्थी होने को स्वीकार करो, उससे ज्यादा तुम्हारी सामर्थ्य नहीं। मैं तो तैयार हूं।

तुम कहते होः "भगवान, जरा मुझ पर भी दया करें।"

लेकिन विमलकीर्ति ने कभी गौतम बुद्ध से दया की भीख नहीं मांगी थी। वहीं फर्क हो गया। तुम कहते हो कि मैं भी उन लोगों में से एक हूं। तुम्हारे कहने से मानूंगा? अगर तुम उनमें से एक हो तो यह प्रश्न ही नहीं पूछा होता। और दूसरी बात भी तुमसे कह दूंः अगर विमलकीर्ति ने पूछा होता तो बुद्ध ने कहा होता कि भिक्षु हो। और इतना निश्चित है कि विमलकीर्ति इनकार न करता। पूछता तो इनकार न करता। पूछता तो स्वीकार करता। पूछने का अर्थ ही है कि तुमने आज्ञा चाही, कि तुमने आदेश मांगा, कि तुम इशारे की तलाश कर रहे हो। फिर अंगुली बताई जाए और न देखो, तो प्रयोजन क्या था पूछने का?

तुम अपने अहंकार को भी बचाना चाहते हो। और जो अहंकार को छोड़ कर मेरे पास आने के लिए पात्रता जुटाते हैं, उतने ही पास भी आना चाहते हो। जो मेरे पास आना चाहते हैं उन्हें कुछ खोने को भी तैयार होना होगा। और ज्यादा कुछ खोने को नहीं कहता हूं--सिर्फ अहंकार। और अहंकार, जो कि है ही नहीं। यूं समझो कि जो तुम्हारे पास नहीं है उसे ही खो देने का नाम संन्यास है। और जो तुम्हारे पास है उसे जीने की कला को सीख लेने का नाम संन्यास है। गुरु वही है जो तुमसे छीन ले वह, जो तुम्हारे पास नहीं है, लेकिन जिसकी तुम्हें भ्रांति है; और दे दे वह, जो तुम्हारे पास है, लेकिन जिसका तुम्हें पता नहीं है।

एक युवक ने मुझसे पूछा था कि मैं विवाह करूं या न करूं?

मैंने उससे कहा, तू कर ही ले।

उसने कहा, यह कैसी बात हुई? मैं तो सोचता था कि आपने विवाह नहीं किया तो आप मुझे सलाह देंगे कि तू मत कर। फिर आपने क्यों नहीं किया, अगर मुझे सलाह देते हैं विवाह करने की?

तो मैंने उससे कहा, फर्क है। मैंने किसी से पूछा नहीं कि विवाह करूं या न करूं और तू पूछ रहा है। मुझसे न मालूम कितने लोगों ने कहा कि विवाह कर लो। प्रियजन थे, परिवार के लोग थे, सगे-संबंधी थे, हितैषी थे। मैंने सलाह मांगी नहीं; उन्होंने सलाह दी। मैंने पूछा नहीं; उन्होंने उत्तर दिया। और तू पूछने आया है। पूछने में ही सारा राज खुल गया। तेरे मन में दुविधा है, दुई है--करूं या न करूं? और जब भी ऐसी दुविधा हो--करूं या न करूं--तो कर लेना ही अच्छा। क्योंकि अगर नहीं किया तो दुविधा बनी ही रहेगी, बनी ही रहेगी, पीछा करेगी। मन में लगता ही रहेगा कि अगर कर लेते तो शायद आनंद मिलता; कर लेते तो शायद ठीक होता; कर लेते तो पता नहीं क्या होता! जब भी दुविधा हो करने और न करने में तो हमेशा करने को चुनना, क्योंकि न करने से क्या सीखोगे? करने से या तो पता चल जाएगा कि ठीक हुआ या पता चल जाएगा कि गलत हुआ। करने को न करना आसान है। विवाह को तलाक में बदलना बहुत मुश्किल नहीं। लेकिन विवाह किया ही न हो, अनुभव ही न हो विवाह का, तो फिर यह स्वप्न मन में बसा ही रहेगा कि शायद जैसा कि कहानियों में कहते हैं--कि दोनों का विवाह हो गया और फिर दोनों सदा के लिए सुख से रहने लगे--ऐसे होता हो। क्योंकि सभी कहानियां यहीं आकर समाप्त हो जाती हैं, कि फिर दोनों सुख से रहने लगे। इसके बाद कहानियां चलती ही नहीं, क्योंकि इसके बाद कहानी को चलाना खतरनाक है। इसके बाद रुक जाना ठीक है।

तुम मुझसे पूछते हो, श्रीचंद सखरानी, कि मैं भी विमलकीर्ति जैसे लोगों में से एक हूं।

विमलकीर्ति ऐसा नहीं कह सकता था। एक तो कभी उसने बुद्ध से पूछा नहीं कि मैं संन्यास लूं या न लूं। बुद्ध से कभी पूछा नहीं कि जो संन्यासी हैं वे आपके ज्यादा पास हैं, मुझे अपने पास क्यों नहीं बुलाते! बुद्ध से कभी कहा नहीं कि मुझे बिना भिक्षु बनाए शिष्यत्व दे दें। ये बातें ही नहीं उठीं। ये सवाल ही नहीं उठे। अगर ये सवाल उठे होते तो संन्यास तो बात अलग, बुद्ध अगर विमलकीर्ति से कहते कि तू जा और पहाड़ से कूद कर मर जा या आग में जल जा, तो विमलकीर्ति वह भी करने को राजी होता। हिम्मत का आदमी था! छाती वाला आदमी था!

श्रीचंद, तुम्हारी तो छाती बिल्कुल नहीं मालूम होती। लेकिन छिपाने की कोशिश कर रहे हो। होशियारी आती है मालूम होता है। कहते होः "आज से पच्चीस सौ वर्ष पहले भगवान बुद्ध के एक श्रावक बिना भिक्षु हुए बुद्ध से जुड़े हुए थे।"

मुझसे भी बहुत लोग जुड़े हुए हैं जो संन्यासी नहीं हैं, लेकिन तुम उनमें से नहीं हो। तुम उनमें से नहीं हो सकते हो। और जो मुझसे जुड़े हुए हैं, जिस दिन उनसे कहूंगा उस दिन संन्यास लेंगे, तत्क्षण संन्यास लेंगे। नहीं कहूं, यह मेरी मर्जी। इसीलिए जुड़े हैं कि मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा है। और उनमें से बहुतों को मैंने संन्यास दिया; जब कहा, तब उसी क्षण, फिर देर नहीं की। तुम उनमें से नहीं हो।

तुम कहते होः "आज का युग पहले से ज्यादा वैज्ञानिक... ।"

युग होगा वैज्ञानिक। तुम हो वैज्ञानिक, सवाल यह है! युग से क्या लेना-देना? आकाश में हवाई जहाज उड़ते रहें, इससे क्या होगा? तुम तो अपनी बैलगाड़ी ही हांक रहे हो। सवाल तुम्हारा है। तुम्हारे भीतर कितनी वैज्ञानिकता है?

तुम कहतेः "आज का युग पहले से ज्यादा वैज्ञानिक, परिष्कृत... ।"

सवाल तुम्हारा है। युग से तुम्हारा क्या लेना-देना? सभी लोग समसामयिक नहीं होते हैं। जैसे यह बीसवीं सदी चल रही है, लेकिन इस बीसवीं सदी में सब तरह के लोग चल रहे हैं--कोई पंद्रहवीं सदी का है, कोई चौदहवीं सदी का है, कोई दसवीं सदी का है, कोई पहली सदी का है। ऐसे-ऐसे लोग हैं जो बुद्ध के पहले के हैं; बाबा आदम के जमाने से चले हैं और अब भी चल रहे हैं, जिनमें कोई फर्क नहीं पड़ा।

आखिर पत्थरों की मूर्तियों के सामने पूजा करने वाले लोग वैज्ञानिक हैं, परिष्कृत हैं? इनको तुम सोच-विचार, विवेक, ध्यान, इनसे जुड़ा हुआ अनुभव करते हो? आज भी जो हनुमान चालीसा पढ़ रहे हैं, ये बीसवीं सदी के लोग हैं? जो अभी भी वेद को उलट रहे हैं, पांच हजार साल पुरानी किताब को, और उसी में डुबकियां मार रहे हैं और सोच रहे हैं कि मिल जाएगा हीरा, इनको तुम वैज्ञानिक समझते हो? क्या परिष्कार इनमें तुम देखते हो?

तुम तो नहीं परिष्कृत हो, तुम तो नहीं वैज्ञानिक हो। अगर तुम वैज्ञानिक होते और परिष्कृत होते तो यह प्रश्न न उठा होता। तब तो तुमने समझा होता।

और तुम कहते होः "और आपके वचनों को ज्यादा ठीक समझने वाले लोग भी मौजूद हैं।"

जरूर मौजूद हैं, लेकिन जो मौजूद हैं वे और हैं, तुम नहीं। तुम तो कुछ का कुछ सुन रहे हो। तुमने तो विमलकीर्ति की कहानी ही सुनी सिर्फ। मैं हजारों कहानियां कह चुका हूं, श्रीचंद सखरानी ने यह पहला सवाल पूछा। आज तक तुमने कुछ न सुना और, क्योंकि उन सबमें खतरा था। विमलकीर्ति की कहानी तुमने सुनी, यह बात जंची। यह तुम्हारे लिए छाता बन गई। तुमने सोचा कि अब इस कहानी के बहाने अपने को बचा लूं। यह कवच बन गया।

लोग वही सुनते हैं जो सुनना चाहते हैं।

सेठ भिखारीदास का बेटा लखमीचंद,
शादी को बेचैन था, एक नेत्र था बंद।
एक नेत्र था बंद, रात-दिन आहें भरता,
शिवशंकर की पूजा नित्य-नियम से करता।
भोले हुए प्रसन्न, कहा--"वर मांगो भइए!"
वह बोला--"वर नहीं मुझे तो कन्या चहिए।"

अपनी-अपनी समझ। तुमने क्या समझ लिया? तुमने विमलकीर्ति में सोचा कि अच्छा बहाना मिला।

तार बाबू श्रीचंद की पत्नी, रज्जो का अपनी जबान पर काबू तो था नहीं, एक बार शुरू हो गई तो उसे रोकना किसी के वश की बात नहीं थी। उस दिन आधा घंटे तक धाराप्रवाह श्रीचंद से शब्द-संघर्ष करती रही। लेकिन जब देखा कि पति के कान पर जूं तक नहीं रेंगी तो झल्ला कर बोली, क्या हो गया है तुम्हें? मैं इतनी देर से बके जा रही हूं, क्या तुम बज्र-बधिर हो? सुनाई नहीं पड़ता है?

श्रीचंद बोले, अरी भागवान, मैं तो हिसाब लगा रहा था कि इस आधा घंटे में जितने शब्द तुम्हारे मुखारबिंद से निकले हैं उन्हें अगर तार से भेजा जाए तो बयासी रुपये तीस पैसे लगेंगे।

देखते श्रीचंद, ये दूसरे श्रीचंद थे! तार बाबू थे। इनका अपना सोचने का ढंग है। ये सुन ही नहीं रहे हैं, ये हिसाब लगा रहे हैं कि तार से अगर ये सब शब्द भेजे जाएं तो कितना पैसा लग जाएगा! तार बाबू तो तार बाबू!

तुम्हें पहली दफा कहानी सुनाई पड़ी। तुमने पहली दफा प्रश्न पूछा, क्योंकि पहली दफा तुम्हें आड़ मिली। पहली दफा तुमने देखा कि अब मौका ठीक है। तुमने देखा कि अब मैं क्या करूंगा! अब तो मुझे स्वीकार करना ही पड़ेगा कि विमलकीर्ति मौजूद हैं यहां, उनका नाम है श्रीचंद सखरानी!

नहीं, इतना आसान मामला नहीं है। मुझे धोखा देना असंभव है। तुम लाख उपाय करो, तुम्हारी समझ तुम्हारी ही होगी।

चंदूलाल बस में बैठे इत्मीनान से सिगरेट के कश ले रहे थे कि अचानक बस के कंडक्टर ने उन्हें टोका, कहा, देखते नहीं महानुभाव, बस में साफ लिखा है कि धूम्रपान वर्जित है! और आप कश पर कश खींचे चले जा रहे हैं!

चंदूलाल अकड़ कर बोले, मैंने इसे पढ़ लिया है। लेकिन लिखने को तो बस में बहुत कुछ लिखा है। अब उधर देखिए, लिखा है--हमेशा हैंडलूम की साड़ियां पहनिए। तो क्या मैं हैंडलूम की साड़ियां पहनने लगूं?

तुमने भी क्या सुना! अपने मतलब की बात सुन ली।

मगर इससे तुम्हारी बेहोशी तो कटेगी नहीं।

सेठ चंदूलाल रोज शराब पीकर बड़ी देर करके घर लौटते थे और रोज ही अपनी पत्नी से डांट खाते थे। एक दिन उन्होंने निश्चय किया कि वे अपनी पत्नी को बिल्कुल महसूस नहीं होने देंगे कि आज शराब पीकर आए हैं।

दूसरे दिन चंदूलाल थोड़ा जल्दी ही घर पहुंचे, पी-पा कर ही पहुंचे, और आते ही सीधे बेडरूम में जाकर लेट गए और एक बड़ी सी किताब उठा कर पढ़ने का ढोंग करने लगे। थोड़ी देर बाद उनकी पत्नी भी बेडरूम में पहुंची और कमर पर हाथ रख कर गुस्से से बोली, क्यों जी, तुम आज फिर पीकर आए हो!

चंदूलाल हड़बड़ाते हुए बोले, नहीं-नहीं, बिल्कुल नहीं।

पत्नी गुर्राती हुई बोली, तो फिर यह सूटकेस उठा कर क्या कर रहे हो?

वे समझ रहे थे कि श्रीमद भागवत गीता पढ़ रहे हैं। मगर होश भी तो होना चाहिए। तुमने तो सोचा कि प्रश्न बड़ा कारगर पूछा है और इस मौके पर जीत पक्की है। मगर जीत इतनी आसान नहीं।

डेढ़ साल अफ्रीका में रहने के बाद चंदूलाल जब भारत वापस लौटे तो मित्र-मंडली उनके संस्मरण सुनने को इकट्ठी हो गई। चंदूलाल ने अपने शिकार के अनुभव सुनाए, फिर जंगली जीवन की जानकारी देने लगेः अफ्रीका में एक ऐसा जानवर पाया जाता है कि जब नर अपनी मादा को बुलाना चाहता है तो एक विशेष प्रकार की आवाज में चिंघाड़ता है। उस आवाज को सुन कर मादा जहां कहीं भी हो फौरन चली आती है।

मित्रों ने आग्रह किया कि जरा हमें आवाज करके तो दिखाइए। ऐसी कौन सी आवाज है?

चंदूलाल ने मुंह खोल कर उसी आवाज में चिंघाड़ निकाली, ताकि मित्र-मंडली उस आवाज से पूरी तरह परिचित हो जाए। इतने में ही पास वाले कमरे का दरवाजा खुला और उनकी पत्नी ने पूछा, कहिए, क्या बात है?

तुम जैसे प्रतीक्षा ही कर रहे थे दरवाजे के पीछे छिपे कि ऐसा कोई अवसर आ जाए जिसमें तुम अपनी कायरता को छिपा सको। संन्यास लेने से घबड़ाते हो! घबड़ाहट क्या है? बदनामी होगी? लोग पागल समझेंगे? दीवाना समझेंगे? समाज में प्रतिष्ठा खो जाएगी? पत्नी-बच्चे हंसेंगे? मंदिर में क्या होगा? मुनि और महात्मा क्या कहेंगे कि बिगड़ गए, तुम भी बिगड़ गए? तुम जैसा बुद्धिमान, वैज्ञानिक और परिष्कृत बुद्धि का आदमी भी बिगड़ गया! सो तुम चाहते हो कि चोरी-छिपे मुझसे नाता बना लो। यूं ऊपर-ऊपर तुम दिखाते रहो दुनिया को कुछ और, और भीतर कुछ और हो जाओ। तुम पाखंड ओढ़ना चाहते हो। और मैं किसी भी पाखंड को समर्थन देने को तैयार नहीं हूं। मेरे साथ हो तो मेरे साथ हो, फिर हिम्मत के साथ मेरे साथ होना चाहिए। फिर क्या डरना? शिष्यत्व की आकांक्षा है तो फिर संन्यास से क्या डरना? और संन्यास है क्या?

तुम कहते होः "जो आपसे बिना संन्यास लिए, शिष्यत्व स्वीकार करके आपसे जुड़ना चाहते हैं... ।"

मगर "बिना संन्यास लिए" यह शर्त तुम लगा रहे हो। तुम मेरी सुनोगे या शर्त अपनी? शिष्यत्व के बाद गुरु मैं रहूंगा कि तुम, यह साफ हो जाना चाहिए।

अगर गुरु मैं ही रहूंगा तो मेरी पहली आज्ञा होगी कि बच्चा, संन्यास ले! और वहीं गाड़ी अटक जाएगी। वहीं से गाड़ी आगे न बढ़ेगी।

कह रहे होः "फिर आप भी उन्हें अपने साथ जोड़ कर उनका शिष्यत्व क्यों स्वीकार नहीं करते?"

फिर आखिर में राज की बात तुमने कहीः "और ऐसे लोगों में से एक मैं भी हूं।"

पहले पूरा हाथी निकाल दिया, फिर सोचा कि अब पीछे से पूंछ भी निकल जाएगी। मगर पूंछ ही पकड़ी जाती है।

प्रेम इतना आसान तो नहीं।

इशक असां नाल केही कीती, लोक मरें

दे ताने। दिल दी वेदन कोई न जाने, अंदर देश बिगाने।

जिसनूं चोट अमर दी होवे, सोई अमर पछाने।

एस इशक दी ओखी घाटो, जो चढ़िया सो जाने।

अर्थात देखो इश्क ने हमारी क्या स्थिति बना दी! लोग ताने मारते हैं। दिल की पीड़ा को कोई नहीं जानता। हम देश के अंदर ही बेगाने हो गए। जिसे अमृत की चोट लगी हो वही अमृत को पहचान सकता है। इस इश्क की यात्रा बड़ी दुर्गम है, पहाड़ी की चढ़ाई है। जो चढ़ता है बस वही जानता है।

हिम्मत हो तो चुनौती स्वीकार करो। क्या तुम सोचते हो बुद्ध ने विमलकीर्ति से कहा होता कि बन भिक्षु तो विमलकीर्ति इनकार करता? मैं तुमसे कहता हूं, हो जाओ संन्यासी। अगर तुममें भी विमलकीर्ति जैसी हिम्मत और साहस है, कहीं थोड़ी-बहुत भी क्षमता है, तो चुनौती स्वीकार करो। अब तक कैसे छिपे बैठे रहे?

लेकिन लोग पास आना चाहते हैं, कीमत नहीं चुकाना चाहते। लोग निकट होना चाहते हैं, लेकिन निकटता को अर्जित नहीं करना चाहते। शिष्यत्व क्या तुम कोई सस्ती बात समझते हो? सिर कटाओ तो मिलता है, पगड़ी उतार कर रखो तो मिलता है। मुफ्त तो नहीं मिलता। शिष्यत्व का हीरा इस जगत में सबसे ज्यादा कीमती हीरा है।

लेकिन तुमने सोचा होगा कि मुफ्त अगर मिल जाए! यूं ही कहीं राह के किनारे पड़ा मिल जाए! सत्य को भी लोग राह के किनारे पड़ा हुआ पाना चाहते हैं। सत्य को भी चुराना चाहते हैं या मुफ्त पाना चाहते हैं। सत्य के लिए सब कुछ समर्पित करना होता है। सत्य तो केवल जुआरियों के लिए है, शराबियों के लिए है, समझदारों के लिए नहीं है, दुकानदारों के लिए नहीं है।

बुल्लेशाह कहते हैं--

बुल्ला आशक होया रब दा, मलामत होई लाख।

लोग काफिर आखदे, तू आहो-आहो आख।।

कहते हैं बुल्लेशाह कि परमात्मा का आशिक हुआ तो लाखों तरह की भर्त्सना होने लगी।

बुल्ला आशक होया रब दा!

शिष्यत्व तो परमात्मा के प्रति प्रेम है। फिर जहां उसकी झलक मिल जाए, फिर जहां से उसकी तरफ नाव छूट जाए, वही तीर्थ, वही तीर्थंकर। फिर जो मांझी मिल जाए, उस पार जाना है। फिर उसी मांझी की नाव पर सवार हो लेना है।

बुल्ला आशक होया रब दा!

बुल्ला कहता है कि मैं तो हो गया प्रेमी परमात्मा का। मैं यह कभी सोचा न था कि ऐसी मलामत होगी।

मलामत होई लाख!

यह कभी सोचा न था कि लोग इतनी गालियां देंगे, इतने पत्थर फेंकेंगे, इतना अपमान करेंगे। ऊपर से कोई तर्क भी नहीं दिखाई पड़ता, कोई संबंध भी नहीं दिखाई पड़ता। कोई परमात्मा की खोज में चला है, इससे लोगों को क्या पड़ी? इससे लोग क्यों गालियां दे रहे हैं?

अब श्रीचंद सखरानी अगर संन्यासी हो जाएं तो लोगों को क्या लेना-देना है? श्रीचंद सखरानी एक दिन मर जाएंगे तब भी लोगों को कुछ लेना-देना नहीं है; तब भी लोग अरथी बांध कर और विदा कर आएंगे। और जल्दी मचाएंगे कि जल्दी करो, जल्दी निपटाओ, दूसरे भी काम करने हैं--दफ्तर भी जाना है, दुकान भी खोलनी है, बच्चों को स्कूल भी पहुंचाना है, पत्नी की साड़ी खरीदनी है, साइकिल का पंक्चर सुधरवाना है, क्या-क्या नहीं करना है! सारा संसार पड़ा है। अब कोई श्रीचंद सखरानी की ही अरथी को लिए बैठे रहें! अरे जल्दी करो! घर के लोग तो रोने-धोने में लग जाते हैं, पड़ोसी जल्दी से अरथी बांधने लगते हैं। पड़ोसी कहते हैं कि अब ये तो रोने-धोने में लगे हैं, हम कब तक उलझे रहें? कोई बांस काटने लगता है, कोई बांस बांधने लगता है। घर के लोग तो रोते ही धोते रहते हैं, पड़ोसी अरथी तैयार कर देते हैं। चली अरथी--राम नाम सत्य है!

लोगों को क्या पड़ी है--तुम जीओ तो, तुम मरो तो! तुम नहीं थे दुनिया में तो भी दुनिया यूं ही चल रही थी। यह मत सोचना कि कुछ कमी थी। यही तमाशा था। यही हो-हल्ला था। यही उपद्रव था। यही समस्याएं थीं। यही मंदिर, यही मस्जिद, यही गुरु, यही पंडित, यही पुरोहित, यही बकवास सब जारी थी। तुम्हारे न होने से कुछ कमी न थी। एक दिन तुम चले जाओगे तो यूं मत सोचना कि जगह खाली हो जाएगी।

ऐसा कहते हैं हरेक के मर जाने पर, वह कहने की बात है कि अपूर्णीय क्षति हो गई। अभी तक मैंने तो नहीं देखा कि किसी के भी मरने से अपूर्णीय क्षति हुई हो। आदमी मर भी नहीं पाता कि पूर्ति हो जाती है। लेकिन औपचारिकता है, शिष्टाचार है। जिंदगी भर तो कभी अच्छे वचन न कहे, अब मर गया, अब तो कम से कम दो शब्द अच्छे कह दो--कि अपूर्णीय क्षति हो गई, कि अब यह क्षति कभी पूरी नहीं हो सकेगी!

बुल्ला आशक होया रब दा, मलामत होई लाख।

सोचा भी न था कि इतनी गालियां पड़ेंगी, इतने पत्थर फेंके जाएंगे। हम तो चले थे परमात्मा के प्रेम की राह पर, और ऐसी मलामत होने लगी! ऐसी भर्त्सना होने लगी।

लोग काफिर आखदे!

गजब हो गया! बुल्ला कहता है कि लोग कहते हैं तू काफिर हो गया। हम चले परमात्मा की तलाश में और लोग कहते हैं काफिर हो गया! कि तू कुफ्र कर रहा है!

क्योंकि लोगों ने तो मान रखा है कि अगर परमात्मा को खोजना हो, मुसलमान हो तो मस्जिद में जाओ, अगर मस्जिद न गए तो काफिर; अगर हिंदू हो तो मंदिर में जाओ, अगर मंदिर न गए तो अधार्मिक; अगर जैन हो तो महावीर को पूजो, अगर महावीर को न पूजा तो भ्रष्ट! लोगों की तो बंधी हुई धारणाएं हैं। और जिसको सत्य की खोज करनी है वह किसी बंधी धारणा के अनुसार नहीं चल सकता। सत्य के खोजी को तो सारे पक्षपात तोड़ कर रख देने होंगे, जला कर रख देने होंगे। उसे तो पक्षपातों और धारणाओं का सारा जाल तोड़ कर निकल जाना होगा। वही तो कारागृह है। और तुम जो भी जाल तोड़ोगे, उस जाल के रखवाले, उस जाल का फायदा उठाने वाले मलामत तो करेंगे, गालियां तो देंगे, पत्थर तो फेंकेंगे। फूलों की आशा मत रखना।

और तुम वही कर रहे हो, श्रीचंद। तुम सोच रहे होः शिष्यत्व भी मिल जाए, सत्य भी मिल जाए, समाज में प्रतिष्ठा भी न खोए, समाज में आदर-सम्मान भी बना रहे। अगर लोग पूछेंगे भी कि वहां क्यों जाते हो? तो कह देंगे कि देखने जाते हैं कि यह आदमी लोगों को किस तरह बिगाड़ रहा है। कोई बहाना खोज लेंगे। जब मुझसे बहाना खोज सकते हो तो औरों से भी बहाना खोज लोगे। क्या कठिनाई आएगी?

लोग काफिर आखदे, तू आहो-आहो आख।।

बुल्ला कहते हैंः देख, मजा देख, क्या गजब हो रहा है! लोग काफिर कह रहे हैं। और मैं चला सत्य को खोजने!

मगर सत्य को खोजने वाले सदा काफिर हो जाते हैं। काफिर, लोगों की नजरों में। क्योंकि सत्य को जिसे खोजना है वह किसी भी विश्वास को सहारा नहीं दे सकता। विश्वासी सत्य को नहीं खोज सकता। सत्य को खोजने के लिए विश्वास-मुक्त चित्त चाहिए--न हिंदू, न मुसलमान, न जैन, न ईसाई, न सिक्ख, न पारसी। सत्य की खोज के लिए सारी किताबें आंखों से हट जानी चाहिए। सत्य की खोज के लिए किसी सिद्धांत पर मताग्रह नहीं रह जाना चाहिए। सत्य की खोज के लिए चित्त ऐसा हो जाना चाहिए जैसे कोरी किताब, उस पर कोई लिखावट न बचे।

सब लिखावट दूसरों की है। सब लिखावट उधार है। किसी पर वेद रखा है, किसी पर कुरान रखी है, किसी पर बाइबिल रखी है। औरों ने रख दी है। छाती तुम्हारी है, रखने वाले और हैं। छाती तुम्हारी है, अजायबघर दूसरों ने तुम्हें बना दिया है। इस सबको छोड़ देना होता है। इस सबको हटा कर अलग कर देना होता है। जैसे कोई कूड़ा-करकट को अलग कर दे।

स्वभावतः, जब तुम किसी की किताब को--जिसको वह समझता है धर्मग्रंथ--अलग करोगे, तो गालियां पड़ेंगी। जब तुम किन्हीं के विश्वासों के बाहर जाओगे, तो स्वभावतः तुम बगावती हो। और बगावती का स्वागत मलामत से ही हो सकता है, भर्त्सना से ही हो सकता है। काफिर तो कहेंगे ही लोग, नरक तो भेजेंगे ही लोग, सूली तो देंगे ही लोग।

तो बुल्ले कहते हैं कि अब क्या करूं? सत्य की खोज तो करनी है। लोग काफिर कहते हैं तो कहने दो। मैं भी अपने से कहता हूंः बुल्ला, लोग कहते हैं काफिर, तू भी कह हां, कि हां काफिर हूं, कि बुल्ले तू भी हां में हां कह। तू भी कह कि मैं नास्तिक हूं, तू भी कह कि मैं अधार्मिक हूं। भर दे हां में हां। मगर खोज मत छोड़ देना। खोज तो जारी रहे।

जलना पड़ता है इस खोज में। जैसे परवाना जलता है शमा में, ऐसे ही जलना होता है। तिल-तिल जलना होता है।

श्रीचंद, तुम होशियारी कर रहे हो। होशियारी की तो चूकोगे, बुरी तरह चूकोगे। इस तरह की होशियारी का परिणाम मंहगा पड़ेगा।

हम ही में थी न कोई बात, याद न तुमको आ सके

और तुम कहते हो कि तुम विमलकीर्ति हो। और तुम कहते हो कि तुम्हारा वैसा ही सम्मान और स्वागत हो जैसा विमलकीर्ति का हुआ था। विमलकीर्ति हो तो जरूर होगा।

हम ही में थी न कोई बात, याद न तुमको आ सके

तुमने हमें भुला दिया, हम न तुम्हें भुला सके

हम ही में थी न कोई बात...

सोचो। कहीं कुछ कमी होगी स्वयं में। नहीं तो मैं तुम्हें पुकार लूंगा। मैं तुम्हें बुला लूंगा। ये जो इतने लोग दुनिया के कोने-कोने से चले आए हैं, यूं ही नहीं चले आए हैं--पुकारे गए हैं, बुलाए गए हैं। और बहुत कीमत चुका कर आए हैं, सब कुछ छोड़ कर आए हैं।

और तुम तो कहीं दूर से आ भी नहीं रहे हो--यही भवानी पेठ, पुणे! और जहां तक मैं सोचता हूं, तुम अपनी साइकिल पर भी नहीं आते होओगे, किसी की साइकिल के पीछे बैठ कर आते होओगे।

हम ही में थी न कोई बात, याद न तुमको आ सके

तुमने हमें भुला दिया, हम न तुम्हें भुला सके

हम ही में थी न कोई बात...

तुम ही अगर न सुन सके, किस्सा-ए-गम सुनेगा कौन

किसकी जबां खुलेगी फिर, हम न अगर सुना सके
तुमने हमें भुला दिया...
होश में आ चुके थे हम, जोश में आ चुके थे हम
बज्म का रंग देख कर, पर न मगर हिला सके
तुमने हमें भुला दिया...
रौनके बज्म बन गए, लब पर शिकायतें रहीं
दिल में शिकायतें रहीं, लब न मगर हिला सके
तुमने हमें भुला दिया...
ऐसा हो कोई नामाबर, बात पे कान रख सके
सुन के यकीन कर सके, जा के उन्हें सुना सके
हम ही में थी न कोई बात...
हमने भी की थीं कोशिशें, हम न तुम्हें भुला सके
कोई कमी हमीं में थी, याद न तुमको आ सके
हम ही में थी न कोई बात...
शौके विसाल है यहां, लब पे सवाल है यहां
किसकी मजाल है यहां, हमसे नजर मिला सके
हम ही में थी न कोई बात, याद न तुमको आ सके
तुमने हमें भुला दिया, हम न तुम्हें भुला सके
हम ही में थी न कोई बात...

मत कहो कि तुम विमलकीर्ति की कोटि के हो। होओगे तो दिखाई पड़ जाओगे--दूर से दिखाई पड़ जाओगे। दीया जलता हो तो अंधेरे में दूर से चमकता है। और हीरा राह के किनारे पड़ा हो तो भी पत्थरों में दूर से दमकता है। तुम्हें कहने की कोई जरूरत नहीं, मैं पहचान लूंगा।

और तुम भी क्या कहने आए! यह कहने आए कि मुझे करीब तो आने दें, शिष्य तो बनने दें, लेकिन कोई मेरे ऊपर लांछन न लगे, कोई मलामत न हो, कोई गालियां न पड़ें, कोई पत्थर न मारे जाएं, मुझे कोई चोट न लग जाए। सत्य तो चाहता हूं, लेकिन एक कदम उठाना नहीं चाहता इस मार्ग पर। इसलिए संन्यास नहीं।

संन्यास क्या है? सत्य के मार्ग की यात्रा है। और जो भी व्यक्ति भीड़ के रास्तों को छोड़ कर चलेगा, भीड़ उससे बदला लेगी। जिस भीड़ का हिस्सा होगा, वही भीड़ उससे बदला लेगी। जीसस को यहूदियों ने सूली दी, किसी और ने नहीं। क्योंकि यहूदियों की भीड़ ही उनसे नाराज थी। यहूदियों की भीड़ को छोड़ कर जीसस चल पड़े अपने रास्ते पर। भीड़ के पास सत्य है ही नहीं, कभी नहीं रहा। अगर भीड़ के पास सत्य होता तो यह दुनिया स्वर्ग होती। सत्य तो कभी मुश्किल से किसी के हाथ लगा है। और जिसके भी हाथ लगा है, भीड़ उससे नाराज हुई है, ईर्ष्या से भर गई है। भीड़ ने उससे हर तरह से प्रतिशोध लिया है। जीसस को सूली यूं ही नहीं लगा दी; यह प्रतिशोध है। यह भीड़ का कहना है कि देख, भीड़ को छोड़ने और भीड़ से विपरीत जाने, भीड़ से अन्यथा जाने का क्या परिणाम होता है! अब फल भोग!

लेकिन जिसको सत्य मिला है, उसे इन कांटों में भी फूल ही दिखाई पड़ते हैं। उसे इन पत्थरों में भी स्वागत और सत्कार ही मालूम होता है। जीसस मरते क्षण भी सूली पर यही कहते हुए मरे कि हे प्रभु, इन्हें क्षमा कर देना, क्योंकि इन्हें पता नहीं कि ये क्या कर रहे हैं!

सुकरात को किसने जहर पिलाया? एथेंस नगर के निवासियों ने। यूनान में नगर राज्य थे। यूनान पूरा एक राज्य नहीं था। एक-एक नगर अलग-अलग राज्य था। एथेंस का अलग राज्य था। जिस न्यायाधीश ने सुकरात

को जहर पिलाने की सजा दी थी, उसने सुकरात को ये विकल्प भी दिए थे। पहला विकल्प यह दिया था कि अगर तू एथेंस छोड़ कर चला जाए तो हमें कोई मतलब नहीं। तू एथेंस की सीमा के बाहर हो जा, फिर तुझे कोई सजा न दी जाएगी।

यह जरा सोचने जैसा है। अगर सुकरात खतरनाक आदमी है तो सजा मिलनी ही चाहिए--एथेंस में रहे कि एथेंस के बाहर रहे। नहीं लेकिन, एथेंस की भीड़ को नाराजगी इस बात की है कि हमारा होकर, हमारा हिस्सा होकर, और हमसे अलग चलने की हिम्मत और जुर्रत! यह हम बरदाश्त न कर सकेंगे। हां, एथेंस छोड़ दे, फिर इसे जो करना हो करे। न हम देखेंगे, न हमें दर्द होगा। न हम सुनेंगे, न हमें चिंता होगी। हट जाए, आंखों से ओझल हो जाए।

लेकिन सुकरात ने इनकार कर दिया। सुकरात ने कहा, क्या फर्क पड़ेगा, थोड़े-बहुत दिन में वहां भी यही झंझट खड़ी हो जाएगी। वहां भी भीड़ है। थोड़े-बहुत दिन राहत रहेगी, लेकिन सत्य तो कहीं भी अड़चन पाएगा। क्योंकि जिंदगी तो असत्य के रंग में रंगी है। यहां तो झूठ का कारोबार चल रहा है। यहां तो झूठ की पूजा है। झूठ आदृत है, सत्य अनादृत है। झूठ सिंहासन पर है, सत्य सूली पर है।

मंसूर को मुसलमानों ने मारा। सरमद को मुसलमानों ने काटा। बुद्ध को हिंदुओं ने मार डालने की कोशिश की। महावीर के कानों में हिंदुओं ने ही खीले ठोंके।

यह आश्चर्य की बात है कि जिस भीड़ में कभी किसी व्यक्ति को सत्य मिल गया, वही भीड़ उससे नाराज हो गई। जरूर कुछ गहरे कारण होंगे।

पहला कारण तो यह है--सबसे बड़ा कारण--कि जब भी कोई व्यक्ति ज्योतिर्मय हो जाता है तो बाकी सारे लोग जो अंधेरे में खड़े हैं, उन्हें अपने अंधेरे की पहली दफा पहचान होती है। और कोई भी अंधेरे में होना नहीं चाहता। कोई नहीं चाहता कि मुझे पता चले कि मैं अंधा हूं, अंधेरे में हूं। आंख वाले के साथ तुम्हें अपने अंधेपन का पता चलता है। और अंधों के साथ रहो तो पता नहीं चलता। वे भी अंधे, तुम भी अंधे; उनकी भी भाषा वही, तुम्हारी भी भाषा वही। दोनों की भाषा में एक तालमेल होता है, एक संगति होती है, एक गणित होता है। आंख वाला आदमी तुम्हें बेचैनी देने लगता है, तुम्हें परेशान करने लगता है। वह प्रकाश की बातें करने लगता है। वह इंद्रधनुषों की बातें करने लगता है। वह चांद-तारों की चर्चा छेड़ता है। वह ऐसे गीत उठाता है, ऐसे नग्मे गाता है कि जिनसे तुम्हें लगता है कि अरे! तो हमारी जिंदगी में कुछ भी नहीं--न चांद, न तारे, न सूरज, न इंद्रधनुष, न फूलों के रंग! हमारी जिंदगी में कुछ भी नहीं!

तो सबसे पहला जो भाव पैदा होता है वह यह कि इस आदमी को अलग कर दो, रास्ते से हटा दो। इसके कारण ही हमें बेचैनी पैदा हो रही है, असंतोष पैदा हो रहा है। हम तो संतुष्ट थे। हमें तो पता ही न था कि चांद भी होता है, कि तारे भी होते हैं, कि आकाश में इंद्रधनुष भी रंगीनियां फैलाते हैं, कि फूलों में भी रंग होते हैं। हमें तो पता ही न था। इस आदमी ने कहां की बात छेड़ दी! किस लोक की बात छेड़ दी! और यह आदमी जरूर गलत होना चाहिए। गलत इसलिए होना चाहिए कि हमारी भीड़ है, हमारी संख्या ज्यादा है। और हमें ख्याल है कि जिसकी संख्या ज्यादा है उसके पास ही सत्य है। सत्य जैसे मतों से तय होता है! सत्य की भी जैसे कोई राजनीति है! सत्य भी जैसे कोई लोकतंत्र है!

अगर लोकतंत्र के हिसाब से सत्य तय होता हो, तो बुद्ध कभी के हार चुके, तो सुकरात कभी का समाप्त हो चुका, तो जीसस को सूली पूर्णरूपेण लग चुकी। अब कोई पुनरुज्जीवित होने का उपाय नहीं है। अच्छा है कि सत्य कोई लोकतांत्रिक ढंग से तय नहीं होता।

मुझे रोज पत्र आते हैं। मेरे खिलाफ रोज अखबारों में लेख निकलते हैं--सारी दुनिया के कोने-कोने में। उन सारे विरोधों में जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण विरोध हैं, वे विचारणीय हैं। एक विरोध यह है कि मैंने स्वयं को ही भगवान घोषित किया, मैं स्वयं-घोषित भगवान हूं। यह भारी विरोध है।

अब सवाल यह है कि जीसस को किसने घोषित किया था? ईसाई यह एतराज उठाते हैं। तो मैं उनसे पूछता हूं, कि जीसस को किसने घोषित किया था? हिंदू यह सवाल उठाते हैं। मैं उनसे पूछता हूं कृष्ण को किसने घोषित किया था? कोई कमेटी थी? कोई पंचायत थी? कोई पांच जनों ने मिल कर पंचायत की थी? कोई पंचों ने घोषणा की थी?

महावीर को किसने घोषित किया था कि वे भगवान हैं? जैन सवाल उठाते हैं। उनसे मैं पूछता हूं कि महावीर को किसने घोषित किया था? और आसान भी न था, क्योंकि महावीर के समय में... महावीर जैनों के चौबीसवें तीर्थंकर हैं, तेईस हो चुके थे, चौबीसवें के लिए बहुत झगड़ा था। क्योंकि चौबीसवां हो गया कि फिर पच्चीसवें का तो उपाय नहीं है जैन शास्त्रों में। तो अकेले महावीर दावेदार नहीं थे, और भी दावेदार थे। मक्खली गोशाल था, संजय वेलट्ठीपुत्त था, अजित केशकंबली था; उन सबकी घोषणा थी कि हम भगवान हैं। कैसे तय हुआ यह? कोई चुनाव हुआ था? कोई मतदान हुआ था? कोई चुनाव अधिकारी नियुक्त हुआ था, जिसने तय किया कि नहीं महावीर ही तीर्थंकर हैं? किसने घोषणा की?

बुद्ध ने स्वयं घोषणा की है कि मैं परम बुद्ध हूं, मैंने परम संबोधि पा ली है! और कौन घोषणा करेगा?

लेकिन बौद्ध, हिंदू, मुसलमान, ईसाई, जैन, उन सबका मेरे साथ यही सवाल है कि आप स्वयं घोषणा किए हैं। तो क्या मैं दो-चार आदमियों के दस्तखत करवा लूं? करवा सकता हूं, कोई अड़चन नहीं। दो लाख मेरे संन्यासी हैं, तो दो लाख आदमी दस्तखत कर सकते हैं। फिर बड़ी मुश्किल हो जाएगी। फिर तुम्हारे कृष्ण का, राम का, बुद्ध का और जीसस का कहां ठिकाना रहेगा? इनके पास तो कोई दस्तखत ही नहीं हैं, ये सब तो गए! गए काम से!

लेकिन यह दस्तखत की बात ही व्यर्थ है। क्या अंधों से पूछना पड़ेगा आंख वाले को कि मैं आंख वाला हूं या नहीं? कि हे अंधे भाइयो एवं बहनो, लाज रखो मेरी! कि प्यारे, दस्तखत कर दो! दस्तखत न बनें तो अंगूठे का निशान ही लगा दो! अरे तुम्हारा क्या बिगड़ता है, तुम तो अंधे हो ही! अगर मैं आंख वाला हुआ जा रहा हूं तुम्हारे दस्तखत से या तुम्हारे अंगूठे की छाप से, तो तुम्हारा क्या बिगड़ता है, हो जाने दो!

एक तो यह आलोचना कि भगवान की स्वयं घोषणा कैसे? इसमें यह बात मान ही ली गई कि भगवान होने की घोषणा किसी दूसरे को करनी पड़ेगी।

दूसरा करेगा तो गलत ही होगी। यह घोषणा तो स्वयं ही हो सकती है। यह घोषणा तो आत्मानुभव की है। मैंने अपने को जाना, अब मैं कैसे कहूं कि नहीं जाना? क्या झूठ बोलूं? मैंने अपने को पहचाना, मैं आनंदित हूं अपने भीतर, अब कैसे कहूं कि दुखी हूं? मैं स्वर्ग में हूं, क्या तुम्हें सिर्फ तृप्त करने को कहूं कि नरक में हूं? मैं समाधि के रस में डूब रहा हूं, क्या तुमसे कहूं कुछ और, जिससे तुम राजी हो सको? क्या तुम्हारे लिए झूठ बोलूं? एक यह आलोचना।

दूसरी आलोचना यह है कि कोई जीवित व्यक्ति भगवान कैसे हो सकता है?

यह भी बड़े मजे की बात है! मुर्दा भगवान हो सकता है, जिंदा भगवान नहीं हो सकता। इसलिए जो मर गए हैं, उनके संबंध में अगर एतराज उठाओ तो लोगों की भावनाओं को बड़ी ठेस पहुंचती है। अब यह बड़े आश्चर्य की बात है। मुझे गालियां दो और मेरे संन्यासियों की भावनाओं को ठेस नहीं पहुंचती! मैं जिंदा हूं, इसलिए मुझे गालियां दी जा सकती हैं और मेरे किसी संन्यासी को हक नहीं है कि कहे कि उसकी भावना को ठेस पहुंचती है! लेकिन अगर मैं किसी की आलोचना कर दूं जो कि मर चुका--और आलोचना के लिए पूरा तर्क देने को राजी हूं, पूरा विश्लेषण करने को राजी हूं--तो भी भावना को ठेस पहुंच जाती है। तर्क का सवाल ही नहीं, भावना को ठेस नहीं पहुंचनी चाहिए! सत्य मत बोलो; अगर झूठ से लोगों की भावनाओं को खूब रस मिलता है तो झूठ बोलो।

अब मैं लाख उपाय करूं तो भी कुछ लोगों को तो मैं ज्ञानी स्वीकार नहीं कर सकता। उनके वक्तव्य, उनका जीवन, उनकी सारी चर्या, उनका सारा बोध कुछ और गवाही दे रहे हैं, कैसे स्वीकार कर लूं? लेकिन किसी की भावना को ठेस न पहुंच जाए! तो भावना की फिक्र की जाए या सत्य की फिक्र की जाए? और अगर सत्य से तुम्हारी भावना को ठेस पहुंचती है तो अपनी भावना बदल लो। भावना तुम्हारी है। मैंने कोई ठेका नहीं लिया कि तुम्हारी भावना को ठेस नहीं पहुंचाऊंगा। मैं तो जो है वैसा कहूंगा।

अब अंधे आदमी को मत कहो अंधा, सूरदास जी कहो, मगर क्या फर्क पड़ता है? किसी को कहो सूरदास जी, वह फौरन समझ जाएगा अंधा कह रहे हो। कह कर देखो कि सूरदास जी, कहां जा रहे? वह फौरन लकड़ी लेकर खड़ा हो जाएगा कि किससे कहा तुमने! अगर आंख वाला होगा तो कहेगा, तुमने मुझे अंधा कहा? अंधा भी जानता तो है कि सूरदास का मतलब क्या, लेकिन बेचारा करे क्या, क्या झगड़ा खड़ा करे!

मगर अच्छे शब्दों से भी क्या होगा? मेरे पास पत्र आते हैं कि आप सभी धर्मों की प्रशंसा करें तो अच्छा हो।

क्यों? झूठ की प्रशंसा करवाना चाहते हो! मुझे अगर कुछ गलत दिखाई पड़ेगा तो मैं गलत कहूंगा। और मेरे साथ जिन्हें खड़ा होना है उनको तैयारी दिखानी पड़ेगी कि मुझे गालियां पड़ेंगी तो उनको भी गालियां पड़ेंगी। मेरे साथ खड़े होने का मतलब हैः एक आग से गुजरना।

श्रीचंद सखरानी, शिष्य होना है तो आग से गुजरने की तैयारी दिखाओ।

और यह मत समझना कि संन्यास का केवल इतना ही मतलब है कि तुमने गैरिक वस्त्र पहन लिए और माला पहन ली, इतने से संन्यास पूरा हो गया। यह तो केवल तुम्हारी तरफ से एक प्रतीक है कि अब मैं राजी हूं पागल होने को। यह तो सिर्फ पागलपन का प्रतीक है, और कुछ भी नहीं। यह तो इस बात का प्रतीक है कि तुम्हारे साथ चलने में अगर पागल भी होना पड़े तो मैं राजी हूं। अगर तुम वस्त्र भी बदलने को राजी नहीं हो तो आत्मा को बदलने को क्या खाक राजी होओगे! अगर तुम माला भी अपने गले में नहीं डाल सकते मेरी तस्वीर वाली, तो कल जब लोग तुम्हें मेरे नाम से पुकारेंगे और गालियां देंगे, तब तुम कैसे सह पाओगे? यह तो सब आयोजन है, यह सब तो व्यवस्था है, एक उपाय है--इस बात की सूचना करवाने का तुमसे कि तुमने बगावत स्वीकार कर ली है, कि तुम मेरे साथ खड़े हो, कि अब जो भी इसका परिणाम हो तुम भोगने को राजी हो।

और जो परिणाम भोगने को राजी है वही मेरे पास आ सकता है। पास आने की कीमत तो चुकानी ही होगी। निंदा सहनी होगी, बदनामी सहनी होगी, झंझटें उठानी पड़ेंगी। और तुम देखते हो, जो मेरे पास आए हैं कितनी झंझटें उठा कर आए हैं!

कल एक युवक आया, अपनी पत्नी का पत्र लेकर आया है हालैंड से। उसकी पत्नी ने लिखा है कि मैं दो में से एक ही बात स्वीकार कर सकती हूंः अगर इस व्यक्ति को मेरा पति रहना है तो आपका संन्यास छोड़ना पड़ेगा; और अगर इसको संन्यासी रहना है तो मुझे छोड़ना पड़ेगा।

उस युवक से मैंने पूछा, क्या तेरे इरादे हैं?

उसने कहा, इरादे का सवाल ही नहीं है, मैं तो पत्नी को छोड़ कर ही आ गया हूं। क्योंकि जो मेरे संन्यास को स्वीकार न कर सके वह क्या खाक मुझे स्वीकार करेगी! जो मेरी जीवन-शैली को स्वीकार न कर सके, सम्मान न दे सके... मैं उससे नहीं कह रहा हूं कि तू संन्यासी हो जा, मैं उसके बिना संन्यासी हुए उसे स्वीकार कर रहा हूं, तो उसे क्या अड़चन है मेरे संन्यास से?

और जहां प्रेम में शर्त आ जाती है वहां प्रेम नहीं है। उस युवक की आंखों में आंसू थे। उसके हृदय में उस स्त्री के लिए प्रेम है। उसने चाहा होता कि वह उसकी होती। उसने चाहा होता कि वह उसकी ही होती। लेकिन यह बात नहीं बन सकी। क्योंकि युवती की शर्त है। शायद ईसाइयत में मजबूती से रंगी होगी; शायद पुरानी धारणाएं भारी होंगी। शायद सोचा होगा कि प्रेम के बहाने इस आदमी पर पूरा कब्जा कर लो।

इतना तो साफ है, इस युवक को अपनी पत्नी से प्रेम है। लेकिन इससे भी बड़ी बातें हैं। जीवन में प्रेम से भी बड़ी बातें हैं। स्वतंत्रता प्रेम से भी बड़ी बात है। इसलिए हमने परम अवस्था को मोक्ष कहा है। मोक्ष यानी परम स्वतंत्रता, परम मुक्ति।

संन्यास तो सिर्फ पहला कदम है। और पहले कदम पर ही अगर तुम डगमगा गए तो आगे की यात्रा कैसे करोगे? तुम कहते हो कि मुझे उस पार तो ले चलो, लेकिन नाव में मैं नहीं बैठूंगा; मुझे उस पार तो ले चलो, लेकिन मैं इस तट को नहीं छोडूंगा; मुझे उस पार तो ले चलो, लेकिन ये जंजीरें--जिन्हें तुम जंजीरें कहते हो, मैं जंजीरें नहीं मानता, ये तो मेरे आभूषण हैं--मैं इनको कैसे छोड़ सकता हूं?

श्रीचंद सखरानी, थोड़ा सोचो--तुमने क्या पूछा है? इस पर पुनर्विचार करना।

शिष्यत्व का अर्थ ही होता हैः अब मैं सीखने को झुका, राजी हुआ। और जो झुका, जिसने सिर झुकाया, अब शर्त नहीं रख सकता है, अब सौदा नहीं कर सकता है।

और इतना तुम पक्का समझ लेना कि विमलकीर्ति तुम नहीं हो। वैसा साहस तुममें कहां? वैसी छाती तुममें कहां? और विमलकीर्ति तुम होते तो पहली तो बात, पूछते नहीं; पूछने की जरूरत ही न पड़ती, मैं तुम्हें पहचान ही लेता। तुम लाख छिपने की कोशिश करते तो भी पहचान लिए जाते। विमलकीर्ति जैसी क्षमता के लोग छिपते नहीं हैं।

तुम्हें यह भी कहानी स्मरण दिला दूं, शायद तुम्हें पता न हो, क्योंकि विमलकीर्ति की जो मैंने कहानी कही वह तो एक कहानी है, और भी बहुत कहानियां विमलकीर्ति के साथ जुड़ी हुई हैं। दूसरी कहानी यह है कि विमलकीर्ति एक वृक्ष के नीचे बैठा है। मंजुश्री उस वृक्ष के पास से गुजरते हैं। दूसरे भिक्षु तो दूर से ही देख कर कि विमलकीर्ति बैठा हुआ है, बच जाते हैं, कन्नी काट जाते हैं, यहां-वहां से निकल जाते हैं। क्योंकि विमलकीर्ति की आदत कुछ ऐसी थी कि किसी भी बात में से बात निकाल लेता था और अड़चन खड़ी कर देता था। लेकिन मंजुश्री भी हिम्मतवर आदमी था। थोड़ा तो डरा, लेकिन बचना ठीक नहीं मालूम पड़ा, कायरता मालूम पड़ी, इसलिए निकला।

विमलकीर्ति ने उसे देखा और पूछा, मंजुश्री, कहां जा रहे हो?

मंजुश्री ने कहा, भगवान के दर्शन को जा रहा हूं।

और विमलकीर्ति ने कहा, भगवान भीतर है। आंख बंद कर और बैठ यहीं! अगर भगवान के दर्शन को जा रहा है तो आंख बंद कर और बैठ यहीं! अब हिलना नहीं, डुलना नहीं; कहीं जाना नहीं, आना नहीं। आना-जाना क्या! अरे क्या आवागमन लगा रखा है!

मंजुश्री बैठा, मगर कब तक बैठे! उसको जाना है भगवान के दर्शन को। उसके कहा, अब आज्ञा दें। और उसने कहा कि अब बैठा ही हूं आपके पास तो एक प्रश्न बहुत दिन से मेरे मन में है वह पूछ लूं--कि आप भगवान से संन्यस्त क्यों नहीं होते? दीक्षा क्यों नहीं लेते?

विमलकीर्ति ने जो कहा, याद रखना उसे। श्रीचंद, खासकर तुम उसे याद रखना।

विमलकीर्ति ने कहा, वे जिस दिन योग्य समझेंगे, बुला लेंगे। मैं खुद अपनी योग्यता का किस मुंह से जाकर निवेदन करूं? मैं कैसे कहूं कि मैं इस योग्य हूं कि मुझे शिष्य की तरह स्वीकार कर लें? वे जानते हैं। जरूरत होगी, योग्यता होगी, पात्रता होगी, निश्चित ही पुकार लेंगे।

कहते हैं विमलकीर्ति की आंखों में आंसू आए। मंजुश्री ने कहा, आपकी आंख में और आंसू! विमलकीर्ति ने कहा, प्रतीक्षा करता हूं उस दिन की जिस दिन वे बुलाएंगे और मुझे दीक्षा देंगे।

लेकिन बुद्ध ने कभी विमलकीर्ति को बुलाया नहीं, दीक्षा दी नहीं। जरूरत थी नहीं। विमलकीर्ति दूर था ही नहीं। इसलिए न विमलकीर्ति ने प्रार्थना की, न बुद्ध ने उसे दीक्षा दी। मगर बात हो गई। विमलकीर्ति मुक्त होकर विदा हुआ, परम मुक्त होकर विदा हुआ।

स्वामी विजय भारती ने एक प्रश्न पूछा था कि यह कैसी अजीब बात है, ये फकीरों के क्या ढंग कि मंजुश्री तो गया था स्वास्थ्य पूछने, कुशल-क्षेम पूछने विमलकीर्ति से। उसने इतना ही पूछा था कि आपका स्वास्थ्य कैसा है? सीधी-सादी बात थी, सीधा-सादा उत्तर दे देना था--कि ठीक हूं या ठीक नहीं हूं। लेकिन यह क्या बात में से बात निकाल दी! स्वास्थ्य का क्या से क्या अर्थ कर दिया! विमलकीर्ति बोला, स्वास्थ्य कैसा! अरे मैं तो सदा स्वयं में स्थित हूं। स्वास्थ्य यानी स्वयं में स्थित होना। और आत्मा कभी अस्वस्थ होती है? मंजुश्री, तू भी कैसी मूर्खतापूर्ण बातें करता है!

विजय भारती ने पूछा है कि यह बात मेरी समझ में नहीं आती कि सीधा-सादा सवाल था कि आपकी तबीयत कैसी है? इसमें से यह प्रसंग क्यों उठा दिया?

इस प्रसंग के उठाने में राज है। इस तरह विमलकीर्ति ने मंजुश्री को एक अवसर दिया, एक मौका दिया--समझने का। मंजुश्री तो शरीर की ही बात पूछ रहा था और विमलकीर्ति शरीर का ही उत्तर देकर टाल भी सकता था। मगर फकीरों के अपने ढंग हैं, अपने राज हैं। वे कोई भी अवसर चूकते नहीं। जिस अवसर से भी तुम्हारे जीवन में क्रांति आ सके, थोड़ा तुम्हें धक्का दिया जा सके, थोड़ी एक किरण तुम्हारे अंधेरे में उतर सके, उस अवसर को चूकना उचित नहीं। मंजुश्री ने तो कुछ और पूछा था, विमलकीर्ति ने कुछ और कहा। लेकिन मंजुश्री चरण छूकर लौटा, धन्यवाद देकर लौटा। क्योंकि उसे पहली दफा यह ख्याल आया कि सच ही बीमार होता है शरीर, जन्म होता है शरीर का, मृत्यु होती है शरीर की। आत्मा तो सदा स्वस्थ है; उसकी वैसी बीमारी, कैसा बुढ़ापा, कैसी मृत्यु?

और विजय भारती, बुद्ध ने भेजा ही इसलिए था, ताकि मंजुश्री की यह जो थोड़ी-बहुत शरीर से, मन से, आसक्ति रह गई है, वह भी टूट जाए। उसके लिए विमलकीर्ति जैसा व्यक्ति चाहिए था, जो उठाए तलवार और इस तादात्म्य को दो टूक कर दे। नहीं तो बुद्ध को भेजने की कोई जरूरत भी न थी। क्या बुद्ध को पता नहीं था कि शरीर ही मरता है, शरीर ही बीमार होता है? बुद्ध ने मंजुश्री को एक अवसर दिया और विमलकीर्ति ने उस अवसर का ठीक-ठीक उपयोग किया। मंजुश्री आया तो उसने बुद्ध को धन्यवाद दिया कि आपने मुझे भेजा। और मैं चला गया हिम्मत करके, अच्छा हुआ। विमलकीर्ति आदमी अदभुत है। उसने छोटी सी बात में से भी बड़ा इशारा किया।

पारखियों के हाथ में कंकड़-पत्थर भी हीरे हो जाते हैं और बुद्धुओं के हाथ में हीरे भी कंकड़-पत्थर रह जाते हैं।

श्रीचंद, जरा सोचना। कहीं हीरे कंकड़-पत्थर ही न रह जाएं! यह अवसर है कि चाहो तो कंकड़-पत्थरों को हीरे बना सकते हो। मैं अवसर दे रहा हूं; चूकना या न चूकना तुम्हारे हाथ है।

आज इतना ही।

चौथा प्रवचन

फिकर गया सईयो मेरियो नी

पहला प्रश्नः ओशो, आपके सामने आद्य शंकराचार्य की एक और प्रश्नोत्तरी उपस्थित करने के लिए क्षमा चाहता हूं--आपसे और शंकराचार्य से भी।

उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते
 किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्।
वाक्कायचित्तेः सुधिया यमघ्नं
 मुरारिपादांबुजचिंतनं च।।

प्राण हरण करने वाले काल के उपस्थित होने पर सदबुद्धि वालों को यत्नपूर्वक तुरंत क्या करना चाहिए? सुखदायक और मृत्यु का नाश करने वाले भगवान कृष्ण के चरण-कमलों का मन, वचन और शरीर से ध्यान।

ओशो, इस प्रश्न का उत्तर देने की अनुकंपा करें।

सहजानंद, शंकराचार्य से क्षमा मांगो, वह तो ठीक; मुझसे क्षमा मांगने की कोई भी जरूरत नहीं। शंकराचार्य से क्षमा मांग लेना जरूरी है, क्योंकि तुमने आद्य शंकराचार्य को करीब-करीब खाद्य शंकराचार्य बना दिया है।

यह प्रश्न, और यह उत्तर! प्रश्न तो सुंदर है। प्रत्येक व्यक्ति का आंतरिक, प्रत्येक व्यक्ति का आत्यंतिक, जीवंत प्रश्न है। लेकिन उत्तर दो कौड़ी का है। लेकिन दो कौड़ी के उत्तर भी हमें मूल्यवान मालूम होते हैं--अगर परंपरागत हों, बार-बार सुने हुए हों। असत्य भी बार-बार सुनने पर सत्य जैसा प्रतीत होने लगता है। असत्य की पुनरुक्ति भी उसे सत्य होने का आभास दे देती है। इसलिए साधारणतः शंकराचार्य का उत्तर भी सार्थक मालूम पड़ेगा, यूं बिल्कुल व्यर्थ है। और मेरी दृष्टि के कारण ही व्यर्थ नहीं है, शंकराचार्य की स्वयं की जीवन-दृष्टि का अगर हम विचार करें तो भी व्यर्थ है। उस संदर्भ में भी व्यर्थ है।

एक ओर तो शंकराचार्य कहते हैंः जगत माया है, असत्य है, स्वप्नवत है। और दूसरी तरफः कृष्ण के चरण-कमल! अगर जगत माया है, तो जो भी बाहर है सब माया हो गया। कृष्ण के चरण-कमल भी बाहर हैं, भीतर तो नहीं। वे भी झूठ हो गए, असत्य हो गए।

लेकिन धर्म के नाम पर इस तरह की मूढ़ताएं और इस तरह के अंधे विश्वास, इस तरह की अबुद्धिपूर्ण धारणाएं प्रचलित रही हैं कि हमने धीरे-धीरे उन पर विचार करना ही छोड़ दिया।

अगर जगत माया है, तो शंकराचार्य तीर्थयात्रा कैसे करते हैं? क्योंकि सब तीर्थ तो जगत में हैं। जगत माया है, और गंगा में स्नान करने जाते हैं--पवित्र होने के लिए। गंगा माया नहीं है, काशी माया नहीं है! जगत माया है, लेकिन वेद माया नहीं है। यह कैसा असंगत दृष्टिकोण है?

इससे तो बेहतर झेन फकीर रिंझाई, जिसने रात ठंडी पाकर जापान के एक मंदिर में बुद्ध की काष्ठ-प्रतिमा को जला कर आंच ताप ली। मंदिर का पुजारी जागा, आग जली देख कर घबड़ाया। देखा तो भरोसा न आया। पूछा रिंझाई से कि क्या तुम पागल हो? तुमने भगवान बुद्ध की प्रतिमा को जला लिया--आंच तापने के लिए! होश है, तुमने क्या किया, कैसा पाप किया?

रिंझाई हंसा। अपने पास ही पड़े डंडे को उठा कर उसने राख हो गई बुद्ध की प्रतिमा में कुछ खोजना शुरू कर दिया। पूछा मंदिर के पुजारी ने, क्या खोजते हो?

रिंझाई ने कहा, भगवान की अस्थियां खोजता हूं।

फिर तो पुजारी को भी हंसी आ गई। उसने कहा, तुम पागल सुनिश्चित हो। अरे लकड़ी की प्रतिमा में कहीं अस्थियां होती हैं?

रिंझाई ने कहा, फिर तुम उतने नासमझ नहीं जितना मैंने सोचा था। अभी रात बहुत बाकी है और सर्दी बहुत है। और मंदिर में दो प्रतिमाएं और हैं, उनको भी उठा लाओ। मैं भी तापूं, तुम भी तापो। क्यों सर्दी में ठिठुर रहे हो? लकड़ी ही है, प्रतिमा बना लेने से कोई प्रतिमा नहीं बन जाएगी।

यह रिंझाई कहीं ज्यादा समाधि को उपलब्ध मालूम होता है, बजाय शंकराचार्य के। एक ओर कहते हैं जगत माया, और दूसरी ओर कहते हैं कि जब मृत्यु द्वार पर खड़ी हो जाए तो भगवान कृष्ण के चरण-कमलों का मन, वचन और शरीर से ध्यान।

पहली तो बात यह कि जो व्यक्ति जानता हो कि आत्मा अमर है वह मान ही नहीं सकता कि मृत्यु कभी द्वार पर खड़ी होती है। जिसने जाना आत्मा की अमरता को, उसने जान लिया साथ ही मृत्यु की असत्यता को। दोनों बात एक साथ तो नहीं हो सकतीं। मैं अगर अमृत हूं तो मृत्यु कैसी? मृत्यु तो इस जगत में सबसे बड़ा झूठ है।

शंकराचार्य इस जगत को तो झूठ कहते हैं, जो कि भलीभांति सत्य है, पूरी तरह सत्य है। प्यास लगती है तो इसी जगत के पानी को पीते हैं। और भूख लगती है तो इसी जगत में भिक्षा मांगने निकलते हैं। और विवाद करना होता है तो इसी जगत की यात्रा पर दिग्विजय करने को निकलते हैं, दूर-दूर पंडितों को हराने जाते हैं। अगर यह सब सपना है, तो केरल से चल कर मंडला तक आना मंडन मिश्र से विवाद करने, पागलपन नहीं तो और क्या है? कैसा मंडला! कैसे मंडन मिश्र! जब जगत ही असार है तो क्या इस जगत में मंडला सार है? और मंडला में बसे मंडन मिश्र सार हैं? और उनको हराने में कोई अर्थ है? और उन पर जीत पा लेने में कोई मूल्य है? जो है ही नहीं उसको जीत लिया तो क्या खाक जीता! जो था ही नहीं उसे अगर हरा दिया तो दिग्विजय क्या हो गई?

फिर सिकंदर में और शंकराचार्य में भेद क्या है? माना कि यात्राएं अलग, मगर दोनों की यात्राएं विजय यात्राएं हैं। सिकंदर तलवार लेकर चला है, शंकर तर्क लेकर चले हैं। मगर तर्क हो कि तलवार, आकांक्षा तो एक है--विजय पानी है, दूसरे को हराना है।

लेकिन दूसरा होना चाहिए न!

शंकर का पूरा जीवन तो सिद्ध करता है कि जगत सत्य है; सिर्फ सिद्धांत में असत्य है। और मृत्यु जैसी असत्य चीज को सत्य मान लिया उन्होंने। संसार, जो कि बहुत सत्य है, उसे असत्य कहते रहे। और मृत्यु जो कि है ही नहीं... क्योंकि कोई कभी मरा ही नहीं, न कभी कोई मर सकता है। शरीर में तुम मेहमान हो। बहुत शरीरों में मेहमान रहे हो, बहुत सरायों में ठहरे हो, लेकिन सराय तुम नहीं हो। जब तुम एक सराय छोड़ कर दूसरी सराय की तरफ जाते हो, तो क्या रोते हो, चिल्लाते हो? कि भगवान कृष्ण के चरण-कमलों को याद करते हो--कि हे प्रभु, बचाओ! अब मैं एक सराय छोड़ कर दूसरी सराय में जा रहा हूं। अब अगर तुमने न बचाया तो मैं डूबा। अब तो तुम्हीं सहारे हो, तुम्हीं बचावनहार हो।

शरीर तो तुम नहीं हो। और मजा यह है कि शरीर भी नहीं मरता। क्योंकि शरीर तो मिट्टी है। न शरीर मरता है, न आत्मा मरती है। फिर मरता क्या है? मरता कोई भी नहीं, सिर्फ संबंध टूटता है। शरीर और आत्मा का संबंध टूटता है।

शंकराचार्य से तो कहीं ज्यादा समझदारी की बात मुसलमान फकीर शेख फरीद ने की। शेख फरीद के पास लोग आते थे और नारियल चढ़ा जाते थे। एक पंडित ने आकर फरीद को पूछा, बाबा फरीद, ज्ञानी और अज्ञानी में क्या भेद है?

फरीद तो सीधे-सादे आदमी थे। कहो कि गांव के गंवार। पंडित होते तो वेदांत की और ब्रह्मचर्चा करते, कि कुछ सूफियाना बातें करते। सीधी-सादे आदमी थे। उठाया एक नारियल और उस पंडित को दिया और कहा, इसे फोड़!

पंडित ने फोड़ दिया नारियल। थोड़ा हैरान भी हुआ कि मैं क्या पूछ रहा हूं और यह पागल क्या दे रहा है! यह कोई जवाब हुआ, यह कोई मेरे प्रश्न का समाधान हुआ?

लेकिन जैसे ही नारियल फूटा, फरीद ने कहा कि देख, गिरी को साबित नहीं बचा सका तू, गिरी साबित बचानी थी।

वह पंडित हंसने लगा। और उसने कहा, गिरी कैसे साबित बच सकती है? नारियल कच्चा है। अभी खोल और गिरी जुड़े हैं। अगर नारियल को फोड़ूंगा, अगर खोल तोड़ूंगा, तो गिरी भी टूटेगी। कैसी बातें करते हो?

शेख फरीद ने कहा, ठीक। तो यह सूखा नारियल ले। लेकिन देख, गिरी को बचाना।

सूखा नारियल था। आहिस्ता से उसने फोड़ा। नारियल तो टूट गया, लेकिन गिरी साबित बच आई। फरीद ने कहा, समझा कुछ?

उस पंडित ने कहा, क्या खाक समझूं! अरे नारियल से मेरे प्रश्न का क्या संबंध?

फरीद ने कहा, फिर तू न समझ सकेगा। इतना ही फर्क है अज्ञानी में और ज्ञानी में। अज्ञानी है कच्चा नारियल। अभी शरीर और आत्मा जुड़े-जुड़े मालूम होते हैं। इसलिए चोट पहुंचती है। इसलिए मृत्यु मृत्यु जैसी मालूम होती है। ज्ञानी है पका नारियल। खोल और गिरी अलग हो गए। तादात्म्य टूट गया। इसलिए मृत्यु भी मृत्यु नहीं मालूम होती।

यह प्रश्न तो ठीक है सहजानंद।

उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते।

"जब मृत्यु आकर उपस्थित हो जाए... ।"

जिसने पूछा वह तो अज्ञानी है। वह तो कच्चा नारियल है। उसे तो हमें स्वीकार करना होगा कि उसका प्रश्न सार्थक है। उसके संदर्भ में प्रश्न अर्थपूर्ण है।

उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते।
किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्।

"प्राण हरण करने वाले काल के उपस्थित होने पर सदबुद्धि वालों को यत्नपूर्वक तुरंत क्या करना चाहिए?"

मृत्यु से घबड़ाया हुआ आदमी ऐसा पूछे, कुछ आश्चर्य नहीं। लेकिन शंकराचार्य, जिनको कि लोग सोचते हैं ज्ञाता हैं, सुधी हैं, प्रबुद्ध हैं, उनका उत्तर बड़ा साधारण। साधारण ही नहीं, गलत भी।

कहते हैंः "सुखदायक और मृत्यु का नाश करने वाले भगवान कृष्ण के चरण-कमलों का मन, वचन और शरीर से ध्यान।"

वाक्कायचित्तैः सुधिया यमघ्नं
मुरारिपादांबुजचिंतनं च।।

वे मान ही लेते हैं कि मृत्यु है। इनकार ही नहीं करते कि मृत्यु नहीं है। स्वीकार ही कर लेते हैं कि मृत्यु है। और अगर मृत्यु है तो कृष्ण भी नहीं बचा सकते, कोई भी नहीं बचा सकता। और अगर मृत्यु नहीं है तो कृष्ण को बुलाने की क्या जरूरत है? खुद ही जागने की जरूरत है, खुद ही होश से भरने की जरूरत है। खुद ही शांत और मौन इस तथ्य को देखने की जरूरत है कि मैं देह नहीं हूं, मैं मन नहीं हूं। और बात पूरी हो जाएगी। मृत्यु ऐसे तिरोहित हो जाएगी, जैसे कोई दीये को जला ले और अंधेरा तिरोहित हो जाए। भ्रांति थी, तादात्म्य से पैदा हुई थी, तादात्म्य की छाया थी।

इसमें कृष्ण को बुलाने की क्या जरूरत है? और कृष्ण क्या करेंगे? कृष्ण कुछ भी नहीं कर सकते हैं। सवाल है स्वयं कुछ करने का। मृत्यु तुम्हारी है, अमृत का अनुभव भी तुम्हारा ही होना चाहिए। सवाल है निजता का। और तुम कृष्ण को बुलाओगे भी तो किस कृष्ण को बुलाओगे? तुम्हारी कल्पना के ही कृष्ण होंगे। तुम्हारी कृष्ण से मुलाकात क्या है? पहचान क्या है? हुए भी हैं कि नहीं भी हुए हैं, यह भी पक्का नहीं है। थे तो कैसे थे? क्या रंग-रूप था? सब रंग-रूप तुमने ही अपनी तूलिका से भरे हैं। तुम्हारी ही कल्पना का जाल है। और तुम्हारी ही कल्पना का जाल कैसे तुम्हारी मृत्यु को तोड़ देगा? मृत्यु भी तुम्हारी कल्पना का जाल और कृष्ण भी तुम्हारी कल्पना के जाल, एक कल्पना से दूसरी कल्पना को कैसे काटोगे? मिट्टी से मिट्टी को धोने चले हो? कीचड़ से कीचड़ को धोने की आकांक्षा रखते हो? पागल हो गए हो।

लेकिन क्या बात शंकराचार्य कहते हैं!

"सुखदायक और मृत्यु का नाश करने वाले... ।"

मृत्यु है ही नहीं तो नाश कोई कैसे करेगा? और सुखदायक! जीवन में सुख और दुख का द्वंद्व ही तो संसार है। दुख न मिले मुझे, सुख मिले मुझे--यही आकांक्षा तो हमारा रोग है। और इसी आकांक्षा को लेकर लोग मंदिरों और मस्जिदों में भी जा रहे हैं, गिरजों और गुरुद्वारों में भी प्रार्थनाएं कर रहे हैं--दुख नहीं, सुख। मगर जब तक तुम सुख चाहते हो, दुख पाओगे, क्योंकि सुख और दुख एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। तुम असंभव को संभव हुआ देखना चाहते हो? तुम चाहते हो रातें तो विदा हो जाएं और दिन बच जाए, बस दिन ही बचे! जीवन तो बच जाए, मृत्यु विदा हो जाए। गुलाब के फूल ही बचें, कांटे न रहें। जीत ही जीत हो, हार न हो।

अगर जीत बचानी है तो हार भी बचेगी। अगर सम्मान बचाना है तो अपमान भी बचेगा। अगर स्वागत-समारंभ में रस है तो गालियां भी पड़ेंगी। हां, अगर दोनों को छोड़ सको तो इसी क्षण छुटकारा है। और किसी कृष्ण को बीच में लाने की आवश्यकता नहीं है। न कृष्ण की, न क्राइस्ट की, न महावीर की, न बुद्ध की, किसी की कोई जरूरत नहीं है। तुम समर्थ हो, तुम पर्याप्त हो।

और क्या हैरानी की बात कही है। ऐसा लगता है, ध्यान की भी कोई अनुभूति नहीं है। कहा है कि--"चरण-कमलों का मन, वचन और शरीर से ध्यान करो।"

ध्यान का अर्थ ही होता हैः मन, वचन, शरीर के पार जाना। अगर शरीर, मन, वचन से ध्यान करोगे तो पार कैसे जाओगे? ध्यान का अर्थ ही डगमगा गया। सारी बात ही गलत हो गई। यह ध्यान हुआ? शंकराचार्य किस चीज को ध्यान कह रहे हैं? शरीर से कैसे ध्यान किया जाता है? क्या पद्मासन में बैठ गए तो शरीर से ध्यान हो गया?

अभी-अभी कुछ दिन पहले दिगंबर जैनों के एक बड़े महात्मा, तथाकथित महात्मा, कानजी स्वामी मरे। उनकी तस्वीर मरने के बाद अखबारों में छपी। बड़ी प्यारी तस्वीर थी। बड़ी खूबी की तस्वीर थी। तस्वीर थी कि वे तो मर गए, अब उनकी लाश को लोग जबरदस्ती तोड़-मरोड़ कर पद्मासन में बिठा रहे हैं। आठ-दस आदमी मेहनत कर रहे हैं। कोई टांग मोड़ रहा है, कोई हाथ मोड़ रहा है। मरे हुए देर हो गई, क्योंकि मरे वे बंबई में, फिर ले जाए गए सोनगढ़। इस बीच शरीर अकड़ गया होगा। अब इस अकड़े शरीर को, अब चाहे हड्डियां टूट जाएं, फ्रैक्चर हो जाए, कोई फिक्र नहीं, मगर पद्मासन में बिठालना है। क्योंकि बिना पद्मासन में बैठे अगर मर गए तो मोक्ष नहीं!

यह है शरीर का ध्यान! ये मर ही चुके बेचारे। ये जा ही चुके, नरक या मोक्ष, जहां भी गए हों। जहां इन्हें जाना है जा चुके। मगर शिष्य अपना आखिरी कृत्य पूरा कर रहे हैं। वे शरीर से ध्यान करवा रहे हैं। उन्होंने बिठा

दिया। अब मार-पीट करोगे तो मुर्दा आदमी क्या करे! जिंदा हो तो इनकार भी करे कि भई, क्या मेरी टांग तोड़े डाल रहे हो? क्यों मेरी गर्दन मरोड़ रहे हो?

अब उनकी हालत मैंने देखी, बड़ी बुरी हालत थी। मुंह लटक गया था। एक तरफ से मुंह खुला था, एक तरफ से बंद था। लार बह रही थी। लेकिन जबरदस्ती उनकी गर्दन सीधी की जा रही थी। हाथ मोड़े जा रहे थे। ठीक पद्मासन में बिठालना जरूरी है। और नंगा भी कर दिया था। क्योंकि जीवन भर... वे यूं तो पैदा हुए श्वेतांबर, स्थानकवासी, लेकिन बातें करने लगे वे, एक जैन विचारक हुए कुंदकुंद, उनकी। कुंदकुंद की बात श्वेतांबर धारणा के लोगों को बिल्कुल नहीं जमती। उन्होंने निकाल कानजी स्वामी को बाहर किया। तब से वे दिगंबर हो गए। और दिगंबरों में उनकी खूब पूजा हुई! यह नियम है।

अगर ईसाई हिंदू हो जाए, तो ईसाई था तब तक दो कौड़ी का था, हिंदू होते ही एकदम हीरा हो जाएगा। हिंदू ईसाई हो जाए, जब तक हिंदू था, किसी को पूछताछ नहीं थी उसकी, ईसाई होते ही से महात्मा हो जाएगा।

क्यों? क्योंकि जो हिंदू ईसाई हो गया उसने ईसाई होकर यह सिद्ध कर दिया कि ईसाई धर्म हिंदू धर्म से श्रेष्ठ है, नहीं तो क्यों चुना? जो ईसाई ईसाई से हिंदू हो गया, उसने सिद्ध कर दिया कि बाइबिल से गीता महत्वपूर्ण है। इसलिए सम्मान मिलेगा हिंदुओं के द्वारा उसे। पैदाइशी हिंदू को जो सम्मान नहीं मिलता वह इस तरह से बने-बनाए हिंदू को मिलता है, बने-बनाए ईसाई को मिलता है, बने-बनाए मुसलमान को मिलता है।

कानजी स्वामी को अपमान मिला स्थानकवासी श्वेतांबरियों से, लेकिन दिगंबरियों ने उनको सिर पर उठा लिया। हालांकि एक अड़चन उनको सदा रही; वह अड़चन यह थी कि वे नग्न नहीं थे। इसलिए उनको मुनि नहीं कह सकते थे। तो उनके लिए नये-नये नाम खोज लिए थे--सदगुरुदेव, स्वामी जी। मुनि नहीं कह सकते, क्योंकि मुनि तो नग्न होना चाहिए। और उतनी हिम्मत वे भी नहीं जुटा सके कि नग्न हो जाएं। कुंदकुंद की बात तो वे करने लगे, लेकिन वह सफेद वस्त्र का जो मोह था स्थानकवासी का, वह भी शेष रहा। संस्कार बड़े अदभुत रूप से जकड़े रहते हैं। तो पतला कर लिया कपड़ा, बिल्कुल मलमल पहनते थे, मगर फिर भी झीनी बात रही।

असल में, श्वेतांबर धारणा यह है कि महावीर नग्न नहीं थे। उनको इंद्रदेव ने ऐसा झीना कपड़ा पहनाया था कि दिखाई नहीं पड़ता था, अदृश्य था, पारदर्शी था। इसलिए लोग समझे कि नग्न। वे नग्न थे नहीं, दैवीय वस्त्र पहने हुए थे। वह दैवीय वस्त्र केवल श्वेतांबरियों को दिखाई पड़ता था। जिनको नहीं दिखाई पड़ता था वे अंधे दिगंबरी। वे समझे कि नंगे खड़े हैं।

तो कानजी स्वामी ने वस्त्र तो नहीं छोड़ा, लेकिन झीना कर लिया।

अब इंद्र देवता का वस्त्र आजकल मिलता कहां? ढाका की मलमल भी नहीं मिलती--कि हाथी को ओढ़ा दो इतनी मलमल को, और छल्ले में से निकाल दो--वह भी नहीं मिलती। मगर जो भी हो सकता था, जितनी पतली मलमल मिल सकती थी, पहनते थे बेचारे।

लेकिन मर कर, दिगंबरियों को अड़चन थी कि अब क्या होगा? मोक्ष तो जा नहीं सकते। मलमल भी बाधा हो जाएगी, ध्यान रखना। भला हाथी को ओढ़ाने वाली मलमल छल्ले में से निकल जाए, लेकिन कानजी स्वामी उसको ओढ़ कर मोक्ष के द्वार में से नहीं निकल सकते। वहीं पकड़े जाएंगे--कि खड़े रहो, ठहरो! मलमल बाहर छोड़ो! यह मल इत्यादि लेकर भीतर कहां जा रहे हो? भीतर तो निर्मल हो जाओ, तब जा पाओगे। मलमल कैसी?

वे तो बेचारे मर गए। जिंदा रहे, तब तक तो छोड़ने की बहुत कोशिश की। दिगंबर उनको समझाते रहे कि आप छोड़ दो वस्त्र। मगर वे भी न छोड़ पाए। वे भी न छुड़ा पाए। अब मर ही गए तो उन्होंने छुड़ा लिए। उनको नग्न कर दिया। जिंदगी भर जो मुनि नहीं थे, मर कर मुनि हो गए। और बिठा दिया पद्मासन में। हो गया ध्यान--मन, वचन, काया से! चले मोक्ष की तरफ!

शंकराचार्य की यह बात तो बड़ी ही बेढंगी है--कि मन, वचन और शरीर से ध्यान!

ध्यान का अर्थ ही होता है--मैं शरीर नहीं। फिर शरीर पद्मासन में बैठा हो कि शवासन में लेटा हो, हर हालत में मैं शरीर नहीं। यह ध्यान का पहला कदम। ध्यान का दूसरा कदम कि मैं विचार नहीं, मन नहीं, कल्पना नहीं, वासना नहीं। फिर चाहे मन में कोई भी वासना चल रही हो, मोक्ष की भी वासना हो तो भी मैं वह वासना नहीं। यह ध्यान का दूसरा कदम। और ध्यान का तीसरा कदम कि मैं भावना नहीं, भाव नहीं। फिर ये कृष्ण के चरण-कमल, यह तो भावना की ही बात है। यह तो शुद्ध, मन का जो अंतिम गहरा से गहरा रूप है--भाव; सूक्ष्म से सूक्ष्म--वही है। इन तीनों के पार हो जाना है--शरीर के, मन के, हृदय के--तब तुरीय अवस्था पैदा होती है, तब चौथी अवस्था पैदा होती है। वही चौथी अवस्था ध्यान है।

प्रश्न बड़ा सुंदर था। सहजानंद, तुमने अनुवाद में भी थोड़ा खराब कर दिया।

उपस्थिते प्राणहरे कृतान्ते।

पूछा था कि "जब प्राण हरण करने वाली मृत्यु उपस्थित हो जाए... "

किमाशु कार्यं सुधिया प्रयत्नात्।

"सुधिया--तब सुधीजन क्या करे?"

मगर सुधीजन को तो कुछ करने की जरूरत ही नहीं। जिसको सुध आ गई वह सुधिया। लेकिन सहजानंद, तुमने अनुवाद कर दिया--सदबुद्धि वालों को।

यहां बुद्धि का सवाल ही नहीं है। सुधिया! इसमें बुद्धि की कोई गुंजाइश नहीं। बुद्धि के अतिक्रमण का नाम सुधिया। जिसको कबीर ने, नानक ने सुरति कहा है, सुधि कहा है; जिसको बुद्ध ने स्मृति कहा है, सम्मासति कहा है। सदबुद्धि नहीं। यहां कहां सदबुद्धि और कहां असदबुद्धि? अच्छे और बुरे का भेद ही बुद्धि का है। यहां तो बुद्धि रही ही नहीं, सिर्फ सुधि रह गई, सिर्फ आत्म-स्मरण रह गया, अपनी प्रतीति रह गई, होने का भाव मात्र रह गया। अब तो यह भी पता नहीं कि मैं कौन हूं। अब तो यह भी पता नहीं कि मैं क्या हूं। अब तो जिसको पता हो सकता है, वह भी नहीं। सुधि तो समाधि की अवस्था है।

बुल्लेशाह का यह वक्तव्य सुनो।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

न मैं मोमिन विच मसीतां, न मैं विच कुफर दीयां रीतां।

न मैं पाकां विच पलीतां, न मैं मूसा न फरऔन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

न मैं अंदर बेद कताबां, न विच भंग न शराबां।

न विच रहिंदा मस्त खवाबां, न विच जागन न विच सौन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

न विच शादी न गमनाकी, न मैं विच पलीती पाकी।

न मैं आबी न मैं खाकी, न मैं आतश न मैं पौन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

न मैं अरबी न लाहोरी, न हिंदी न शहर नगौरी।

न मैं हिंदू तुर्क पशौरी, न मैं रहिंदा विच नदौन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

अव्वल आखर आप नू जाना, न कोई दूजा होर पछाना।

मैथों होर न कोई सयाना, बुल्ला शाह किहड़ा है कौन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

अर्थात, बुल्लेशाह कहते हैं कि मैं क्या जानूं कि मैं कौन हूं!

बुल्ला की जाना मैं कौण!

ऐसा सन्नाटा है, ऐसी समाधि है, ऐसा शून्य है--कौन जाने, किसको जाने! जानने में द्वैत होता है--जानने वाला और जो जाना जाए; ज्ञाता और ज्ञेय।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

बुल्लेशाह कहते हैंः "मैं क्या जानूं कि मैं कौन हूं!"

न जानने वाला है कोई, न जानने को है कोई। सब सन्नाटा है, सब शून्य है, निराकार है। यह अवस्था ध्यान की है।

"न मैं मस्जिद में मोमिन हूं।"

मत कहो कि मैं मुसलमान हूं। मेरा क्या लेना-देना मस्जिद से और मुसलमान से!

"न मैं कुफ्र की रीतियों में हूं।"

और यह मत सोचना कि मैं मुसलमान नहीं हूं तो मैं मुसलमान विरोधी हूं। वह भी मैं नहीं हूं।

"न मैं पापियों में पवित्र हूं, और न ही मैं मूसा हूं, न फरऔन हूं। बुल्ला कहता है, मैं क्या जानूं मैं कौन हूं।"

मत पूछो! मुसलमान हूं, हिंदू हूं, ईसाई हूं, यहूदी हूं--मत पूछो।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

न मैं मोमिन विच मसीतां, न मैं विच कुफर दीयां रीतां।

न मैं पाकां विच पलीतां, न मैं मूसा न फरऔन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

"न मैं वेद-किताबों में हूं और न भांग व शराब में। न मैं सपनों में मस्त हूं, न सोने में और न जागने में।"

गजब की बात कही कि न मैं सपनों में मस्त हूं, न सोने में और न जागने में। मैं तो वह हूं जो जागने को भी देखता है, जो जागने के भी पार है।

"बुल्ला कहता है, मैं क्या जानूं मैं कौन हूं!"

न मैं अंदर बेद कताबां, न विच भंग न शराबां।

न विच रहिंदा मस्त खवाबां, न विच जागन न विच सौन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

"न मैं खुशी में हूं और न गम में हूं, न पाप में हूं, न पुण्य में हूं; और न मैं पानी हूं या राख में हूं, न मैं आग में हूं और न मैं पवन में हूं। बुल्ला कहता है, मैं क्या जानूं मैं कौन हूं!"

"न मैं अरबी हूं, न लाहौरी हूं, न हिंदी और न नागरी हूं; न मैं हिंदू हूं या पेशावर का तुर्क हूं; और न मैं नदौन में रहता हूं। बुल्ला कहता है, मैं क्या जानूं मैं कौन हूं!"

"आदि और अंत में मैं अपने को ही जानता हूं।"

बहुत प्यारा वचन है यह!

अव्वल आखर आप नू जाना, न कोई दूजा होर पछाना।

पहले भी मैं अपने को ही जानता था, अब भी मैं अपने को जानता हूं, अंत में भी मैं अपने को जानूंगा। मैं जानने वाला मात्र हूं, जानने को कोई भी नहीं। ज्ञेय कोई भी नहीं; मैं ज्ञान मात्र हूं--चिन्मात्र।

"आदि और अंत में मैं अपने को ही जानता हूं, किसी दूसरे को नहीं।"

दूसरे को तो पहचानता ही नहीं।

"बुल्ला कहता है कि मुझसे ज्यादा सयाना और कौन है?"

सुधिया अर्थात सयाना। जिसको सुध आ गई।

"मुझसे ज्यादा सयाना और कौन है? इसलिए परमात्मा कौन है?"

गहरी बात बुल्ले ने कहीः मुझसे सयाना कौन है? परमात्मा कौन है? परमात्मा कौन है? क्योंकि जब मैं ही सबसे ज्यादा सयाना हूं तो मुझसे पार और कुछ भी नहीं।

जिसने शरीर, मन और वचन, कामना, वासना और भावना का अतिक्रमण किया, वहां कहां कृष्ण और कहां भक्त! वहां भक्त ही भगवान है। वहां कैसा भगवान?

"बुल्ला कहता है, मैं क्या जानूं मैं कौन हूं!"

अव्वल आखर आप नू जाना, न कोई दूजा होर पछाना।

मैथों होर न कोई सयाना, बुल्ला शाह किहड़ा है कौन।।

बुल्ला की जाना मैं कौण!

शंकराचार्य का यह वचनः "प्राण हरण करने वाले काल के उपस्थित होने पर सदबुद्धि वालों को यत्नपूर्वक तुरंत क्या करना चाहिए?"

पहली तो बात यह कि कोई जीवन को समाप्त करने वाली घड़ी नहीं आती।

तुम मुझसे पूछते हो सहजानंद कि आप इस प्रश्न का उत्तर देने की अनुकंपा करें।

अगर मुझसे तुम पूछोगे तो मैं कहूंगा, प्राण हरण करने वाली कोई घड़ी कभी आती नहीं। मृत्यु हुई ही नहीं--कभी नहीं हुई। मृत्यु इस जगत में सबसे बड़ा असत्य है, भ्रांति है। और भ्रांति इसलिए पैदा हो जाती है कि जैसे रस्सी में कोई सांप को देख ले और फिर दीया जलाए और सांप को न पाए, तो क्या हम कहेंगे कि सांप मर गया?

सांप था ही नहीं तो मरेगा कैसे? एक भ्रांति थी, भ्रांति की कोई मृत्यु होती है? तुमने अपने को शरीर मान लिया, इसलिए एक भ्रांति पैदा हो गई, रस्सी में सांप दिखाई पड़ने लगा। फिर मौत जिसको तुम कहते हो--संबंध टूटा, शरीर से तुम अलग हुए--फिर तुम रोने-चिल्लाने लगे कि अब मैं मरा, अब मैं मरा।

सिर्फ तादात्म्य टूट रहा है; न कोई मर रहा है, न कोई मर सकता है। मुझसे अगर पूछो तो मैं कहूंगा, प्राण हरण करने वाला काल कभी उपस्थित ही नहीं होता।

दिल की चोटों ने कभी चैन से रहने न दिया
जब चली सर्द हवा मैंने तुझे याद किया
वो उन्हें याद करें जिसने भुलाया हो कभी
हमने उनको न भुलाया न कभी याद किया

परमात्मा को याद करने में भी भूल है। यह कृष्ण को याद करने की बात ही भूल भरी है।

दिल की चोटों ने कभी चैन से रहने न दिया
जब चली सर्द हवा मैंने तुझे याद किया
वो उन्हें याद करें जिसने भुलाया हो कभी
हमने उनको न भुलाया न कभी याद किया
कोई समझाए ये क्या रंग है मैखाने का
आंख साकी की उठे, नाम हो पैमाने का
गर्मिए-शम्मा का अफसाना सुनाने वालो
रक्स देखा नहीं तुमने अभी परवाने का
किसको मालूम थी पहले से खिरद की कीमत
आलमे-होश पे एहसान है दीवाने का
चश्मे-साकी मुझे हर गाम पे याद आती है
रास्ता भूल न जाऊं कहीं मैखाने का
अब तो हर शाम गुजरती है उसी कूचे में
ये नतीजा हुआ नासेह तेरे समझाने का

मंजिले-गम से गुजरना तो है आसां इक बार
इश्क है नाम खुद अपने से गुजर जाने का
कोई समझाए ये क्या रंग है मैखाने का
आंख साकी की उठे, नाम हो पैमाने का

याद करो परमात्मा को, यह बात ही गलत। भूलो मत परमात्मा को, यह बात जरूर सही है। तुम थोड़ी दुविधा में पड़ोगे। तुम कहोगे मैंने फिर पहेली कही। दोहरा दूंः याद करो परमात्मा को, यह बात ही गलत। याद किया हुआ परमात्मा दो कौड़ी का। क्योंकि याद तुम क्या करोगे? तुम्हें याद नहीं है इसीलिए तो याद कर रहे हो। तो तुम जो याद करोगे, वह कल्पना ही होगी, कोई धारणा ही होगी। हिंदू हुए तो कृष्ण।

ये शंकराचार्य अगर ईसाई होते तो कभी भूल कर न कहते कि कृष्ण को याद करो; कहते क्राइस्ट को याद करो। अगर ये बौद्ध होते तो कहते बुद्ध को याद करो। अगर ये जैन होते तो कहते महावीर को याद करो। किसको याद करोगे? याद करोगे तो कल्पना ही होगी। याद नहीं है इसीलिए तो याद करते हो। और जब याद नहीं है तो जाहिर है कि तुम कल्पना ही कर सकते हो, और क्या करोगे?

मैं नहीं कहता कि परमात्मा को याद करो। मैं कहता हूं, बात कुछ ऐसी बनानी है कि परमात्मा भूले नहीं। यह बात बिल्कुल और है, अन्यथा है। परमात्मा भूले नहीं। याद नहीं करना है। शरीर से तादात्म्य तोड़ना है, मन से नाता मुक्त करना है, हृदय के पार उठना है, पंख फैलाने हैं। और जैसे ही तुम शरीर, मन और हृदय के पार उठे, जैसे ही तुमने पंख फैलाए और आकाश खुला, कि फिर जो दिखाई पड़ेगा वही परमात्मा की याद है। फिर वह कृष्ण की याद नहीं है, न क्राइस्ट की, न मोहम्मद की, न मूसा की। फिर उसका कोई रूप नहीं, रंग नहीं, गुण नहीं। फिर तो एक निराकार बोध है, सुधिया, समाधि है।

क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
जख्मे-दिल आपकी नजरों से भी गहरा निकला
क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
तोड़ कर देख लिया आईना-ए-दिल तूने
तेरी सूरत के सिवा और बता क्या निकला

याद करने की बात ही नहीं। याद कभी भूल कर न करना। ऐसे शून्य में अपने को ले जाना है जहां लाख कोई खोजे तो परमात्मा के सिवा और कुछ निकले ही नहीं।

यह जो कृष्ण को याद कर रहा है, जरा कुरेदोगे तो कुछ और निकल आएगा। यह कृष्ण को याद करने वाला तो अंधा आदमी है जो रोशनी को याद कर रहा है। जरा कुरेदोगे कि अंधापन निकल आएगा। जरा खोजबीन करोगे कि पता चल जाएगा अंधा है।

क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
जख्मे-दिल आपकी नजरों से भी गहरा निकला
क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
तोड़ कर देख लिया आईना-ए-दिल तूने
तेरी सूरत के सिवा और बता क्या निकला
क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
जब कभी तुझको पुकारा मेरी तनहाई ने
बू उड़ी फूल से, तस्वीर से साया निकला
क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
तिश्नगी जम गई पत्थर की तरह ओंठों पर
डूब कर भी तेरे दरिया से मैं प्यासा निकला
क्या भला मुझको परखने का नतीजा निकला
जख्मे-दिल आपकी नजरों से भी गहरा निकला

बात तब बनती है जब परमात्मा भूले नहीं। तब नहीं बनती बात जब परमात्मा को याद करना पड़े। इसलिए मैं न कहूंगा कि मृत्यु के क्षण में परमात्मा को याद करना। मैं तो कहूंगा, मृत्यु के क्षण की प्रतीक्षा क्या करनी? जीओ परमात्मा को! मौत तो कल होगी, जीना आज है।

ख्याल रखना, मौत हमेशा कल होती है और जीना आज होता है। आज अगर परमात्मा को न जान सकोगे तो कल कैसे जान लोगे? कल आज से ही तो निकलेगा, आज से ही तो जन्मेगा, आज की ही कोख से तो पैदा होगा। कल आएगा कहां से?

मैं कल की बात ही नहीं करता। मैं तो कहता हूंः आज जीओ! परमात्मा को जीना है, पीना है; उठना है, बैठना है; चलना है, फिरना है। परमात्मा तुम्हारे जीवन की शैली और व्यवस्था होना चाहिए। परमात्मा सिर्फ याददाश्त नहीं; किसी मंदिर में बैठ कर बजाई गई घंटों की आवाज नहीं; किसी मजार पर चढ़ाया गया दीया नहीं। परमात्मा तुम्हारे उठने-बैठने, खाने-पीने, सोने-जागने की पूरी शैली का नाम है, पूरी व्यवस्था का नाम है। परमात्मा एक जीने का ढंग है--जीने की एक कविता; जीने का एक संगीत।

जीओ परमात्मा को। और तब तुम पाओगे मौत आती ही नहीं, होती ही नहीं। फिर कृष्ण इत्यादि के चरण-कमलों को याद करने की जरूरत न पड़ेगी। और जीया नहीं अगर परमात्मा को, तो तुम लाख चरण-कमलों को याद करो, कुछ काम न आएंगे।

यह मरते वक्त की बेईमानी काम नहीं पड़ सकती है। जिंदगी भर तो धन के पीछे दौड़ो, और मरते वक्त मन, वचन और शरीर से ध्यान करोगे? कैसे करोगे? जिंदगी भर तो कुछ और, और जब अरथी उठे तो राम-नाम सत्य! यह कैसे होगा? हां, दूसरे कहेंगे राम-नाम सत्य! मगर तुम तो जा चुके। तुम तो अब वहां नहीं हो। और ये दूसरे भी जल्दी राम-नाम सत्य करके अपने-अपने घर जाना है इनको। दूसरे काम सत्य हैं। "राम-नाम सत्य है" तो दूसरे के लिए बोल रहे हैं, अपने लिए नहीं बोल रहे हैं। ये तो इसलिए दूसरे के लिए बोल रहे हैं कि जब ये मरें तो दूसरे इनके लिए बोल दें। यह एक औपचारिकता है। यह लेन-देन है, दुनिया का हिसाब-किताब है, व्यवहार है।

नहीं, मैं न कहूंगा कि मृत्यु की प्रतीक्षा करो तब परमात्मा का बोध जगाना। अभी, यहीं, इसी क्षण क्यों न परमात्मा के बोध को जगाओ? कल पर क्यों टालो? जो मूल्यवान है उसे हम अभी करते हैं; जो मूल्यहीन है उसे कल पर टालते हैं।

और याद नहीं करना है परमात्मा को। इसलिए मैं यहां प्रार्थना पर जोर नहीं देता, मेरा जोर ध्यान पर है। प्रार्थना है परमात्मा को याद करना और ध्यान है उस अवस्था में पहुंच जाना जहां भुलाना भी चाहो परमात्मा को तो भुला नहीं सकते हो। लाख भुलाने का उपाय करो, नहीं भुला सकते हो। क्योंकि वही है, एकमात्र वही है।

यह जो तुम कृष्ण को याद कर लोगे या क्राइस्ट को याद कर लोगे, इस याददाश्त में यह हो सकता है कि भूल जाओ मृत्यु की पीड़ा को थोड़ी देर के लिए। लेकिन यह बस भांग और गांजा और शराब या कहो सोमरस... अगर वैदिक धर्म का सार निकालना हो तो भावातीत ध्यान नहीं है, जैसा महर्षि महेश योगी कहते हैं, बल्कि सोमरस। सोमरस वैदिक धर्म का सार है। नशा! नशा चढ़ सकता है। और अगर जोर से बकवास करो तो यह भी हो सकता है, यमदूत आ गए हों, भाग खड़े हों। ऐसा मैंने सुना--

कवि लक्कड़ जी हो गए अकस्मात बीमार,

बिगड़ गई हालत, मचा घर में हाहाकार।

घर में हाहाकार, डाक्टर ने बतलाया,

दो घंटे में छूट जाएगी इनकी काया।

पत्नी रोई--ऐसी कोई सुई लगा दो,
मेरा बेटा आए, तब तक इन्हें बचा दो।
मना कर गए डाक्टर, हालत हुई विचित्र,
फक्कड़ बाबा आ गए, लक्कड़ जी के मित्र।
लक्कड़ जी के मित्र, करो मत कोई चिंता,
दो घंटे क्या, दस घंटे तक रख लूं जिंदा।
सब को बाहर किया, हो गया कमरा खाली,
बाबाजी ने अंदर से चटखनी लगा ली।
फक्कड़ जी कहने लगे--"अहो काव्य के ढेर!
हमें छोड़ तुम जा रहे, यह कैसा अंधेर?
यह कैसा अंधेर, तरस मित्रों पर खाओ,
श्रीमुख से कविता दो-चार सुनाते जाओ।"
यह सुन कर लक्कड़ जी पर छाई खुशहाली,
तकिये के नीचे से काव्य-किताब निकाली।
कविता पढ़ने लग गए, भाग गए यमदूत,
सुबह पांच की ट्रेन से आए कवि के पूत।
आए कवि के पूत, न थी जीवन की आशा,
पहुंचे कमरे में तो देखा अजब तमाशा।
कविता-पाठ कर रहे थे कविवर लक्कड़ जी,
होकर "बोर" मर गए थे बाबा फक्कड़ जी।

अब तुम अगर ज्यादा बकवास मचा दो--हरे कृष्णा, हरे रामा; हरे कृष्णा, हरे रामा--हो सकता है यमदूत घबड़ा जाएं, इधर-उधर खिसक जाएं। मगर फिर लौट आएंगे। कितनी देर तक शोरगुल मचाओगे? यूं नहीं चलेगा, यूं नहीं चल सकता है। जीवन रूपांतरित होना चाहिए। धर्म श्वास-श्वास में होना चाहिए, हृदय की धड़कन-धड़कन में। और तब पाया जाता है अमृत का स्रोत अपने ही भीतर। शाश्वत स्रोत। उसकी एक बूंद भी पड़ जाए, फिर कोई मृत्यु नहीं है। अमृतस्य पुत्रः! तुम सब अमृत पुत्र हो। याद नहीं, सुध नहीं। सुध लानी है।

सुध लाने की प्रक्रिया ध्यान है। और ध्यान शंकराचार्य वाला नहीं कि तन से, मन से, वचन से ध्यान कर रहे हो। ध्यान से मेरा अर्थ है--निर्विचार चित्त की दशा; शून्य, निराकार, निर्विकल्प, जहां सिर्फ होना मात्र रह जाए; न कुछ जानने को बचे, न जानने वाला बचे; जहां सब दुई मिट जाए। और जहां दो मिट गए, एक रहा, वही है परमात्मा का सच्चा अनुभव। वही अनुभव मोक्षदायी है, वही अनुभव मोक्ष है।

दूसरा प्रश्नः ओशो, दुख मेरी नियति हो गया है; आनंद--एक स्वप्न आकाश का। दुख का मूल आधार क्या है? आनंद इतना दुर्लभ क्यों है?

ओशो, अनुकंपा करें और मुझे दुख-निरोध का उपाय समझाएं।

अरविंद मोहन, आनंद हमारा स्वभाव है और दुख हमारा अर्जन। दुख हमारी चेष्टा है, नियति नहीं। आनंद हमारी नियति है; दुख हमारा आयोजन।

चौंकोगे तुम। कहोगे तुम कि क्या हम पागल हैं जो दुख का नियोजन करें? स्वभाव को छोड़ें और स्वभाव के विपरीत कष्ट पाएं? स्वर्ग को त्यागें और नरक में भटकें और भरमें?

लगे बात तुम्हें कितनी ही उलटी, मगर ऐसा ही है। चूंकि आनंद हमारा स्वभाव है, इसीलिए हम उसे भूल जाते हैं। जो पास होता है उसे हम भूल जाते हैं; जो दूर होता है उसकी हमें याद आती है। इसलिए तो प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को भूल गया है। दूसरों के नाम याद हैं, पते याद हैं, टेलीफोन नंबर याद हैं, क्या-क्या याद नहीं! अरे भूगोल, इतिहास, गणित, विज्ञान, क्या-क्या याद नहीं! सिर्फ एक चीज याद नहीं, मैं कौन हूं--इसका कुछ पता नहीं। सारी दुनिया का इतिहास मालूम है, सारे विश्व का विस्तार मालूम है। लोग आकाश में तारे बता देते हैं--किस तारे का क्या नाम है! खुद तारों को पता नहीं, इनको पता है। अपना कुछ पता नहीं। चांद पर जाने की उत्सुकता है, मंगल पर पहुंचने की आकांक्षा है; खुद अपना कुछ पता नहीं।

अरविंद मोहन, दुख किसी की भी नियति नहीं है, लेकिन प्रत्येक ने दुख को नियति बना लिया है। कुछ कारण हैं।

पहला कारण कि स्वभाव से हम आनंद हैं। और जो हम स्वभाव से हैं उसको हम विस्मरण कर जाते हैं, याद करने की जरूरत ही नहीं पड़ती। अगर तुम्हें आईने में अपनी तस्वीर देखनी हो तो जरा दूर खड़े होना होता है। अगर बिल्कुल आईने से नाक लगा कर खड़े हो जाओ तो अपनी तस्वीर भी दिखाई न पड़ेगी। और अगर आंख भी आईने से लगा दो, तब तो बिल्कुल कुछ भी दिखाई न पड़ेगा, आईना दीवाल हो जाएगा। थोड़ा फासला चाहिए। देखने के लिए थोड़ा फासला चाहिए। और हमारा अपने से कोई फासला नहीं। इसलिए हम अपने को ही जानने से वंचित रह जाते हैं।

प्रत्येक बच्चा आनंद की तरह ही पैदा होता है।

तो पहला तो यह मूलभूत कारण है कि स्वयं को जानने के लिए जो थोड़ी सी दूरी चाहिए, वह नहीं है। मछली जैसे सागर में पैदा होती है तो जान ही नहीं पाती कि सागर कहां है, जब तक कि कोई मछुआ उसे पकड़ कर सागर के बाहर न खींच ले। बाहर खींचते ही पता चलता है कि अरे जो खो गया वह सागर था! फिर तड़फती है सागर में जाने को।

मगर मछली को तो सागर के बाहर निकाला जा सकता है, हमें आनंद के बाहर नहीं निकाला जा सकता। कोई मछुआ नहीं निकाल सकता हमें आनंद के बाहर। हम जब दुखी भी हो रहे होते हैं तब भी भीतर आनंद का झरना सतत बहता रहता है। दुख ऊपर ही ऊपर रहता है, ओढ़ा हुआ रहता है, झूठा रहता है।

मैंने सुना, एक राजनेता चुनाव में हार गए। राजनेता थे, और तो कुछ जानते नहीं थे, न पढ़े-लिखे थे, अंगूठा छाप थे। राजनेता होने के लिए अंगूठा छाप होना एक योग्यता है। सब तरह से अयोग्य होना योग्यता है। चुनाव क्या हार गए, बड़ी मुश्किल में पड़ गए। कोई नौकरी न मिले, चपरासी की भी नौकरी न मिले।

भाग्य की बात गांव में सर्कस आया हुआ था, सो सर्कस के मैनेजर से कहा कि भइया, कोई काम पर लगा दो। अरे घोड़ों को नहलाता रहूंगा, गधों को नहलाता रहूंगा। यूं भी जिंदगी घोड़ों और गधों के बीच बीती है। कोई भी काम कर सकता हूं, प्रमाण के लिए इतना काफी है कि दस साल तक संसद का सदस्य रहा हूं। अब इससे बुरा और क्या काम होगा! तुम जो कहो करूंगा; गोबर, लीद, जो भी कहो, सब सफाई कर दूंगा।

मैनेजर ने कहा कि भई, गोबर-लीद वगैरह की सफाई करने वाले आदमी तो हैं; एक काम अगर कर सको। और राजनेता हो, जरूर कर सकते हो।

राजनेता की बांछें खिल गईं। उसने कहा कि तुम बोलो और हुआ। कहो, क्या काम?

सर्कस का मैनेजर थोड़ा तो झिझका, फिर उसने कहा, अब आप मानते नहीं तो बताए देता हूं कि हमारा जो सिंह था वह मर गया है। उसकी खाल हमने निकाल कर रख ली है। उसके भीतर आप घुस जाओ। बस आप टहलते रहना। चारों तरफ सींखचे लगे हैं। आप बस टहलते रहना। और यह टेप रिकार्डर साथ रखो, अंदर। इसमें

आवाज भरी हुई है सिंह की, तो बीच-बीच में दहाड़ लगा देना। बस टेप रिकार्डर का बटन दबा देना, दहाड़ निकल जाएगी, जनता आनंदित हो जाएगी। बस आपका कुल काम इतना है।

राजनेता ने कहा, इसमें क्या दिक्कत है। अरे यही तो हम जिंदगी भर करते रहे। तरह-तरह की खालें ओढ़ीं, क्या-क्या नाटक नहीं किए, कैसी-कैसी नौटंकी नहीं रची। और हम क्या बोलते थे, अरे टेप रिकार्डर ही बोलता था! सेक्रेटरी तैयार करता था, हम भाषण देते थे। यह चलेगा। यह काम तो हमारा अभ्यास का है। यह तो बिल्कुल ठीक है। योग्य हमारे काम मिल गया।

नेता बड़े खुश हुए। घुस गए सिंह की खाल में। आनंद भी बहुत आया। बार-बार बटन दबाएं और सिंह की गर्जना करें। बच्चे एकदम रोने लगें, स्त्रियां बेहोश हो जाएं, पुरुषों की छाती दहल जाए। नेता को बड़ा आनंद आए। आनंद ही यह है राजनीति का। और क्या आनंद है, कि लोगों की छाती दहल जाए।

लेकिन तभी देखा कि कठघरे का दरवाजा खुला और एक दूसरा सिंह भीतर घुसा। उसको देखते से ही नेता भूल गए, चौकड़ी भूल गए, एकदम दो पैर पर खड़े हो गए। जनता तो दंग रह गई। अरे आदमी, स्त्रियों की तो छोड़ो, पुरुष तक बेहोश होने लगे कि हद हो गई! सिंह, और दो पैर पर खड़ा है! और न केवल दो पैर पर खड़ा है, चिल्ला रहा है--अरे बचाओ! मारे गए! बचाओ! मुझे नहीं करना यह काम! यह किस तरह का सिंह है?

तभी दूसरा सिंह बोला, अरे चुप रे बदतमीज! तू क्या समझता है, तू ही चुनाव हारा है! हम भी चुनाव हारे हैं।

एक तो स्वभाव को भूलना सहज। दूसरा, तुम जिनके बीच पैदा होते हो वे सब दुख से भरे हुए लोग। वे तरह-तरह की खालें ओढ़े हुए हैं। क्या-क्या बने हुए हैं। बच्चा पैदा ही होते से अपने को पाता है नौटंकी में। क्या-क्या खेल उसे नहीं देखने पड़ते। मां देखो तो दुखी है, बाप देखो तो दुखी है, भाई देखो तो दुखी है। जो देखो वह दुखी है। हर आदमी जहां है वहीं दुखी है। चारों तरफ दुख ही दुख दिखाई पड़ता है। एक बात उसे समझ में आ जाती है कि यहां दुखी होना ही जीने का ढंग है। यही जीवन की प्रणाली है, यही जीवन का दर्शन है।

और भी उसे एक बात समझ में आ जाती है कि सुखी होने को लोग पसंद नहीं करते। अगर तुम दुखी हो तो सब सहानुभूति बताते हैं; अगर तुम सुखी हो तो लोग ईर्ष्या से भर जाते हैं। सुखी आदमी बरदाश्त नहीं किया जाता। दुखी आदमी को लोग खूब आदर देते हैं। दुखी आदमी में एक खूबी है, कि वह हरेक की सहानुभूति का पात्र होता है। और जब भी किसी को तुम मौका देते हो सहानुभूति दिखलाने का, तो उसको मजा आता है, उसके अहंकार को तृप्ति मिलती है--कि हम ऊपर, तुम नीचे; हम देने वाले, तुम लेने वाले।

तो बच्चा बहुत जल्दी यह तरकीब, यह राजनीति, यह कूटनीति सीख लेता है। फिर वह दुख का खेल करने लगता है। भीतर से हंसी भी आ रही हो तो भी रोकता है। क्योंकि जब भी खिलखिलाता है तभी डांटा जाता है। जब भी रोता है, तभी प्यार किया जाता है। जब भी हंसता है, तभी दुत्कारा जाता है। जब भी खेलता है, उछलता है, कूदता है, नाचता है--तभी डांट! कि बंद कर! बैठ एक जगह! शांति से बैठ! और जब उदास बैठा हो तो मां पुचकारती है, बाप पुचकारता है। कोई मिठाई देता है, कोई खिलौना पकड़ाता है। मुहल्ले वाले तक, आस-पड़ोस के लोग भी गोबर-गणेश बच्चों को, बैठे हैं उदास तो थपकी मारते हैं कि बेटा, क्या हो गया? काहे इतने उदास? कौन सी चिंता तुम्हें सता रही है? और सहानुभूति में एक रस है। मजा आता है। ऐसा लगता है लोग प्रेम कर रहे हैं। इस तरह धीरे-धीरे दुख हमारे जीवन की भाषा हो जाती है।

तुम पूछते हो, अरविंद मोहनः "दुख मेरी नियति हो गया है।"

हो नहीं गया है, बना लिया है।

"और आनंद एक स्वप्न--आकाश का।"

दूर नहीं है आनंद। अगर होता स्वप्न आकाश का तो आदमी पहुंच गया होता। उसने कुछ न कुछ आयोजन कर लिया होता। आनंद है तुम्हारे भीतर अंतर-आकाश में। और तुम दौड़ रहे हो बाहर। और बाहर दुख ही दुख पाओगे, क्योंकि सुख भीतर है। सुख तुम हो। लेकिन खुद को तो पाने की कोई आकांक्षा नहीं है।

अभी भी तुम कह रहे होः "दुख-निरोध का उपाय समझाएं।"

अभी भी तुम यह नहीं कह रहे हो कि मैं स्वयं को कैसे जानूं यह बताएं। मगर वही दुख-निरोध का उपाय है। एकमात्र दुख-निरोध का उपाय हैः स्वयं को जान लो।

जिंदगी के मतलब को हर कोई समझ लेगा

कांच के खिलौनों को तोड़ कर अगर रख दो

मगर कांच के खिलौने हैं--धन, पद, प्रतिष्ठा। उनमें तुम ऐसे उलझे हो कि उनको बचाते हो; तोड़ने की तो बात दूर, सम्हालते हो। खुद टूट जाओ भला, मगर खिलौने न टूट पाएं। खुद मिट जाओ भला, मगर खिलौने न मिट पाएं। लोग अपने को कुर्बान कर देते हैं खिलौनों पर। खिलौनों के लिए आदमी क्या-क्या करने को राजी नहीं हो जाता!

मोरारजी देसाई ने कुछ दिनों पहले कहा, किसी ने पूछा पत्रकार-संसद में कि आपको अगर फिर से प्रधानमंत्री बनना पड़े तो आप राजी हैं? उन्होंने कहा कि अगर जनता कहे। अगर जनता कहे तो मैं गधे पर भी बैठने को राजी हूं।

मगर जनता भी खूब है। जनता यह भी नहीं कह रही कि भइया, गधे पर ही बैठो! जनता बिल्कुल चुप ही है। जनता कुछ बोलती ही नहीं। क्योंकि जनता जानती है कि इनसे कहो गधे पर बैठो, ये बैठ तो जाएंगे, फिर उतरेंगे नहीं। आखिर गधे का भी तो कुछ विचार करना पड़ता है। चढ़ गए तो चढ़ गए। बामुश्किल तो उतरे हैं। जनता यह भी नहीं कह रही है कि गधे पर बैठ जाओ। वे इसके लिए भी राजी हैं।

खिलौनों का मोह देखते हो? बोले कि प्रधानमंत्री की तो बात छोड़ो, गधे पर बैठने को भी अगर लोग कहें तो मैं मौका नहीं छोडूंगा। ऐसा खिलौनों का मोह!

लेकिन अगर सच में ही, अरविंद मोहन, तुम चाहते हो कि दुख से मुक्त हो जाओ तो खिलौनों को मोह छोड़ना पड़ेगा। गधे की तो बात छोड़ो, जनता अगर कहे हाथी पर भी बैठो, तो कहना कि नहीं बैठना। अपनी मौज, जहां बैठना है वहां बैठेंगे, क्यों बैठें हाथी पर!

मगर अरविंद मोहन ने भी सुना होगा हाथी नाम, तो मन में गुदगुदी आ रही होगी कि हाथी पर तो... गधे पर तो ठीक है कि न बैठें, मोरारजी भाई को बैठ जाने दो, मगर हाथी पर, और बैंड-बाजा बज रहा हो, और फूलमाला तैयार हो, और स्वागत-द्वार बने हों, तो फिर सोचेंगे, दुख-निरोध कल कर लेंगे, ऐसी क्या जल्दी है! हाथी कल आया, नहीं आया। जनता ने कल कहा, नहीं कहा। अरे लोगों का क्या भरोसा! हवा के रुख बदल जाते हैं, मौसम बदल जाते हैं। आज संगी-साथी हैं, कल कोई संगी-साथी नहीं।

अगर तुम खिलौनों का मोह छोड़ने को राजी हो तो दुख से अभी छूट सकते हो। और कोई दुख नहीं है, खिलौनों को पकड़ने में दुख है। क्योंकि खिलौनों से कुछ निकलता भी नहीं और डर भी लगा रहता है कि कहीं टूट न जाएं। कोई रस भी नहीं मिलता। जैसे बच्चों को उनकी माताएं झूठे रबर के स्तन थमा देती हैं और बच्चे उनको चचकोरते रहते हैं--इसी आशा में कि शायद, आज नहीं कल, कल नहीं परसों, कभी न कभी, इस जन्म में नहीं अगले जन्म में दूध निकलेगा। चचकोरे जाओ, चचकोरे जाओ। चचकोरते-चचकोरते सो जाते हैं। वह जो झूठा स्तन रबर का मुंह में दे दिया है, वह भावातीत ध्यान का काम करता है। चचकोरते-चचकोरते एकदम मंत्र ही मंत्र, और एक ही मंत्र, चचकोरो, फिर चचकोरो... नमोकार-नमोकार, या राम-राम जपे जाओ, जपे जाओ... आखिर बच्चा थक जाता है और सो जाता है।

तुम्हारे खिलौने ज्यादा से ज्यादा तुम्हें थोड़ी देर को सुला दें तो बहुत। मगर वह भी ज्यादा देर नहीं। क्योंकि जल्दी ही तुम्हें समझ में आ जाता है कि ये खिलौने झूठे हैं। छोड़ते भी नहीं बनता। क्योंकि और क्या

पकड़ें? टूटने का भी डर, चिंता। लेकिन जब तक यह हिम्मत न हो तब तक आनंद का अनुभव नहीं हो सकता। आनंद तुम्हारे भीतर है।

सियाह रात है साया तो हो नहीं सकता
वो कौन है जो मेरे साथ-साथ चलता है

माना कि बहुत अंधेरी रात है, इसलिए एक बात पक्की है कि साथ में साया तो नहीं हो सकता, छाया तो नहीं बन सकती। मगर कौन है जो सदा साथ चल रहा है?

तुम्हारे भीतर कौन है जो देख रहा है कि दुख है? जो देखता है कि दुख है, वह दुख नहीं, वह तुम्हारा चैतन्य है। वह देखने वाला, वह द्रष्टा ही द्वार है, जहां से दुख से मुक्ति हो सकती है।

बुल्लेशाह का वचन सुनो--

फिकर गया सईयो मेरियो नी, मैं तां अपने आप नू सही कीता।
कूड़ी देह सिओं नेहों चुकाया मैं खाक छान के लाल नू फोल लीता।
देख धुएं धौलरे जग सारा, सुट पाया ही जीआ तो हार जीता।
बुल्लाशाह आनंद अखंड सदा लख अपने आप आबिहयात पीता।

प्यारा वचन है। कहते हैंः "हे मेरी सखियो, मेरा फिक्र गया। मेरी चिंता गई, मेरा विचार गया। मैंने तो अपने आप को सही कर लिया। मैंने इस कूड़ी देह में से नेह निकाला। मैंने इस कूड़ी देह में से नेह निकाला और खाक को छान कर लाल को ढूंढ लिया। इस धुएं से भरे जगत में मैंने धवल-उज्ज्वल जगत पा लिया।"

और अब आता है बड़ा प्यारा वचनः "जिया छोड़ दिया तो जीया पा लिया।"

यह अपने दिल की बातों को छोड़ दिया, जिया छोड़ दिया, जी छोड़ दिया।

"जिया छोड़ दिया तो जीया पा लिया।"

तो उसको पा लिया जो परम जीवन है।

"और हार भी फिर जीत हो गई।"

"बुल्ले कहते हैंः अब सदा अखंड आनंद है और मैंने अपने आपको देख कर आबे-हयात, जीवन-रस पी लिया है।"

अपने आपको देख कर आबे-हयात, जीवन-रस पी लिया है, अमृत पी लिया है।

रसो वै सः। तुम्हारे भीतर वह रसधार बह रही है--वह जीवन-रस, आबे-हयात। लेकिन तुम जब तक बाहर भटकते रहोगे तब तक भीतर कैसे देखोगे? जरा बाहर से आंख बंद करो, अरविंद मोहन, और आंख भीतर खोलो। बहुत दौड़े बाहर; अब थोड़ा ठहरो। बाहर दौड़ना पड़ता है; भीतर ठहरना पड़ता है। बाहर विचार काम आते हैं; भीतर निर्विचार काम आता है। बाहर लक्ष्य चाहिए; भीतर कोई लक्ष्य नहीं--सिर्फ शून्य, सिर्फ मौन। बाहर तर्क है, विज्ञान है; भीतर ध्यान है, समाधि है, सुधिया! और तब जिंदगी बदल जाती है। जरा सी नई नजर की जरूरत है।

मुझे दे दे--

रसीले ओंठ, मासूमाना पेशानी, हसीं आंखें
कि मैं इक बार फिर रंगीनियों में गर्क हो जाऊं
मेरी हस्ती को तेरी इक नजर आगोश में ले ले
हमेशा के लिए इस दाम में महफूज हो जाऊं
जिया-ए-हुस्न से जुल्माते-दुनिया में न फिर आऊं
गुजश्ता हसरतों के दाग मेरे दिल से धुल जाएं
मैं आने वाले गम की फिक्र से आजाद हो जाऊं
मेरे माजी व मुस्तकबिल सरासर महव हो जाएं
मुझे वो इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

मुझे दे दे--

मुझे वो इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

बस इतनी सी बात चाहिए--एक अमृत को देखने वाली आंख, एक जाविदानी सी नजर!

मुझे दे दे--

मुझे वो इक नजर, इक जाविदानी सी नजर दे दे

कुछ और नहीं चाहिए--अमृत को देखने वाली आंख। उसे ही मैं ध्यान कह रहा हूं। ध्यान के अतिरिक्त आनंद से परिचित होने का कोई उपाय नहीं, क्योंकि ध्यान स्वभाव से परिचय है। और जिसने स्वयं को जाना, सब जाना। जिसने स्वयं को जीता, सब जीता। और जो स्वयं से वंचित रह गया है, उसके लिए सिवाय दुखों के और कुछ भी नहीं है।

आज इतना ही।

पांचवां प्रवचन

अहंकार और समर्पण

पहला प्रश्नः ओशो, अपने अहंकार को पूरी तरह और सदा के लिए मिटाने का सबसे तेज और सबसे खतरनाक ढंग क्या है?

रिचर्ड ऐरिख, अहंकार को मिटाने का कोई ढंग ही नहीं है--न धीमा, न तेज; न सरल, न कठिन; न आसान, न खतरनाक। अहंकार हो तो मिटाया जा सकता है। अहंकार है ही नहीं; इसलिए जो मिटाने चलेगा वह और भी बना लेगा। मिटाने की कोशिश में ही अहंकार निर्मित होता है।

इसीलिए तथाकथित संतों-महात्माओं में जैसा अहंकार पाया जाता है वैसा साधारणजनों में नहीं पाया जाता। साधारणजन का अहंकार भी साधारण होता है। जो अपने को पवित्र मानते हैं, उनका अहंकार भी उतना ही पवित्र हो गया। और पवित्र अहंकार ऐसा ही है जैसा पवित्र जहर, शुद्ध जहर, बिना मिलावट का, खालिस जहर। मिटाने की चेष्टा अज्ञानपूर्ण है।

तुम्हारा प्रश्न भी विचारणीय है। शायद तुमने सोचा भी न हो कि तुमने क्या पूछा है।

तुम कहते होः "अपने अहंकार को... ।"

जैसे कि अहंकार के अतिरिक्त भी तुम्हारा कोई अपनापन है! अहंकार ही तो इस बात की भ्रांति है कि मैं हूं, मेरा है। हम भ्रांतियों पर भ्रांतियां खड़ी कर देते हैं। अहंकार भी मेरा। इसका अर्थ हुआः एक अहंकार की जगह अब दो अहंकार खड़े हो गए; अहंकार के पीछे एक अहंकार और आ गया। यूं चलोगे तो कतार लग जाएगी अंतहीन।

पूछा है तुमनेः "अपने अहंकार को... ।"

फिर पूछने में भी बहुत अहंकार है।

"पूरी तरह... ।"

कम से राजी न होओगे। थोड़े-बहुत से राजी न होओगे। पूर्णरूपेण! अहंकार पूर्णतावादी होता है। अहंकार के भीतर पूर्णता का रोग होता है। हर काम पूर्ण होना चाहिए। जितना पूर्ण हो उतना अहंकार को प्राण मिलता है। शून्य हो तो अहंकार की मृत्यु हो जाती है। पूर्ण हो तो अहंकार को बल आ जाता है, पोषण मिलता है, भोजन मिलता है, प्राण-प्रतिष्ठा होती है।

तुम कहतेः "अपने अहंकार को पूरी तरह और सदा के लिए... ।"

इन एक-एक शब्दों के पीछे अहंकार स्पष्ट खड़ा है। सदा के लिए! अनंत काल के लिए! इससे कम में न चलेगा। अहंकार हमेशा असंभव की मांग में जीता है। क्योंकि न होगी मांग पूरी और न अहंकार के अंत का क्षण निकट आएगा। अहंकार मांगता है असंभव को, ताकि तुम चलते ही रहो, चलते ही रहो; कभी मंजिल आएगी नहीं, न अहंकार की मृत्यु होगी।

"सदा के लिए"--कहते हो--"अहंकार को मिटाने का सबसे तेज... ।"

वहां भी तुम पीछे नहीं रहना चाहते कि कोई और तुमसे आगे निकल जाए, कि कोई तुमसे भी तेजी से अहंकार को समाप्त कर दे। तुम सबसे तेज विधि चाहते हो, ढंग चाहते हो।

इतने से भी अहंकार मानता नहीं। सबसे खतरनाक ढंग भी होना चाहिए। अहंकार हमेशा उस चुनौती को स्वीकार करता है, जो अति दुर्गम हो। गौरीशंकर पर चढ़ना यूं व्यर्थ है। सिवाय इसके कि चढ़ने वाले के अहंकार की तृप्ति हो, अन्यथा वहां पाने को कुछ भी नहीं। चांद पर जाकर कुछ भी नहीं मिलता। लेकिन चांद पर चलने

वाला मैं पहला आदमी हूं और मैंने सबसे खतरनाक यात्रा की है अब तक, जो किसी ने कभी नहीं की थी--इतनी ही तृप्ति है।

तुम्हारा पूरा प्रश्न शुरू से लेकर अंत तक अहंकार की छाया से दबा है। और फिर तुम इसे मिटाना चाहते हो। लेकिन क्यों? क्योंकि अहंकार को मिटाना अहंकार को भरने का अति सूक्ष्म उपाय है। तुम यह अहंकार भी संवार लेना चाहते हो कि देखो, जिसे बड़े-बड़े न कर पाए, संत और महात्मा हारे, मैं भी उस अहंकार को मिटाने में समर्थ हुआ! उस अहंकार को, जिसे मुश्किल से कोई मिटा पाया है, मैंने मिटा कर दिखा दिया है!

मगर यही मैं, यही दिखाने का प्रदर्शन का आग्रह तो अहंकार है, और अहंकार क्या है?

इसलिए रिचर्ड ऐरिख, थोड़े और तरह से सोचें। मिटाने की भाषा ही गलत है। यह ऐसे ही है जैसे कोई अंधकार को मिटाना चाहे--लड़े, घूंसेबाजी करे, तलवार चलाए, चीख-पुकार मचाए, धक्के दे। लेकिन अंधकार यूं नहीं मिटता। और जब बहुत लड़ेगा-झगड़ेगा तो थकेगा; थकेगा, गिरेगा। और जब गिरेगा, थकेगा, हारेगा, तो स्वभावतः यही तर्क की निष्पत्ति होगी कि अंधकार बहुत सबल है, जीता नहीं जाता; लाख उपाय करो, फिर भी जीत संभव नहीं होती।

तर्कयुक्त होगा तुम्हारा निष्कर्ष, लेकिन फिर भी भ्रांत, फिर भी गलत। अंधकार सबल नहीं है। अंधकार का कोई अस्तित्व ही नहीं है, बल तो कैसे होगा? तुम जो हारे, अपनी नासमझी से हारे। तुम जो हारे, वह इसलिए हारे कि तुम उससे लड़े जो था ही नहीं। "नहीं" से जो लड़ेगा उसकी हार सुनिश्चित है। "नहीं" को तो हराया नहीं जा सकता। जो है ही नहीं उसे कैसे हराओगे?

अगर अंधकार होता तो हम कोई रास्ता निकाल लेते। बांध लेते पोटलियों में, फेंक देते गांव के बाहर। तलवारों से काट कर टुकड़े-टुकड़े कर देते। संघर्ष लेते, युद्ध छेड़ते। मगर ये कोई तरकीबें कारगर नहीं होंगी। तलवार लेकर लड़ोगे तो संभावना यही है कि अपने को ही घाव कर लोगे। दीवालों से टकरा जाओगे अंधकार से लड़ने जाओगे तो। सिर फोड़ लोगे अपना।

अंधकार से लड़ा नहीं जाता, अंधकार को मिटाया भी नहीं जाता। यह भाषा वहां काम नहीं आती। दीया जलाना होता है। और दीया जलते ही, ऐसा मत सोचना कि दीये के जलने से अंधकार मिट जाता है; अंधकार तो था ही नहीं, सिर्फ प्रतीत होता था; दीये के जलने से प्रतीति मिट जाती है, आभास मिट जाता है। जैसे रस्सी में सांप देखा हो और फिर दीया जलाया, तो सांप मिट जाता है ऐसा तो न कहोगे; इतना ही कहोगे कि रस्सी अंधेरे में सांप मालूम पड़ती थी, थी नहीं; अब दीया जल गया तो देख लिया कि रस्सी रस्सी है, सांप नहीं है। न तो सांप मरा, न मारा गया, न मिटा, न मिटाया गया--था ही नहीं, अब भी नहीं है। सिर्फ तुमने एक स्वप्न देखा था, तुम्हें एक आभास हुआ था, एक भ्रांति हुई थी।

अंधकार प्रकाश का अभाव है। इसे बहुत गहराई से समझ लेना। अभाव है प्रकाश का, इसलिए प्रकाश की मौजूदगी होते ही अंधकार नहीं पाया जाता है।

अहंकार आत्मबोध का अभाव है, आत्मस्मरण का अभाव है। अहंकार अपने को न जानने का दूसरा नाम है। इसलिए अहंकार से मत लड़ो। अहंकार और अंधकार पर्यायवाची हैं। हां, अपनी ज्योति को जला लो। ध्यान का दीया बन जाओ। भीतर एक जागरण को उठा लो। भीतर सोए-सोए न रहो। भीतर होश को उठा लो। और जैसे ही होश आया, चकित होओगे, हंसोगे--अपने पर हंसोगे। हैरान होओगे। एक क्षण को तो भरोसा भी न आएगा कि जैसे ही भीतर होश आया वैसे ही अहंकार नहीं पाया जाता है। न तो मिटाया, न मिटा, पाया ही नहीं जाता है।

इसलिए मैं तुम्हें न तो सरल ढंग बता सकता हूं, न कठिन; न तो आसान रास्ता बता सकता हूं, न खतरनाक; न तो धीमा, न तेज। मैं तो सिर्फ इतना ही कह सकता हूंः जागो! और जागने को ही मैं ध्यान कहता हूं।

आदमी दो ढंग से जी सकता है। एक मूर्च्छित ढंग है, जैसा हम सब जीते हैं। चले जाते हैं यंत्रवत, किए जाते हैं काम यंत्रवत, मशीन की भांति। थोड़ी सी परत हमारे भीतर जागी है, अधिकांश हमारा अस्तित्व सोया पड़ा है। और वह जो थोड़ी सी परत जागी है, वह भी न मालूम कितनी धूल-धवांस, कितने विचारों, कितनी कल्पनाओं, कितने सपनों में दबी है।

सबसे पहला काम हैः वह जो थोड़ी सी हमारे भीतर जागरण की रेखा है, उसे सपनों से मुक्त करो, उसे विचारों से शून्य करो। उसे साफ करो, निखारो, धोओ, पखारो। और जैसे ही वह शुद्ध होगी वैसे ही तुम्हारे हाथ में कीमिया लग जाएगी, राज लग जाएगा, कुंजी मिल जाएगी। फिर जो तुमने उस थोड़ी सी पर्त के साथ किया है वही तुम्हें उसके नीचे की पर्त के साथ करना है। फिर और नीचे की पर्त, फिर और नीचे की पर्त... । धीरे-धीरे तुम्हारा अंतर्जगत पूरा का पूरा आलोक से, आभा से मंडित हो जाएगा। एक ऐसी घड़ी आती है जब भीतर आलोक होता है। और जहां आलोक हुआ भीतर, अंधकार नहीं पाया जाता है। अंधकार नहीं अर्थात अहंकार नहीं।

पुरानी कहानी है कि अंधकार ने परमात्मा से प्रार्थना की थी कि तुम्हारा सूरज क्यों मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है? रात विश्राम भी नहीं कर पाता हूं कि सुबह से आकर झकझोर देता है। फिर दिन भर भगाता है, थका मारता है। मैंने इसका कुछ कभी बिगाड़ा नहीं। याद भी नहीं आता कि इससे मेरा कभी मिलना भी हुआ हो। कभी आमना-सामना नहीं हुआ। मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। लेकिन यह कैसा अन्याय हो रहा है? यह अन्याय अब रोका जाना चाहिए। हर चीज की एक सीमा होती है। बरदाश्त की भी मेरी सीमा है।

बात परमात्मा को भी जंची। सूरज को बुलवाया। सूरज से कहा कि क्यों तू अंधेरे के पीछे पड़ा है? क्या उसने तेरा बिगाड़ा है?

सूरज ने कहा, अंधेरा! मेरी तो कोई मुलाकात नहीं। यह तो शब्द भी मैं पहली दफे सुन रहा हूं। अंधेरा कहां है? मैंने कभी देखा नहीं। और अगर उसको कोई शिकायत है मुझसे, अगर जाने-अनजाने मुझसे कोई भूल हुई हो, तो उसे मेरे सामने मौजूद करो। यह कैसा न्याय है कि जिसने शिकायत की है वह सामने मौजूद नहीं? वह मेरे सामने शिकायत करे! मैं जरा उसका चेहरा तो देखूं, मैं जरा उसे पहचान तो लूं। कौन है शिकायत करने वाला?

और कहते हैं इस बात को बीते भी अरबों-खरबों वर्ष हो गए। परमात्मा बहुत कोशिश करने में लगा है कि अंधकार को सूरज के सामने मौजूद करे। अंधकार जब आता है तब सूरज नहीं। आता ही तब है जब सूरज नहीं होता। और जब सूरज होता है तो अंधकार आता नहीं। और जब तक दोनों सामने मौजूद न हों, परमात्मा फैसला भी कैसे दे?

ऐसे तो हम सुनते हैं कि परमात्मा के लिए कुछ भी असंभव नहीं, लेकिन यह कहानी बताती है कि यह बात असंभव है। परमात्मा भी चाहे तो अंधकार को और सूरज को साथ-साथ खड़ा नहीं कर सकता, आमने-सामने खड़ा नहीं कर सकता। सूरज होगा तो अंधकार नहीं हो सकता। और अगर अंधकार को सामने खड़ा करना है तो सूरज को निमंत्रण नहीं देना होगा; सूरज को दरवाजे के बाहर ही रोक रखना होगा; द्वार-दरवाजे-खिड़कियां सब बंद कर देनी होंगी, रंध्र बंद कर देने होंगे; कहीं से किरण भी आ गई तो अंधेरा भाग खड़ा होगा।

मेरे जीवन-दृष्टिकोण में अहंकार को न तो मिटाना है, न गिराना है, न जीतना है--सिर्फ समझना है; सिर्फ जाग कर साक्षी-भाव से अहंकार को देखना है। और तब चमत्कारों का चमत्कार घटित होता है। इधर तुमने देखा, उधर अहंकार नहीं। इधर तुम्हारी आंख खुली, उधर अहंकार समाप्त। समाप्त भी मैं कह रहा हूं मजबूरी में, क्योंकि भाषा उपयोग करनी पड़ती है। अन्यथा समाप्त कहना भी उचित नहीं; क्योंकि था ही नहीं, कभी नहीं था।

अहंकार से लेकिन लोग लड़ने की बात सिखाते रहे हैं। रिचर्ड ऐरिख ने जो पूछा है, वह इसीलिए पूछा है, क्योंकि सारे धर्मशास्त्र और तथाकथित धार्मिक गुरु और संत और महात्मा यही समझाते रहे हैं लोगों से कि लड़ो अहंकार से! मारो अहंकार को! दबा दो, इसकी छाती पर बैठ जाओ! इसको जीतना होगा, विजेता बनो!

और यही कार्य जारी रहा है सदियों से, और परिणाम हमारे सामने है। किसी को धन का अहंकार है, किसी को पद का अहंकार है, किसी को प्रतिष्ठा का, किसी को ज्ञान का, किसी को तप का और किसी को यहां तक भी निर-अहंकारी होने का--कि मैं तो निर-अहंकारी हूं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं! मगर अगर जरा कुरेदोगे तो पाओगे कि वहां भी अहंकार उसी तरह मौजूद है, जिस तरह राख के भीतर अंगारा दमकता हो। राख के कारण धोखे में मत आ जाना।

और फिर लोग अहंकार को बचाने की क्या-क्या तरकीबें निकालते हैं!

तुमने ईसप की कहानी तो सुनी ही है। लोमड़ी बहुत उछली-कूदी। अंगूर के झुक्के बड़े प्यारे थे, सुबह के सूरज में बहुत चमकते थे, बहुत रस भरे थे। लोमड़ी भूखी भी थी, अभी सुबह का नाश्ता भी नहीं किया था। इधर भूख, इधर सूरज की रोशनी में चमकते हुए अंगूर, रस भरे अंगूर, अंगूरों की गंध हवा में! आकर्षण बहुत था। मगर मजबूरी भी बहुत थी, झुक्के बहुत दूर थे। लोमड़ी उछली-कूदी, मगर झुक्कों तक न पहुंच सकी, न पहुंच सकी। बहुत चेष्टा की, बार-बार गिरी, हर बार और भी प्रगाढ़ प्रयत्न किया, और उतनी ही वापस जोर से जमीन पर गिरी, चोट खाई। धूल-धवांस झाड़ कर खड़ी हो गई, गौर से देखा; लगा कि नहीं, इतनी अपनी छलांग नहीं। चारों तरफ देखा--कोई देख तो नहीं रहा है?

एक खरगोश छिपा हुआ झाड़ी में देख रहा था। उसने कहा, चाची, क्या बात है?

लोमड़ी ने अकड़ कर कहा, कोई भी बात नहीं, अंगूर खट्टे हैं! पक जाएं, फिर देखूंगी।

पहुंची ही नहीं अंगूरों तक और अंगूर खट्टे हो गए! आदमी ऐसे तर्क अपने चारों तरफ खोज लेता है। जो धन तक नहीं पहुंच पाते वे धन को गाली देने लगते हैं। ये धन को गाली देने वाले लोग कौन हैं? ये वे ही लोग हैं जो धन तक नहीं पहुंच सके। ये पद को गाली देने वाले लोग कौन हैं? ये वे ही लोग हैं जो पद तक नहीं पहुंच सके। इनकी गालियों में भी कहीं न कहीं धन और पद की आकांक्षा छिपी हुई है। कहीं गहरे में अंगूर खट्टे हैं।

अभी कुछ दिनों पहले भारत के राष्ट्रपति संजीव रेड्डी ने एक वक्तव्य दिया था। वक्तव्य था कि मैं राष्ट्रपति हुआ, इसमें मैंने कोई प्रयास नहीं किया; यह सौभाग्य तो परमात्मा के प्रसाद से मुझे मिला है।

जिंदगी भर इसी की कोशिश करते रहे, यह तो जानी-मानी बात है। संजीव रेड्डी के राष्ट्रपति बनने के मामले को लेकर ही उन्नीस सौ उनहत्तर में कांग्रेस विभाजित हुई, दो हिस्सों में टूटी। उसका ही बदला फिर उन्हें राष्ट्रपति बना कर लिया गया। और अभी यह कुछ ही दिन पहले उन्होंने यह बात कही कि यह सौभाग्य मुझे परमात्मा की तरफ से मिला है।

लेकिन अब एक बात साफ है कि दुबारा तो राष्ट्रपति नहीं हो सकेंगे। क्योंकि जिन लोगों ने राष्ट्रपति बनाया था वे तो मिट्टी में मिल गए। वह तो सिर्फ एक आंधी थी जो गई। अब उस आंधी के कहीं कोई निशान भी नहीं बचे। अब दुबारा तो राष्ट्रपति नहीं हो सकते हैं। इसलिए दो-तीन दिन पहले उन्होंने वक्तव्य दिया कि मैं राजनीति की गंदगी से बहुत ऊब गया हूं, मैं दोबारा राष्ट्रपति नहीं होना चाहता हूं। किसी तरह मेरे राष्ट्रपति का यह सत्र पूरा हो जाए कि फिर मैं यह पद का त्याग करके गांव में जाकर किसान का सीधा-सादा जीवन व्यतीत करूंगा।

अब इसमें कई बातें सोचने जैसी हैं।

गांव में किसान का सीधा-सादा जीवन व्यतीत करने से कौन तुम्हें रोक रहा था? किसने तुम्हें कहा था गांव का किसान का सीधा-सादा जीवन छोड़ो? जिंदगी भर राष्ट्रपति पद की दौड़ के पीछे लगे रहे और अब गांव का सीधा-सादा जीवन व्यतीत करना है! अभी कुछ ही दिन पहले यह परमात्मा ने सौभाग्य दिया था राष्ट्रपति होने का और अब राजनीति गंदी हो गई! जिंदगी भर राजनीति में रह कर यह पहचान न आई कि राजनीति

गंदी है? अब अचानक पहचान आई कि राजनीति गंदी है; मुझे इस गंदगी में नहीं रहना। जिंदगी भर राजनीति में रह कर यह पता न चला? हद दर्जे के अंधे मालूम होते हैं! हद दर्जे की मूर्च्छा मालूम होती है! यह अब पता चला कि राजनीति गंदगी से भरी है?

और अब कह रहे हैं कि यह सत्र पूरा हो जाए।

क्यों? सत्र क्यों पूरा हो जाए? अगर यह बात दिखाई ही पड़ गई कि राजनीति गंदी है, जब तुम्हें दिखाई पड़ गया कि यह गड्ढा है, तो छलांग लगाओ, बाहर हो जाओ! कौन रोकता है? सच तो यह है कि तुम छलांग लगा कर बाहर होओगे तो लोग प्रसन्न ही होंगे, क्योंकि किसी और को राष्ट्रपति बनने का परमात्मा सौभाग्य देगा।

अभी सौभाग्य था, वह परमात्मा ने दिया था। और अब दुर्भाग्य हो गया! तो परमात्मा ने दुर्भाग्य दिया था, राजनीति की गंदगी में सिरमौर बना दिया था! तो इसको परमात्मा का प्रसाद क्यों कहा था? और तिरुपति के मंदिर में जाकर पूजा-अर्चना के थाल क्यों चढ़ाए थे? अगर यह सौभाग्य था तो गंदगी कैसे हो गई? और अगर यह परमात्मा ने प्रसाद दिया था तो आज अचानक इसको छोड़ कर तुम गांव का सीधा-सादा जीवन व्यतीत करना चाहते हो? तुम परमात्मा से भी ज्यादा समझदार मालूम होते हो! परमात्मा ने राष्ट्रपति बनाया और तुम गांव के सीधे-सादे किसान बनना चाहते हो! परमात्मा के खिलाफ काम करने का इरादा है? और फिर भी यह सत्र पूरा हो जाए तब।

यह बात समझ के बाहर है, कि किसी को कैंसर की बीमारी हो और वह कहे कि यह सत्र पूरा हो जाए राष्ट्रपति का, तब इलाज करवाऊंगा। अरे जब पता चलेगा कि यह बीमारी है, तत्क्षण इलाज करवाना होगा। अब यह साल, दो साल प्रतीक्षा क्या करनी? साल, दो साल का भरोसा क्या, कल का भरोसा नहीं है। यह बात देखते हो--सत्र पूरा होने की बात! साफ है, राष्ट्रपति तो रहना है, लेकिन सत्र पूरा होने के बाद दोबारा होने का तो उपाय नहीं, तो यह मजा भी ले लेना उचित है कि मैंने तो पहले ही कह दिया था कि मुझे राजनीति में अब कोई रस नहीं है, यह तो गंदगी है! मैं तो खुद ही छोड़ रहा हूं! अंगूर खट्टे हैं!

सत्र पूरा होने के बाद तुम्हें चुन कौन रहा है? कोई चुनने वाला तो दिखाई पड़ता नहीं। तब तुम त्याग करोगे जब तुम्हें कोई चुनने वाला नहीं होगा? जब तुम्हें कोई पुनः राष्ट्रपति बनाने वाला नहीं होगा, तब तुम अंगूर खट्टे हैं कह कर विदा हो जाओगे। तब तुम धूल झाड़ लोगे। फिर तिरुपति के मंदिर चले जाना और कहना, हे प्रभु, तूने भी खूब बोध दिया, बड़ा तेरा प्रसाद है कि गांव का सीधा-सादा किसान बना दिया!

तो परमात्मा का प्रसाद तो इस देश के सभी लोगों पर मालूम पड़ता है, सिर्फ संजीव रेड्डी को छोड़ कर, क्योंकि बाकी सब को तो वह सीधा-सादा किसान बनाए हुए है, किसी को सीधा-सादा मजदूर बनाए हुए है, किसी को सीधा-सादा भिखारी बनाए हुए है। अट्ठानबे प्रतिशत लोगों को तो प्रसाद ही प्रसाद मिल रहा है। ये दो प्रतिशत अभागे हैं--किसी को धन है, किसी को पद है, किसी को प्रतिष्ठा है।

लेकिन आदमी बड़ा चालबाज है, बड़ा बेईमान है।

मैं कहता हूं संजीव रेड्डी को, अगर लगता है तुम्हें कि राजनीति गंदी है, बाहर हो जाओ! अब क्या भीतर रहना जब राजनीति गंदी है? सत्र क्या पूरा करना? कोई सत्र पूरा करने की अनिवार्यता तो नहीं है। कोई फांसी तो नहीं लगा देगा कि तुमने सत्र पूरा क्यों नहीं किया? लोग प्रसन्न ही होंगे, क्योंकि किसी और को मौका मिलेगा। किसी और पर प्रसाद परमात्मा का बरसने दो। किसी और को जाने दो तिरुपति के मंदिर, कोई और चढ़ाए थाली। तुम सीधे-सादे किसान हो जाओ, कोई रोकने वाला नहीं। सीधे-सादे किसान होने में कौन रोकता है? किसको रोकता है?

लेकिन सत्र पूरा हो जाए! यह तो बात वही हुई जो सिकंदर ने डायोजनीज से कही थी। यूं तो कहा था सिकंदर ने कि मैं बहुत प्रभावित हुआ हूं तुम्हारा जीवन देख कर। मगर यह बात ऊपरी रही होगी, क्योंकि सच में ही अगर यह प्रभावित हुआ था, तो डायोजनीज ने तत्क्षण उसको पकड़ लिया। डायोजनीज जैसे लोग छोड़ते नहीं फिर। डायोजनीज ने कहा कि तुम सच में प्रभावित हुए हो?

सिकंदर ने कहा, बहुत-बहुत प्रभावित हुआ हूं। अगर दोबारा मुझे फिर जीवन का अवसर मिला तो परमात्मा से कहूंगा, इस बार मुझे सिकंदर न बना, डायोजनीज बना।

डायोजनीज हंसने लगा। उसने कहा, यह भी खूब रही! अगले जन्म में! तो अभी तुम्हें डायोजनीज होने से कौन रोक रहा है? मैं तो नहीं रोक रहा। डायोजनीज होना तो बड़ी सरल बात है। यह नदी बह रही है... ।

नदी के किनारे पर ही डायोजनीज सुबह का धूप-स्नान ले रहा था। नंग-धड़ंग तो वह रहता ही था। म्युनिसिपल कमेटी का कचरा फेंकने का जो बड़ा टीन का पोंगरा होता है, वह एक पोंगरा उसको कहीं पड़ा हुआ मिल गया था, उसी को रख लिया था लाकर उसने नदी के किनारे। जब कभी वर्षा वगैरह होती तो पोंगरे के अंदर बैठ जाता था, ज्यादा धूप होती तो पोंगरे के भीतर चला जाता, नहीं तो खुली रेत थी, खुला आकाश था, चांद-तारे थे।

डायोजनीज ने कहा, यह नदी का किनारा बड़ा है। तुम कपड़े फेंको और डायोजनीज हो जाओ! और यह किनारा इतना बड़ा है कि हम दोनों के लिए क्या, और भी हजारों लोग डायोजनीज हो जाएं तो कोई अड़चन नहीं आने वाली। रही पोंगरे की, तो मेरा पोंगरा भी काफी है, हम दो के लिए पर्याप्त रहेगा।

पकड़ लिया डायोजनीज ने वहीं! सिकंदर ने कहा कि अभी तो नहीं कर सकता हूं, अभी तो बहुत मुश्किल है। अभी तो मैं विश्वविजय की यात्रा पर निकला हूं।

डायोजनीज ने कहा, अगर विश्वविजय की यात्रा तुम्हें व्यर्थ मालूम पड़ती है और मेरा जीवन सार्थक मालूम पड़ता है, तो छोड़ो! कोई जबरदस्ती तो कर नहीं रहा कि विश्वविजय की यात्रा करो।

लेकिन वह कहने लगा, मैं तो सत्र पूरा करूंगा! जब निकल पड़ा यात्रा पर तो यात्रा पूरी किए बिना नहीं रुकूंगा। सत्र तो पूरा करना ही होगा। एक दफा दुनिया को विजय कर लूं, फिर जरूर आऊंगा।

डायोजनीज ने कहा कि दुनिया बड़ी है, जिंदगी बहुत छोटी है। कल का भरोसा नहीं है। कब किसी की यात्रा पूरी हो पाई है? कौन विजय की यात्रा पूरी कर पाया है? जिंदगी खत्म हो जाती है, दुनिया चलती रहती है। हम कल नहीं थे, कल नहीं हो जाएंगे। क्षण भर का बसेरा है, रैन-बसेरा है। तो मत टालो कल पर। अगर बात तुम्हें रुची है, अगर बात तुम्हें लगी है, अगर तीर तुम्हें चुभा है, तो यही क्षण है, करना हो कुछ कर लो, यही क्षण है! मत कहो कल की बात। कल का क्या भरोसा? लौट पाए न लौट पाए।

डायोजनीज ने कहा, इतना मैं कह सकता हूं कि अब तक कोई आदमी इस दुनिया में अपनी किसी महत्वाकांक्षा को पूरी नहीं कर पाया है। सब यात्राएं अधूरी रह जाती हैं, याद रखना मेरी बात!

सिकंदर शर्माया तो बहुत, सिर झुका लिया। कहने को कुछ था भी नहीं, जवाब देने को मौका भी न था। क्या कहे, खुद ही तो कह फंसा था कि तुम्हारे जीवन से बहुत प्रभावित हूं, ऐसा ही जीवन चाहता हूं; थक गया हूं इस युद्ध से, थक गया हूं इस भाग-दौड़ से। लेकिन यह नहीं सोचा था कि डायोजनीज गर्दन पकड़ लेगा। जैसे मैंने संजीव रेड्डी की पकड़ी, कि जब साफ हो गई बात कि राजनीति गंदगी है, सत्र क्यों पूरा करना? इसी क्षण बाहर हो जाओ!

सिकंदर सिर झुका कर धन्यवाद देकर विदा हुआ। इतना कहा कि तुम्हारे उपदेश को ध्यान में रखूंगा और जब कभी अवसर मिला, जरूर आऊंगा।

डायोजनीज ने कहा कि मैं नहीं सोचता कि अवसर मिलेगा।

सिकंदर ने कहा, लेकिन जाने के पहले इतना चाहता हूं कि तुमने इतनी अनुकंपा की, मैं तुम्हारे लिए कुछ करूं? मेरे पास बहुत धन है, बहुत सुविधाएं हैं, तुम जो कहो वह मैं करूं। कहो तो महल बना दूं। कहो तो इस नदी को तुम्हारे लिए सोने से पाट दूं। मगर कुछ कहो। जो कहोगे वह कर दूंगा।

डायोजनीज ने कहा, यह तो बड़ी देर हो गई। तुम्हें पहले आना था, जब मेरे भीतर इच्छाएं थीं। अब तो मेरी कोई इच्छा नहीं, तुम क्या कर सकोगे? मेरी कोई मांग नहीं, तुम क्या भर सकोगे? मेरे हाथ में भिक्षा का पात्र नहीं, तुम दोगे भी तो मैं उसे रखूंगा कहां? मगर तुम कहते हो तो तुम्हारा निरादर भी नहीं करना चाहता हूं। इतना ही करो कि जरा हट कर खड़े हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे कारण सूरज की धूप मेरे पास तक नहीं आ पा रही है।

बस इतनी ही बात डायोजनीज ने मांगी कि जरा हट कर खड़े हो जाओ। और चलते वक्त सिकंदर से कहा कि याद रखना, कभी भी किसी की धूप के बीच में आड़े मत आना, बस इतना ही बहुत है। सूरज और आदमी के बीच में मत आना। रोशनी और आदमी के बीच में मत आना। किसी के लिए अंधेरा मत बनना। किसी पर छाया मत पड़ने देना।

सिकंदर चला तो आया, लेकिन डायोजनीज की बात उसके प्राणों में गूंजती रही। और आश्चर्य की बात कि वह कभी घर वापस नहीं लौट पाया। भारत से वापस लौटते वक्त बीच में ही मर गया। मरते वक्त डायोजनीज ही उसे याद आया। कहा था कि लौट कर आऊंगा, लेकिन अपनी राजधानी भी वापस नहीं पहुंच सका। चिकित्सकों ने कहा कि अब यहां से आगे यात्रा करनी संभव नहीं है, यह रात आखिरी है। अब तुम्हारे लिए सुबह नहीं होगी।

उसने कहा कि तुम जितना धन कहो मैं देने को राजी हूं, लेकिन मुझे राजधानी तक वापस पहुंच जाने दो। एक तो मैंने डायोजनीज को वायदा किया था कि मैं लौट कर आऊंगा और दूसरा मैंने अपनी मां को वायदा किया था कि जब मैं विजय कर लूंगा सारी दुनिया को तो लाकर तेरे चरणों में दुनिया का सारा साम्राज्य चढ़ा दूंगा। ये दो काम अधूरे रह गए हैं।

चिकित्सकों ने कहा, हम मजबूर हैं। तुम अगर सारा साम्राज्य भी हमें दो, तो भी हम तुम्हें बचा नहीं सकते। और कितनी भी तेजी से तुम जाओ तो भी कम से कम चौबीस घंटे तो लगेंगे ही राजधानी तक पहुंचने में। और इतनी तेजी से घोड़े की सवारी भी नहीं की जा सकती, तुम्हारी हालत इतनी बुरी है। तुम घंटे, दो घंटे के मेहमान हो। डायोजनीज से मिलना अब न हो पाएगा। अपनी मां को तुम यह भेंट न चढ़ा पाओगे।

सिकंदर बहुत दुख में मरा। दुख में जीया, दुख में मरा। मरते वक्त यह कह कर मरा कि मेरे हाथों को लटके रहने देना मेरे ताबूत के बाहर।

वजीरों ने पूछा, क्यों? किसलिए? यह तो रिवाज नहीं।

सिकंदर ने कहा, इसलिए ताकि लोग देख लें कि मैं भी खाली हाथ जा रहा हूं। डायोजनीज ठीक कहता था। मैं खाली हाथ जा रहा हूं। यह सब दौड़ व्यर्थ थी, मगर मैंने नाहक कल के लिए स्थगन किया। काश मैंने उसकी बात मान ली होती और उस तट पर रुक गया होता, ठहर गया होता, विश्राम में डूब गया होता, तो आज मैं भी आनंद से विदा हो सकता! मैं दुख और विषाद में विदा हो रहा हूं।

सिकंदर का ताबूत इतिहास में अपने ढंग का ताबूत था। उसके हाथ बाहर लटके थे। लाखों की भीड़ इकट्ठी थी और हरेक ने पूछा कि हाथ बाहर क्यों लटके हैं? और हरेक ने जाना कि हाथ इसलिए बाहर लटके हैं कि सिकंदर चाहता था हरेक देख ले, नाहक न दौड़ो। हाथ खाली ही रहेंगे।

सच तो यह है, जब बच्चा पैदा होता है तो मुट्ठी बंधी होती है और जब आदमी मरता है तो हाथ खुले होते हैं, मुट्ठी खुली होती है। कहावत हैः बंधी मुट्ठी लाख की, खुली तो खाक की। कम से कम बच्चे की मुट्ठी तो बंद होती है। भीतर कुछ नहीं होता, मगर बंधी मुट्ठी लाख की। कम से कम भरोसे तो होते हैं, आशाएं तो होती हैं, आकांक्षाएं तो होती हैं। मरते वक्त तो मुट्ठी भी खुल जाती है। खाक ही खाक रह जाती है।

मगर फिर भी मरने के बाद की यह कहानी है कि वैतरणी पर दोनों का फिर मिलना हुआ। क्योंकि उसी दिन डायोजनीज भी मरा। संयोग की बात दोनों एक ही दिन मरे। सिकंदर थोड़ा पहले, डायोजनीज थोड़ा बाद। कोई थोड़े ही क्षणों का फासला। वैतरणी पर दोनों का मिलना हो गया। सिकंदर वैतरणी पार कर रहा है, पीछे उसने खड़बड़ की आवाज सुनी, लौट कर देखा--डायोजनीज! एक क्षण को तो किंकर्तव्यविमूढ़ हो गया। एक क्षण को तो ठिठक गया कि अब डायोजनीज ठीक करेगा, यह फिर गर्दन पकड़ेगा और कहेगा कि देख मूरख, कहा था! नहीं सुना, नहीं माना!

फिर पुरानी अकड़ लौट आई। आदमी बड़ा अजीब है! समझ-समझ कर भी चूकता है। देख कर आया है कि जिंदगी बेकार गई, व्यर्थ की दौड़ में गई, आपाधापी में गई; मगर डायोजनीज को देख कर फिर अपने को बचाने का भाव आ गया। हंसा! हंसी झूठी थी और थोथी थी। सिकंदरों के चेहरों पर हंसियां सच नहीं होतीं, सच हो नहीं सकतीं। उनकी हर बात झूठी होती है।

अब ये संजीव रेड्डी जो कह रहे हैं, बिल्कुल झूठ। न तो राजनीति की गंदगी का इन्हें पता है, न राष्ट्रपति के पद को छोड़ने की आकांक्षा है। इनकी हंसी झूठ, इनका ज्ञान झूठ, इनकी बकवास सब झूठ! न सीधा-सादा किसान होने का कोई इरादा है। होना पड़े मजबूरी में, तो ओढ़ लेंगे वह भी, लेकिन मजबूरी में, आकांक्षा नहीं है।

और सिकंदर ने फिर वही पुराना रुख अख्तियार किया। पीछे देख कर हंसा और डायोजनीज से बोला, अरे सौभाग्य! शायद वैतरणी पर ऐसा सम्मिलन पहले कभी न हुआ हो--एक सम्राट का एक भिखारी से! फिर लौट आई अकड़। फिर अपने को सम्राट कहने का मन! फिर डायोजनीज को भिखारी बताने का मन। मगर डायोजनीज जैसे लोगों को धोखा नहीं दिया जा सकता। वे जब किसी की गर्दन पकड़ते हैं तो ठीक से ही पकड़ते हैं। उससे छुटकारा नहीं है। वे जब दांव लगाते हैं तो पूरा ही लगाते हैं। डायोजनीज इतने खिलखिला कर हंसा कि कहते हैं कि वैतरणी पर उसकी हंसी अभी भी गूंजती है। सिकंदर तो हकबका गया। डायोजनीज की हंसी! सिकंदर तो एकदम उदास हो गया। पूछा, आप क्यों हंसते हैं?

डायोजनीज ने कहा, इसलिए हंसता हूं कि जिंदगी भर धोखा खाकर अब भी तू धोखा दे रहा है! तेरी बात सच है एक अर्थ में कि यह मिलन बहुत अदभुत है--एक सम्राट का और एक फकीर से! एक सम्राट का एक भिखारी से! लेकिन थोड़ी गलत भी है। तू समझता है कि सम्राट आगे है और भिखारी पीछे। वहां तेरी गलती है। सम्राट पीछे है, मेरी तरफ देख! और भिखारी आगे है, अपनी तरफ देख! मैं सम्राट की तरह जीया और सम्राट की तरह मरा और सम्राट की तरह आया हूं। तू भिखारी की तरह जीया, भिखारी की तरह मरा और भिखारी की तरह आया है। लेकिन अकड़ जाती नहीं। रस्सी जल जाती है, मगर अकड़ रह जाती है।

अहंकार से लड़ना मत, रिचर्ड ऐरिख। लड़ोगे, जला भी डालोगे, तो भी अकड़ शेष रह जाएगी। अहंकार को जानो, पहचानो, साक्षी बनो। तीन स्तर पर साक्षी होना है। शरीर के साक्षी बनना है। चलो तो जानते हुए चलो कि मैं चल रहा हूं। उठो तो जानते हुए उठो कि मैं उठ रहा हूं। मूर्च्छा में न हो यह कृत्य। शरीर के सारे कृत्य ध्यानपूर्वक हों। फिर इसी ध्यान को मन की प्रक्रियाओं पर लगाओ। विचार यूं ही न चलते रहें। होशपूर्वक! देखो उन्हें--विचारों का जो भीतर तांता लगा रहता है। एक विचार आया, दूसरा आया, तीसरा आया--तुम द्रष्टा बनो, देखो उन्हें, पहचानो उन्हें।

और मजा यह है कि जब साक्षी बनोगे शरीर के, तो शरीर में एक प्रसाद आ जाएगा, एक सौंदर्य आ जाएगा, एक गरिमा आ जाएगी, एक सुगंध आ जाएगी, एक दिव्यता, एक भगवत्ता! और जब मन का निरीक्षण करोगे, साक्षी बनोगे, तो मन शांत होने लगेगा, शून्य होने लगेगा, निर्विचार होने लगेगा। विचार को देखते ही विचार विदा होने लगते हैं। और जहां निर्विचार आया, भीतर सन्नाटा हुआ, कि फिर पहली बार अनुभव होता है संगीत का, पहली बार अनुभव होता है रस का, पहली बार आनंद की झलक मिलती है।

लेकिन झलक! जैसे दूर आकाश के चांद को झील में देखा हो, ऐसी झलक, प्रतिबिंब। जैसे कहीं दूर से कोयल अमराई में कूकी हो, कुहू-कुहू की आवाज!

फिर तीसरे तल पर और साक्षी को साधना है--भावना के तल पर, भाव के तल पर। और जब तुम भावना के तल पर भी साक्षी हो जाते हो--क्योंकि वह सूक्ष्मतम है, सबसे बारीक है--तो फिर झील में चांद देखने की जरूरत नहीं रहती, फिर सीधा ही चांद दिखाई पड़ता है आकाश में। फिर कोयल दूर किसी अमराई से नहीं कूकती, फिर उसकी कुहू-कुहू की आवाज तुम्हारे ही अंतरतम से उठती है। इस भीतर के नाद को ही हमने ओंकार कहा है। यह अनाहत नाद! झेन फकीर कहते हैं, जैसे कोई एक हाथ से ताली बजाए। और जब तुम्हारे भीतर एक हाथ की ताली बजने लगती है, जब तुम्हारे भीतर अनाहत नाद झंकृत होता है, जब तुम्हारे प्राणों की वीणा बजती है; तुम्हारे बजाए नहीं, अपने से बजती है--बज ही रही है; तुम्हारे शोरगुल और मूर्च्छा के कारण सुनाई नहीं पड़ रही है--तब जाना जाता है उसे जो हमारा वास्तविक स्वरूप है; जो हमारी आत्मा है, चेतना है। वहां अहंकार की कहीं छाया भी नहीं पड़ती।

अहंकार का अर्थ हैः मैं अस्तित्व से अलग हूं, पृथक हूं। और आत्मा का अर्थ हैः मैं अस्तित्व से एक हूं, जुड़ा हूं, संयुक्त हूं, कहीं भी अलग नहीं, कहीं भी भिन्न नहीं, अभिन्न हूं। अस्तित्व से अभिन्नता का अनुभव आत्मा और अस्तित्व से भिन्नता का अनुभव या आभास अहंकार। मिटाना कुछ भी नहीं है, सिर्फ जागना है। तीन तल पर तुम जागो और चौथे तल पर जागरण अपने आप उतर आता है। शरीर को देखो, मन को देखो, भाव को देखो--और तब तुम उसे देख पाओगे जो तुम हो। हमने इस देश में उसे तुरीय कहा है, चौथी अवस्था कहा है। वही है समाधि। सूरज ऊग आया, अंधकार फिर नहीं है। दीया जल उठा, अंधेरा फिर नहीं है। बिना मिटाए मिट जाता है अहंकार। बिना लड़े जीत हो जाती है।

अहंकार से लड़ने की बात यूं ही व्यर्थ है, जैसे--
पंचशील पुल पर खड़े पांच अनोखे व्यक्ति
परिचय अपना दे रहे किसमें कितनी शक्ति
किसमें कितनी शक्ति, एक था उनमें अंधा
शेष चार थे--बहरा, लंगड़ा, लूला, नंगा
कंह काका कविराय शून्य में झांक रहे थे
धुत्त नशे में लंबी-चौड़ी हांक रहे थे
बहरा बोला यकायक ध्यान देयो उस ओर
साफ सुनाई पड़ रहा डाकू दल का शोर
डाकू दल का शोर, कसम अंधे ने खाई
वह देखो बारह डाकू दे रहे दिखाई
लंगड़ा बोला भाग चलो वर्ना मर जाएं
लूला कहने लगा कि दो-दो हाथ दिखाएं
तब नंगा चिल्लाया कुछ भी नहीं करोगे
लगता है सब मिल कर मुझको लुटवा दोगे

दूसरा प्रश्नः ओशो, तुम्हारे कदमों में सर झुकाया था हमने,
अब कहां सर झुकाऊं तुम्हें अपना खुदा बनाने के बाद?

दीपिका, सर सच में ही झुकाया हो तो उठाने को कुछ बचता ही नहीं। और कहीं झुकाने को तो फिर उपाय नहीं है। एक बार झुका तो झुका, झुका तो मिटा। अगर मिटा नहीं तो झुका ही नहीं।

तू पूछती हैः "तुम्हारे कदमों में सर झुकाया था हमने, अब कहां सर झुकाऊं तुम्हें अपना खुदा बनाने के बाद?"

अब तो सर बचा ही कहां? और अगर बचा है तो फिर सोचना पड़ेगा--झुका ही नहीं था। झुकना और मिटना पर्यायवाची हैं; भाषा में नहीं, लेकिन सत्संग के जगत में तो उनमें कोई भेद नहीं है। झुका कि कटा। फिर कहां झुकाओ? किसे झुकाओ? और झुकाने की जरूरत क्या रही, प्रयोजन क्या रहा, आवश्यकता कहां है?

एक ही तो प्रेम चल रहा है। बहुत-बहुत तरह से हम एक ही प्रेमी की तो तलाश कर रहे हैं--कभी गलत, कभी सही; कभी होश में, कभी बेहोशी में--मगर एक ही प्रेमी की तलाश चल रही है। किसी स्त्री को प्रेम किया होगा, किसी पुरुष को प्रेम किया होगा, किसी मित्र को प्रेम किया होगा, बेटे को प्रेम किया होगा, बेटी को प्रेम किया होगा, पति को, पत्नी को, पिता को, मां को, लेकिन इन सारे प्रेमों के भीतर परमात्मा की ही खोज चल रही है। और जब एक बार कहीं परमात्मा की प्रतीति हो गई, तो आ गया क्षण सिर को चढ़ा देने का। बचा कर करना भी क्या है?

अभी कुछ दिन पहले मेरे एक पुराने संन्यासी--भूतपूर्व संन्यासी--विजयानंद, कृष्ण प्रेम को मिल गए महाबलेश्वर में। कृष्ण प्रेम से बोले कि मैंने भगवान को संपूर्ण समर्पण कर दिया था। पांच साल तक संपूर्ण समर्पण रखा। लेकिन जब मुझे बुद्धत्व उपलब्ध नहीं हुआ तो मैंने फिर संन्यास का त्याग कर दिया।

कैसी मजे की बात कही। कैसी रसभरी बात कही। संपूर्ण समर्पण! और वह भी वापस लिया जा सकता है। संपूर्ण समर्पण का अर्थ ही क्या होता है फिर? जब पूरा-पूरा ही दे दिया था तो लेने वाला कौन पीछे बचा था जो वापस ले ले? निश्चित ही समर्पण संपूर्ण नहीं रहा होगा।

पहली बात, संपूर्ण समर्पण में लौटने का कोई उपाय ही नहीं होता, पुराने सेतु ही टूट जाते हैं, सीढ़ी ही फेंक दी जाती है। लौटना भी चाहो तो नहीं लौट सकते। लौटने को ही नहीं बचता कोई। पहली तो बात, संपूर्ण समर्पण नहीं था। नहीं तो संन्यास कैसे वापस छोड़ा जा सकता है? कौन छोड़ेगा? और अगर छोड़ने वाला मौजूद था तो फिर कुछ बचा हुआ था। और जो बचा हुआ था वह ज्यादा था। क्योंकि संन्यास लेते वक्त तो मुझसे पूछा था कि लूं या नहीं, छोड़ते वक्त मुझसे पूछा भी नहीं। लेते वक्त तो हजार तरह से मेरे पास बैठ कर विचार किया था कि लूं या न लूं, ऐसा होगा, वैसा होगा; क्या परिणाम होंगे, क्या नहीं होंगे। लेकिन छोड़ते वक्त तो मुझसे पूछा भी नहीं। तो जरूर निन्यानबे प्रतिशत तो भीतर ही बचा होगा, एक प्रतिशत दिया होगा। ज्यादा तो भीतर था, उसने वापस खींच लिया हाथ।

और क्या समर्पण अधूरा हो सकता है--यह दूसरा सवाल। समर्पण या तो होता है तो पूरा होता है या नहीं होता। एक प्रतिशत की बात भी मैंने सिर्फ बात करने के लिए कही तुमसे, ताकि विचार कर सको। सच में तो एक प्रतिशत समर्पण होता ही नहीं। या तो सौ प्रतिशत या नहीं। निन्यानबे प्रतिशत समर्पण भी समर्पण नहीं है, क्योंकि वह जो एक प्रतिशत भीतर बाकी रह गया है वह सारे के सारे समर्पण को वापस खींच सकता है।

और मजे की बात तीसरी उन्होंने कही कि पांच साल तक संपूर्ण समर्पण रखा।

जैसे कि संपूर्ण समर्पण का भी समय से कोई संबंध है--एक मिनट रखा, कि दो मिनट रखा, कि पांच मिनट रखा! पूरे पांच साल। महान कार्य किया! पांच साल तक समर्पण! और संपूर्ण! कितनी कठोर साधना नहीं की! कांटों की शय्या पर लेटे रहे। आग बरसते में चारों तरफ धूनी लगा कर बैठे रहे। पांच साल! छोटी कुछ बात है। और फिर छोड़ा क्यों संन्यास? क्योंकि पांच साल संपूर्ण समर्पण रखने के बाद भी बुद्धत्व प्राप्त नहीं हुआ! मतलब भीतर कहीं बुद्धत्व प्राप्ति की आकांक्षा थी। मतलब समर्पण समर्पण नहीं था, सौदा था, शर्त थी कोई,

भीतर कोई व्यवसाय था। समर्पण का कोई प्रयोजन था, कोई आकांक्षा थी, कोई वासना थी। संन्यास नहीं था वह, वासना थी, संसार था। बुद्धत्व चाहिए था। छोटी-मोटी कोई चीज चाहिए भी नहीं थी, ठेठ बुद्धत्व चाहिए था! और पांच साल के भीतर!

और विजयानंद ने, बेचारों ने कितनी तपश्चर्या की! कैसा त्याग किया! पांच साल तक सूली पर लटके रहे! और जब देखा कि अभी तक बुद्धत्व प्राप्त नहीं हुआ, तो सूली से उतर गए, कि भाड़ में जाए यह सूली।

कैसी यह सूली थी जिस पर पांच साल लटके रहे और मरे भी नहीं! और पांच साल टकटकी बांध कर देखते रहे कि अब आया बुद्धत्व, अब आया। लेकिन बुद्धत्व था कि आया ही नहीं। सोचा कि अब दस्तक देगा, इधर से आया, उधर से आया। मगर कभी हवा का झोंका निकला, कभी बादल गरजा, कभी बिजली कड़की, बुद्धत्व का कोई पता ही नहीं! पांच साल सतत प्रतीक्षा करने के बाद अब और क्या चाहते हो? साधना पूरी हो गई।

दीपिका, सर तो एक ही बार झुकता है, दुबारा नहीं झुकता, उठता भी नहीं। जिसकी तलाश थी वह मिल गया। सर झुकने का अर्थ होता हैः अहंकार का न हो जाना। और जब अहंकार नहीं हो गया तो किसको पड़ी है बुद्धत्व की?

कृष्ण प्रेम ने ठीक कहा विजयानंद को। क्योंकि विजयानंद ने कृष्ण प्रेम से पूछा कि तुम्हें बुद्धत्व मिला? कृष्ण प्रेम ने कहा, हमें प्रयोजन ही नहीं। लेना-देना क्या है बुद्धत्व से? करेंगे क्या बुद्धत्व का? हम तो यूं ही मजे में हैं। हम तो मस्त हैं।

विजयानंद को यह बात समझ में नहीं आई। विजयानंद ने कहा, यह बात ठीक नहीं है। अरे जब संन्यासी हो तो बुद्धत्व तो होना ही चाहिए!

पर कृष्ण प्रेम ने कहा, हम संन्यस्त होकर ही आनंदित हैं, अब हमें और कुछ चाहिए नहीं। मिल भी जाए बुद्धत्व तो सोचेंगे कि लेना कि नहीं लेना! मतलब और नई झंझट कौन पाले! संन्यास इतना आनंद दे रहा है, पता नहीं बुद्धत्व और कौन सी झंझट में ले जाए! तो हम तो सोचेंगे, विचारेंगे। और हमें लेने की कोई चिंता नहीं।

मगर भारतीय बुद्धि एक ढंग से चलती है। भारतीय बुद्धि व्यवसायी बुद्धि है। लाख तुम मोक्ष की बातें करो, मगर तुम्हारा व्यवसाय भीतर बना ही रहता है, कहीं हिसाब-किताब तुम लगाए ही रखते हो।

विजयानंद चलते-चलते कृष्ण प्रेम को कह गए कि नहीं, यह तो सोचना ही पड़ेगा। बुद्धत्व का विचार तो रखो ही। नहीं तो संन्यास का सार ही क्या है?

संन्यास भारतीय बुद्धि में हमेशा साधन है, साध्य नहीं। इसीलिए मेरे पास सारी दुनिया से आए हुए लोगों को एक सहज आनंद की अनुभूति हो रही है जो भारतीयों को नहीं हो पा रही है। और उसका कारण कुल इतना है कि भारतीय मन हिसाबी-किताबी हो गया है। बातें तो ऊंची करता है, मगर बातों के पीछे माजरा कुछ और, कुछ छिपा है और--मोक्ष पाना, कैवल्य पाना, बैकुंठ जाना, गोलोक में निवास करना। कहीं कोई लक्ष्य छिपा है; संन्यास अपने आप में सिद्धि नहीं है, साधना है। और मेरा आग्रह है कि जब भी तुम साधन में और साध्य में भेद करोगे, तुम विभाजित हो जाओगे, तुम दो टुकड़ों में टूट जाओगे। साध्य होगा भविष्य में और साधन होगा वर्तमान में। भविष्य आया कि संसार आया।

साधन ही साध्य हो जाना चाहिए, तभी तुम वर्तमान में जी सकते हो। तब यही क्षण काफी है। तब न कहीं जाना है, नहीं कुछ पाना है। और ऐसी अवस्था का नाम ही बुद्धत्व है--न कहीं जाना है, न कुछ पाना है। आनंदित हैं। यही क्षण अपनी समग्रता में, अपने पूरे रस से झर रहा है। अगले क्षण की बात ही नहीं उठती। ऐसा शुद्ध वर्तमान निर-अहंकार होते ही उपलब्ध हो जाता है। और जिसको शुद्ध वर्तमान उपलब्ध हुआ, किस निमित्त हो जाए... ।

तू कहती है दीपिका कि आपके कदमों में सिर झुकाया... ।

यह सिर्फ बहाना है। यह तो सिर्फ तरकीब है; सर झुक जाए, इसके लिए निमित्त है। जैसे किसी घर में आग लगी हो और छोटे बच्चे अंदर खेल रहे हों, और तुम लाख चिल्लाओ कि आग लगी है, छोटे बच्चों को अभी पता ही नहीं कि आग लगने का क्या मतलब होता है। तो घर का मालिक, बच्चों का पिता बाहर से चिल्लाए कि बेटे, बाहर आ जाओ! तुमने जो खिलौने बुलाए थे, मैं बाजार से ले आया हूं।

आग लगी है, यह तो बच्चों की समझ में नहीं आता; लगी रहे, उन्हें तो और मजा आ रहा है; चारों तरफ लपटें उठ रही हैं, वे बीच में ही कूद रहे हैं, छलांग ले रहे हैं, उनके मजे का तो कोई हिसाब नहीं। लेकिन यह सुन कर कि पिता बाजार गए थे और खिलौने ले आए हैं--खिलौने क्या, गुड्डा-गुड्डियां ले आए हैं, जो-जो उन्होंने मांगा था, किसी की सीटी आ गई है, किसी की ढोलक आ गई है, किसी की पुंगी आ गई है--वे भागे! यह आग से ज्यादा महत्वपूर्ण है। वे निकल कर बाहर आ गए। हालांकि पिता कुछ भी नहीं लाया है। अरे घर में आग लगी हो, तो वह बाजार जाए खिलौने खरीदने? बच्चे बाहर निकल कर कहेंगे, खिलौने कहां हैं? तब वह समझा देगा कि खिलौने नहीं लाए पागल, घर में आग लगी है, जल जाते। तुम्हें बाहर निकालने के लिए खिलौनों की बात उठा दी। यह सिर्फ बहाना है।

यूं मैं भी बहुत से खिलौनों की तुमसे बात करता हूं। यह मोक्ष, यह ईश्वर, यह गोलोक, यह बैकुंठ--यह मेला गया था, खिलौने ले आया हूं। तुम जो भी सुन कर बाहर आ सको वही आवाज दे देता हूं--कि चलो गोलोक, बस आ गई! और सब बच्चे बाहर निकल आए कि अरे गोलोक बस जा रही! लाख काम छोड़ कर बाहर आ गए। बाहर आ जाओ, फिर समझा लेंगे; समझा लेंगे कि यह बस गोलोक वगैरह नहीं जा रही, यह स्कूल जा रही है भैया! या स्कूल का नाम--गोलोक पाठशाला!

अब यहां विनोद मेरे सामने बैठे हैं। विनोद को पत्नी से अलग होना पड़ रहा है। रास्ते अलग-अलग हो गए। रास्तों का क्या भरोसा, कभी साथ हो लेते हैं, कभी अलग हो जाते हैं। तो विनोद ने अपने बच्चों को बुला कर समझाना चाहा कि भई, अब हम अलग हो रहे हैं, तुम्हारे क्या इरादे हैं? लेकिन बच्चों को क्या पड़ी! बच्चे तो कुलाटी लगाने लगे, कोई शीर्षासन करने लगा। विनोद और उनकी पत्नी बैठे देख रहे हैं और बच्चे वहीं उछल-कूद मचा रहे हैं, वे बड़े मस्त हो रहे हैं। उनकी समझ में ही नहीं आया कि रास्ते अलग हो रहे हैं, इसका मतलब क्या! वे तो समझे कि बहुत ही अच्छी बात है, होने दो। पूछने लगे, कब होंगे अलग?

विनोद ने समझाया कि तुम समझे नहीं, कि तुम्हारी मम्मी में और मुझमें अब बनती नहीं। उन्होंने कहा, यह तो हमको मालूम ही है। अरे किसकी मम्मी में और किसके डैडी में बनती है?

और वे तो अपने खेल में ही लगे हैं, उनको इससे कुछ मतलब ही नहीं कि क्या हो रहा है। घर में आग लगी है, वे कुलाटी लगा रहे हैं, उछल-कूद कर रहे हैं, सिर के बल खड़े हो रहे हैं। अब इनको क्या समझाओ?

विनोद ने कहा कि तुम समझो ठीक से, अब मुझे और तुम्हारी मम्मी को अलग-अलग रहना पड़ेगा। तब उनको थोड़ा ख्याल आया कि मतलब कहां रहोगे आप? तो विनोद ने कहा कि मैं आश्रम में रहूंगा। तो कहा, हम भी आते हैं। और मम्मी, तुम भी चलो। अरे आश्रम में ही रहेंगे। आश्रम में तो बहुत मजा आएगा।

बच्चों की अपनी दुनिया है। उनके सोचने के अपने ढंग हैं। लेकिन मम्मी नाराज हो गई कि आश्रम नहीं जाना है! तुम्हें तय करना पड़ेगा, या तो अपने डैडी के पास रहो या मेरे पास रहो।

तो उन्होंने कहा, अभी हम छोटे हैं, आपके पास रहेंगे; जब बड़े हो जाएंगे फिर हम डैडी के पास जा सकते हैं? क्योंकि बड़े होकर हमको आश्रम में रहना है। ठीक है, अभी छोटे में गुजार लेंगे, मगर बड़े होकर तो आश्रम में ही रहेंगे।

बच्चों को तो और ढंग से समझाना होगा। अभी उनको ख्याल में भी नहीं आएगा कि यह बात क्या हो रही है। और करीब-करीब सब बच्चे हैं, यह सारा संसार बच्चों से भरा हुआ है!

अब यह विजयानंद को जो मैंने बुद्धत्व की बात कही थी, वह खिलौनों की बात थी। ये बुद्धिमान यह समझ बैठे कि संन्यासी हो गए तो ये बुद्ध हो जाएंगे। ये और बुद्धू हो गए। पांच साल बुद्धत्व की जो प्रतीक्षा करेगा, बुद्धू हो जाएगा। बुद्धत्व और दूर हो गया। बुद्धत्व का कोई अर्थ तो समझो। बुद्धत्व का कुल इतना अर्थ है कि हम जहां हैं, जैसे हैं, जो हैं--तृप्त हैं, आनंदित हैं; हमारा प्रतिपल उत्सव है।

मगर यह बात समझ में नहीं आती तो फिर बुद्धत्व की बात करनी पड़ती है, निर्वाण की बात करनी पड़ती है, संबोधि की बात करनी पड़ती है, क्योंकि यही खिलौने तुम्हारी समझ में आते हैं। मगर इन खिलौनों को जोर से पकड़ कर मत बैठ जाना।

दीपिका, तू कहती हैः "तुम्हारे कदमों में सर झुकाया था हमने, अब कहां सर झुकाऊं तुम्हें अपना खुदा बनाने के बाद?"

एक बार खुद का होना मिट जाए तो खुदा का मिलना होता है। कुछ खुदा जैसा कोई व्यक्ति नहीं है, कि एकदम मिल गया और बोले कि नमस्कार, कहिए कैसे हैं? अच्छे तो हैं? खुदा कोई व्यक्ति नहीं है--खुदी के मिट जाने का नाम है। और जब खुदी मिट गई तो मिल गया जो मिलना था। जो सदा से मिला ही हुआ था, उसका आविष्कार हो जाता है।

कहीं देखी है शायद तेरी सूरत इससे पहले भी
कि गुजरी है मेरे दिल पे ये हालत इससे पहले भी
न जाने कितने जल्वे पेश-रौ थे तेरे जल्वों के
तुझी से बारहा की है मोहब्बत इससे पहले भी
सुनाती हैं कोई अफसाना तेरी सहमगीं नजरें
हुई है मुझसे गुस्ताखाना जुरअत इससे पहले भी
मेरी किस्मत कि मैं इस दौर में बदनाम हूं वर्ना
वफादारी थी शर्ते-आदमीयत इससे पहले भी
कहीं देखी है शायद तेरी सूरत इससे पहले भी
कि गुजरी है मेरे दिल पे ये हालत इससे पहले भी
न जाने कितने जल्वे पेश-रौ थे तेरे जल्वों के
तुझी से बारहा की है मोहब्बत इससे पहले भी

एक से ही प्रेम चल रहा है। अलग-अलग दीये हैं, रोशनी एक है। अलग-अलग फूल हैं, सौंदर्य एक है। उसी एक की तलाश चल रही है। और जब भी उस एक की कहीं झलक मिल जाए तो सिर झुक जाता है, सत्संग शुरू होता है। सत्संग का अर्थ हैः मिल गई झलक उस एक की जन्मों-जन्मों से जिसको खोजते थे; कहीं उस प्यारे की एक किरण दिखाई पड़ने लगी, कहीं थोड़ी सी आहट होने लगी उसके पदचिह्नों की, थोड़ी सी झलक।

अभी कुछ दिन पहले मेरा जर्मन संन्यासी, विमलकीर्ति, संसार से विदा हुआ। उसने अपनी आखिरी कविता जो मेरे लिए लिखी, उसमें कुछ प्यारे वचन लिखे थे। विमलकीर्ति यूं तो राज-परिवार से था। करीब-करीब यूरोप के सारे राज-परिवारों से उसके संबंध थे। उसकी मां है ग्रीस की महारानी की बेटी। उसकी दादी है ग्रीस की महारानी। उसकी मौसी है स्पेन की महारानी। उसकी मां के भाई हैं प्रिंस फिलिप, एलिजाबेथ के पति इंग्लैंड के। एलिजाबेथ, इंग्लैंड की महारानी उसकी मामी। प्रिंस वेल्स उसके ममेरे भाई। उसकी मां ने यह दूसरी शादी की हनोवर के राजकुमार से, जिनसे विमलकीर्ति का जन्म हुआ। उसकी पहली शादी, विमलकीर्ति की मां की, हुई थी डेनमार्क के महाराजा से। तो डेनमार्क के महाराजा और डेनमार्क के महाराजा के जितने संबंधी हैं, उनसे भी विमलकीर्ति का संबंध। मुश्किल होगा एक आदमी ऐसा खोजना जिसका यूरोप के सारे राज-परिवारों से संबंध है। और निकट संबंध है। और जर्मन सम्राट का तो वह वंशज है ही। अगर जर्मन साम्राज्य बचा रहता तो

विमलकीर्ति आज सम्राट होता जर्मनी का। आया था भारत में यूं ही भ्रमण के लिए। सोचा भी न होगा कि मुझसे मिलना हो जाएगा। इधर मुझसे मिलना हो गया तो लौटा ही नहीं। और उसका समर्पण समर्पण कहा जा सकता है। वर्षों तक तो यह पता ही नहीं चला किसी को कि वह इतने साम्राज्यों से संबंधित है। किसी को पता ही नहीं चला। किसी को उसने कभी कहा ही नहीं। यहां उसने कोई ऐसा काम नहीं जो न किया हो। बागवानी का काम किया, बुहारी लगाने का काम किया। जो काम उसको दे दिया, किया। समर्पण यह था! कभी एक बार भी यह पता न चलने दिया कि मैं राजकुमार हूं और कभी मेरी पीढ़ियों में किसी ने बुहारी नहीं लगाई। बुहारी लगाने की बात ही दूर, बुहारी देखी भी नहीं होगी।

फिर वह मेरा पहरेदार हो गया, मेरे दरवाजे पर पहरा देता था। तब भी उसने नहीं बताया कि खुद उसके दरवाजे पर पहरेदार हुआ करते थे। मुझसे न तो उसने कभी कोई प्रश्न पूछा, न मुझे कभी कोई पत्र लिखा। पत्र लिखता भी था तो अपनी डायरी में रखता जाता था। उसके विदा हो जाने के बाद ही उसकी पत्नी तुरीया ने मुझे डायरी दिखाई, जिसमें कि वह पत्र रखता जाता था। और मुझे इसलिए नहीं भेजता था क्योंकि उसका कहना था कि आज नहीं कल मैं उत्तर दे ही देता हूं, तो क्यों नाहक भेजना, क्यों परेशान करना! अपना पत्र लिख कर रख लेता हूं कि यह मेरा प्रश्न है, ताकि मैं न भूल जाऊं। उत्तर तो आ ही जाता है, देर-अबेर। जब मेरी जरूरत होती है, उत्तर आ जाएगा।

आखिरी पत्र उसने जो मुझे लिखा है--वह भी मुझे भेजा नहीं था--उसमें उसने लिखा है कि मैंने कभी सोचा भी न था कि जीवन में इतना आनंद भी हो सकता है। और मेरे सर्वाधिक आनंद के वे क्षण हैं जब मैं, आप दरवाजे के बाहर निकलते हैं और आपके परदे के बाहर पहरा देता हूं और आपके पैरों की आहट सुनता हूं। बस आपके पैरों की आहट मेरा सबसे बड़ा आनंद है। मुझे सब मिल जाता है।

वह परदे के बाहर होता था, तो मैं तो उसे दिखाई पड़ता नहीं था, एक कमरे से मैं दूसरे कमरे में जाऊं तो मैं उसे दिखाई नहीं पड़ता था, लेकिन मेरे पैरों की आहट उसे सुनाई पड़ती थी। वह कहता थाः चौबीस घंटे भी मैं वहां बैठा रह सकता हूं, बस दिन में दो बार आपके पैरों की आहट सुनाई पड़ जाती है, और मैंने सब पा लिया!

इसे कहते हैं समर्पण। विजयानंद के समर्पण को समर्पण नहीं कहते।

तो विमलकीर्ति विदा भी बुद्ध की तरह हुआ, बुद्धत्व को पाकर हुआ। और बुद्धत्व पाने की कोई चाह न थी, सोच भी न था, विचार भी नहीं था। सोच-विचार से नहीं होता। लेकिन जन्मों-जन्मों यही खोज चलती है। वह मेरे पास आया और रुक ही गया। बस एक किरण पहचान में आ गई कि उसने पकड़ लिया सहारा।

दिल में अब यूं तेरे भूले हुए गम आते हैं
जैसे बिछुड़े हुए काबे में सनम आते हैं

काबे में मोहम्मद के पहले मूर्तियां थीं, तीन सौ पैंसठ मूर्तियां थीं। काबा का मंदिर दुनिया का सबसे बड़ा मंदिर था, अपने ढंग का अदभुत मंदिर था। ऐसा कोई मंदिर दुनिया में नहीं जहां तीन सौ पैंसठ मूर्तियां हों। और प्रत्येक दिन की पूजा एक मूर्ति को मिलती थी। प्रत्येक दिन के लिए एक मूर्ति थी। बड़ा मंदिर था, विशाल मंदिर था। मोहम्मद ने वे मूर्तियां समाप्त करवा दीं, क्योंकि मोहम्मद निर्गुण और निराकार के उपासक थे, सगुण और साकार के नहीं। इसलिए मूर्तियां खंडित कर दी गईं।

हालांकि मेरे देखे, मूर्तियों को खंडित करना सच्चा निराकार भाव नहीं। क्योंकि मूर्ति को खंडित करने का मतलब यह हुआ कि अभी तुम्हें साकार में निराकार नहीं दिखाई पड़ता, अभी सगुण में निर्गुण दिखाई नहीं पड़ता। नहीं तो मूर्ति को क्या मिटाना है? आखिर आदमी भी तो मूर्तियां ही हैं। ये भी तो आकार ही हैं। आखिर वृक्ष भी तो मूर्तियां ही हैं। ये भी तो आकार ही हैं। चांद-तारे, ये भी तो मूर्तियां ही हैं। ये भी तो आकार ही हैं। अगर चांद-तारों में तुम्हें निराकार दिखाई पड़ता है, अगर आदमियों में तुम्हें निराकार दिखाई पड़ता है, तो पत्थर की मूर्ति में क्या कसूर है? और तुमने पहाड़ तो नहीं तोड़े। पहाड़ों में निराकार दिखाई पड़ता है! तो

आदमी ने अगर किसी पत्थर पर नक्काशी कर दी है और उसे आकृति दे दी है तो इसमें तुम्हें निराकार के दिखाई पड़ने में क्या बाधा पड़ रही है? यह सच्चा निराकारवाद नहीं है।

कुछ लोग हैं जो मूर्ति पूजते हैं, कुछ लोग हैं जो मूर्ति तोड़ते हैं; दोनों मूर्तिवादी हैं। सच्चा मूर्तिभंजक मूर्ति नहीं तोड़ता। क्यों तोड़ेगा? मूर्ति अपने आप है, अपनी जगह है। और मूर्ति में भी अमूर्त तो विराजमान है। तुम मूर्त में अमूर्त को देखो, यह तो बात समझ में आती है। मूर्त को तोड़ने से क्या होगा?

दिल में अब यूं तेरे भूले हुए गम आते हैं
जैसे बिछुड़े हुए काबे में सनम आते हैं

जैसे कि काबे में फिर से मूर्तियां वापस लौट आएं। ऐसी घड़ी आती है जब अचानक तुम्हारे भीतर के मंदिर में कोई मूर्ति विराजमान हो जाती है--कोई मूर्ति जो अमूर्त का प्रतीक है।

दिल में अब यूं तेरे भूले हुए गम आते हैं
जैसे बिछुड़े हुए काबे में सनम आते हैं
एक-एक करके हुए जाते हैं तारे रोशन
मेरी मंजिल की तरफ तेरे कदम आते हैं

ख्याल रखना, जो व्यक्ति झुक गया, मिट गया, उसे परमात्मा को नहीं खोजना पड़ता, परमात्मा उसे खोजता हुआ आता है। क्या परमात्मा को हम खोजेंगे! हमारी बिसात क्या? हमारी औकात क्या? हमारे हाथों की पहुंच कितनी? हम तो मिट सकते हैं। और जो मिट जाता है उसे परमात्मा खोज लेता है।

दिल में अब यूं तेरे भूले हुए गम आते हैं
जैसे बिछ.ुडे हुए काबे में सनम आते हैं
एक-एक करके हुए जाते हैं तारे रोशन
मेरी मंजिल की तरफ तेरे कदम आते हैं
रक्से-मय तेज करो, साज की लय तेज करो
सूए-मैखाना सफीराने-सफर आते हैं
कुछ हमीं को नहीं एहसान उठाने का दिमाग
वो तो जब आते हैं, माइल-ब-करम आते हैं
और कुछ देर न गुजरे शबे-फुर्कत से कहो
दिल भी कम दुखता है वो याद भी कम आते हैं
एक-एक करके हुए जाते हैं तारे रोशन
मेरी मंजिल की तरफ तेरे कदम आते हैं
रक्से-मय तेज करो, साज की लय तेज करो
सूए-मैखाना सफीराने-सफर आते हैं

दीपिका, अगर झुकी है, तो रक्से-मय तेज करो! फिर यह शराब का दौर और चलने दो! अब उठना क्या? अब सिर उठाना क्या? अब यह नशा और बढ़ने दो।

रक्से-मय तेज करो...

यह मधु और ढलने दो।

... साज की लय तेज करो

अब यह शहनाई और जोर से बजने दो। इस मृदंग पर और जोर से थाप दो।

रक्से-मय तेज करो, साज की लय तेज करोसूए-मैखाना सफीराने-सफर आते हैं

अब मधुशाला की ओर जब कि मुसाफिर आने लगा, जब कि उसके कदम तेरी तरफ आने लगे, तब यह बात ही क्या उठानी?

यह क्या पूछती है तूः "तुम्हारे कदमों में सर झुकाया था हमने, अब कहां सर झुकाऊं तुम्हें अपना खुदा बनाने के बाद?"

अब कोई जरूरत ही नहीं है। अब कोई प्रयोजन ही नहीं है।

आधी रात को ये दुनिया वाले
जब ख्वाबों में खो जाते हैं
ऐसे में मुहब्बत के रोगी
यादों के चिराग जलाते हैं।
करते हैं मुहब्बत सब ही मगर
हर दिल को सिला कब मिलता है
आती हैं बहारें गुलशन में
हर फूल मगर कब खिलता है
करते हैं मुहब्बत सब ही मगर।
मैं रांझा न था, तू हीर न थी
हम अपना प्यार निभा न सके
यूं प्यार के ख्वाब बहुत देखे
ताबीर मगर हम पा न सके
मैंने तो बहुत चाहा लेकिन
तू रख न सकी वादों का भरम
अब रह-रह कर याद आता है
जो तूने किया इस दिल पे सितम।
करते हैं मुहब्बत सब ही मगर
हर दिल को सिला कब मिलता है
आती हैं बहारें गुलशन में
हर फूल मगर कब खिलता है
करते हैं मुहब्बत सब ही मगर।
परदा जो हटा दूं चेहरे से
तुझे लोग कहेंगे हरजाई
मजबूर हूं मैं दिल के हाथों
मंजूर नहीं तेरी रुसवाई
सोचा है कि अपने ओंठों पर
मैं चुप की मुहर लगा लूंगा
मैं तेरी सुलगती यादों से
अब इस दिल को बहला लूंगा।
करते हैं मुहब्बत सब ही मगर
हर दिल को सिला कब मिलता है
आती हैं बहारें गुलशन में
हर फूल मगर कब खिलता है
करते हैं मुहब्बत सब ही मगर।

दीपिका, प्रेम तो सभी करते हैं, मगर सिला बहुत कम लोगों को मिलता है। क्योंकि प्रेम लोग मूर्च्छा में करते हैं। और मूर्च्छा में कोई सिला नहीं। मूर्च्छा में कोई परिणाम नहीं आता।

शिष्य और गुरु के बीच जो प्रेम घटता है, वह अमूर्च्छित प्रेम है, वह जाग्रत प्रेम है। वह प्रेम का ज्वलंत रूप है। वह प्रेम की ऐसी ज्योति-शिखा है जिसमें कोई धुआं नहीं। और तब सिला निश्चित है। और सिला कल नहीं मिलता, अभी मिलता है, यहीं मिलता है। इधर सिर झुका, इधर सिला मिला। साथ-साथ, तत्क्षण। और मैं तो दो ही पाठ सिखा रहा हूं--ध्यान के और प्रेम के। ध्यान तुम्हें प्रेम के योग्य बनाता है और प्रेम तुम्हें ध्यान के योग्य बनाता है। वे एक-दूसरे के सहारे हैं। जैसे कबीर ने कहा कि गुरु यूं है जैसे कि कुम्हार घड़ा बनाता है; एक हाथ से भीतर सहारा देता है और दूसरे हाथ से बाहर थपकी देता है। तब कहीं घड़े की बनावट उभर पाती है।

एक हाथ का सहारा और एक हाथ से चोट। ध्यान भीतर से सहारा है, प्रेम बाहर से। और जहां दोनों मिल जाते हैं वहां जीवन की गागर निर्मित हो जाती है--और ऐसी गागर, जिसमें कि सागर समा सकता है। अब कहीं जाने की कोई जरूरत नहीं, अब कुछ और करने का सवाल नहीं।

हां, अगर तेरा समर्पण भी विजयानंद जैसा हो--कि समग्र समर्पण कर दिया और पांच साल हो गए और अभी तक बुद्धत्व नहीं मिला--तो फिर कहीं और खोजना पड़ेगा। मगर यूं कहीं भी खोज, पाना असंभव है। पाने की आकांक्षा ही पाने में बाधा है। जो यहां घट सकता है, अभी घट सकता है, उसे क्यों कल पर टालना? साधन और साध्य में भेद न कर।

और मैं तो सिर्फ बहाना हूं। तेरा सिर झुकाना कैसे भी हो जाए, किसी बहाने हो जाए, बस सिर झुक जाए, तू बेसिर हो जाए, ताकि हृदय ही हृदय बचे--और आ गई वह घड़ी, वह परम सौभाग्य की घड़ी, जब स्वर्ग भीतर उतर आता है!

एक-एक करके हुए जाते हैं तारे रोशन
मेरी मंजिल की तरफ तेरे कदम आते हैं
दिल में अब यूं तेरे भूले हुए गम आते हैं
जैसे बिछ.ुडे हुए काबे में सनम आते हैं
रक्से-मय तेज करो, साज की लय तेज करो
सूए-मैखाना सफीराने-सफर आते हैं
आज इतना ही।

छठवां प्रवचन

बांस की पोंगरी का संगीत

पहला प्रश्नः ओशो,

किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।
किमत्र हेयं कनकं च कांता
श्राव्यं सदा किं गुरुवेदवाक्यम्।।

आभूषणों में श्रेष्ठ आभूषण क्या है? शील। सबसे श्रेष्ठ तीर्थ क्या है? विशुद्ध किया हुआ अपना मन। इस संसार में कौन सी वस्तुएं त्याज्य हैं? कांचन और कांता। सदा सुनने योग्य क्या है? गुरु और वेद का वचन!

ओशो, क्या आपको आद्य शंकराचार्य के इन उत्तरों पर भी कोई आपत्ति है? आप क्या कहेंगे, बताने की कृपा करें।

पूर्णानंद,

सहजानंद बड़ी मुश्किल से शांत हुए तो उनका कार्य पूर्णानंद ने उठा लिया। अब बस गोबरपुरी के गणेश मुक्तानंद के आने भर की देर है।

देर लगी आने में तुमको,
शुक्र है फिर भी आए तो!
दिल ने फिर भी आस न छोड़ी,
ऐसे हम घबड़ाए तो!

भला किया, आ गए। कोई न कोई शंकराचार्य के पीछे पड़े ही रहना। यह जरूरी है। इस देश के दुर्भाग्य में शंकराचार्य का बहुत बड़ा हाथ है। इस देश को भटकाने में, भरमाने में, इस देश की जीवन-ऊर्जा को विनष्ट करने में जितना महान कार्य शंकराचार्य ने किया है, किसी और ने नहीं। एक पलवे पर सब संत-महात्मा रख दो और दूसरे पलवे पर अकेले शंकराचार्य, तो भी वजनी पड़ेंगे। जैसे इस देश में जो भी सड़ा-गला था, सबका निचोड़ शंकराचार्य हैं। इस देश में जो भी गंदा था, व्यर्थ था, कूड़ा-करकट था, उस सबको सजा कर, रंग-रोगन देकर, नये वस्त्रों और नये आभूषणों में ढांक कर शंकराचार्य ने प्रस्तुत कर दिया है। जीवन की नकारात्मकता इस देश के प्राणों में छाया हुआ सनातन कैंसर है। और शंकराचार्य में आकर उस नकार भाव ने अपनी पूर्णता पा ली। यूं तो हम समझते हैं कि शंकराचार्य आस्तिक हैं, लेकिन मेरे लेखे नहीं।

मेरे लेखे, आस्तिक की परिभाषा से ईश्वर को मानने न मानने का कोई संबंध नहीं है। आस्तिक वह है जो जीवन को स्वीकार करे, जीवन में आस्था रखे; जो जीवन का समग्र अंगीकार करे, आलिंगन करे; जो जीवन को कह सके--हां। जिसके भीतर "नहीं" न हो, वही आस्तिक है।

इसलिए मैं बुद्ध को भी आस्तिक कहता हूं। उन्होंने ईश्वर को नहीं माना, आत्मा को भी नहीं माना, लेकिन फिर भी वे आस्तिक हैं। महावीर को आस्तिक कहता हूं। यद्यपि उन्होंने ईश्वर को नहीं माना। ईश्वर से आस्तिकता और नास्तिकता का संबंध छोड़ दो। यूं तो दुनिया में कितने लोग ईश्वर को मानने वाले हैं, लेकिन आस्तिक कहां? अब हमें आस्तिक की कुछ नई गहराई खोजनी होगी।

आस्तिक वह है, जिसे इस जीवन में, जीवन के कण-कण में, रंग-रंग में, श्वास-श्वास में भगवत्ता का बोध होता है। नहीं जाता मंदिर, नहीं जाता मस्जिद। जाए क्यों? क्योंकि सब जगह मंदिर है और सब जगह मस्जिद

है। नहीं झुकता पत्थरों की मूर्तियों के सामने। झुके क्यों? क्योंकि सभी जगह उसी परमात्मा की जीवंत मूर्तियां मौजूद हैं। फूलों के सामने झुक लेता है। हरे वृक्षों के पास झुक लेता है। चांद-तारों के साथ नाच लेता है। इंद्रधनुषों के साथ गुनगुना लेता है।

जीवन अपने समस्त रूपों में परम सत्य की अभिव्यक्ति है। इसके अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं है। लेकिन सदियों से यह जहर कूट-कूट कर तुम्हारे रग-रेशे में भरा गया है कि ईश्वर है जीवन-विरोधी; अगर ईश्वर को पाना है तो जीवन को इनकार कर देना होगा, जीवन से पीठ फेर लेनी होगी, जीवन के युद्ध से हट जाना होगा। और सबसे सुगम उपाय है जीवन से पीठ फेर लेने का--यह कह देना कि जीवन भ्रम है, माया है, झूठ है, है ही नहीं। जब है ही नहीं तो पीठ तो करनी ही होगी।

और मैं तुमसे कहता हूंः जीवन है। और जीवन से जिसने पीठ की, उसके सामने सिवाय नकार के और कुछ भी नहीं बचता। न फूलों के रंग बचते हैं, न कोयलों की कूक बचती है, न मोरों का नृत्य बचता है, न सौंदर्य, न सत्य, न प्रेम। उससे जीवन की सारी रसधार विदा हो जाती है। वह तो सूख रहता है। और ऐसे ही सूख गए, जीवन की रसधार से सब तरह से टूट गए लोगों को तुमने संत और महात्मा कहा है।

शंकराचार्य में यह नकार अपनी पराकाष्ठा पर पहुंच गया।

पराकाष्ठा यह है कि संसार है ही नहीं; यह जो दिखाई पड़ रहा है, यह झूठ है। और जो नहीं दिखाई पड़ रहा है, ब्रह्म, वह सत्य है। यह जो तुम्हारे अनुभव में आ रहा है, झूठ है; और जो तुम्हारे अनुभव में नहीं आ रहा है, वह सत्य है।

अनुभव को नकारना, निश्चित ही, जीवन के नीचे से जमीन खींच लेनी है। भारत की दरिद्रता, दीनता, दासता, इसमें शंकराचार्य जैसे लोगों का हाथ है। जब जीवन है ही नहीं, तो कौन चिंता करे? कौन फिकर ले? कौन उपजाए धन? जब कांचन छोड़ना है, तो फिर पैदा क्यों करना? भारत अपने हाथों कुरूप हो गया। जब कामिनी छोड़नी है, कांता छोड़नी है, तो फिर कांति की कौन चिंता करे? फिर रूप की और सौंदर्य की कौन साधना करे? धन त्याज्य है, इसलिए धन पैदा करने का सवाल नहीं उठता। कोई जहर के बीज तो बोता नहीं। और कांता त्याज्य है, स्त्री त्याज्य है।

और जिस देश में स्त्री अपमानित हो जाती है, जिस देश में स्त्री सम्मान खो देती है, उस देश में सभी का सम्मान खो जाता है; पुरुषों का भी, स्मरण रहे। क्योंकि अंततः तो स्त्री ही बेटों को भी बड़ा करेगी और बेटियों को भी बड़ा करेगी। आखिर बेटे भी तो स्त्री की ही कोख से जन्मेंगे। और जब स्त्री ही अपमानित हो गई हो तो उसकी कोख से जन्मे हुए पुरुषों का क्या सम्मान हो सकता है? और अपमानित, पददलित, शोषित, सब तरह से तिरस्कृत, निंदित स्त्री कैसे उन बच्चों को आत्म-गौरव दे सकेगी? कैसे बल दे सकेगी अपने पैरों पर खड़ा होने का? यह असंभव है!

मैं न तो धन का विरोधी हूं, न रूप का, न सौंदर्य का, न संगीत का। मैं तो विरोध इन मूढ़तापूर्ण बातों का कर रहा हूं, जिनके कारण हमारे जीवन की नींव ही गिर गई।

हम इस पृथ्वी पर पुरानी से पुरानी जाति हैं। और सारी सभ्यताएं नई हैं, हमारी सभ्यता प्रागैतिहासिक है; इतिहास की जहां तक खोज जाती है, उससे बहुत दूर, बहुत आगे तक हमारा फैलाव है। इस बीच दुनिया में बहुत सी संस्कृतियां पैदा हुईं। बेबीलोन! लेकिन अब कहां? खंडहर भी न बचे। असीरिया! लेकिन अब कहां? कोई नामलेवा भी न बचा। मिस्र ने अपने गौरव के शिखर देखे। लेकिन अब कहां? बातें पुरानी पड़ गईं। सिर्फ मरुस्थलों में खड़े पिरामिड उनकी याददाश्त रह गए। यूनान, जहां सुकरात और पाइथागोरस और हेराक्लाइटस और डायोजनीज जैसे लोग रहे। अब कहां? अब कहां वह हिम्मत? अब कहां वह शान? अब फूल नहीं आते, वृक्ष

कभी का सूख गया। रोम उठा और यूं उठा कि कहावत बन गई कि सभी रास्ते रोम तक जाते हैं; कहीं से भी चलो, रोम ही पहुंचना होगा। यूं सारे जगत का केंद्र बन गया। लेकिन अब क्या? अब रोम की क्या हैसियत?

एक यह देश है, जिसका जाना हुआ इतिहास कम से कम दस हजार साल पुराना है और न जाना इतिहास और भी कई हजार साल पुराना है। मगर क्या हुआ? इतने दिन से हम जमीन पर हैं, हम अपने पैर भी न जमा पाए। क्या हुआ? हम जीवन के मंदिर की बुनियाद भी न रख पाए। कहीं कोई बहुत गहरी और बुनियादी भूल हो गई। कहीं कोई ऐसी भूल हो गई है और इतनी पुरानी भूल है कि हम भूल ही गए कि वह भूल है; हमने उसे स्वीकार ही कर लिया है कि वह सत्य है।

और इस भूल में शंकराचार्य का सबसे बड़ा अनुदान है। अगर भारत के दुश्मनों की मैं फेहरिस्त बनाऊं तो शंकराचार्य का नाम नंबर एक रखूंगा। जगत माया है और ब्रह्म सत्य है! शीर्षासन करवा दिया! जगत, जो कि परम सत्य है, ठोस है, सामने है, उसे असत्य कह दिया। और ब्रह्म, जिसका तुम्हें कोई पता नहीं, जिससे तुम्हारी कोई पहचान नहीं, मुलाकात नहीं, उसको सत्य कह दिया। उस सत्य ब्रह्म के लिए इस जगत को छोड़ना जरूरी है। और इस जगत को छोड़ने का प्रारंभ कैसे होगा? कामिनी को छोड़ो! कांचन को छोड़ो! और यही उनके हिसाब में चरित्र है, शील है। मेरे हिसाब में यह शील नहीं, चरित्र नहीं।

पूर्णानंद, शंकराचार्य के ये उत्तर यूं ऊपर-ऊपर से तो प्यारे लगेंगे, क्योंकि हमने इतनी बार सुने हैं कि हमें कंठस्थ हो गए हैं। अब कौन इन पर इनकार करेगा?

इसलिए तुमने पूछा कि क्या आपको आद्य शंकराचार्य के इन उत्तरों पर भी कोई आपत्ति है?

तुमने सोचा होगा, इन पर तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती। अब कैसा प्यारा वचन लगता है!

किं भूषणाद्भूषणमस्ति शीलं
तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।

"आभूषणों में श्रेष्ठ आभूषण क्या है? शील।"

लेकिन शील से अर्थ क्या है शंकराचार्य का? चरित्र से उनका क्या प्रयोजन है? इसको ही वे चरित्र कहते हैं--जगत से भाग जाने को, भगोड़ेपन को, पलायनवाद को। इस नास्तिकता को ही वे चरित्र कहते हैं। मैं नहीं कहूंगा। शील की बजाय तो तुम अगर मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा शीला बेहतर, कम से कम मेरे शोफर का काम तो करती है। शील को क्या करोगे? ओढ़ोगे, पहनोगे, खाओगे, पीयोगे, क्या करोगे? किसी काम का नहीं। शोफर भी नहीं बन सकता।

और शील को मूल्य देना आधारभूत भ्रांति है। अगर तुमने बुद्ध से पूछा होता यही, तो बुद्ध कहतेः सम्मासति! सम्यक स्मृति!

मूर्च्छा हमारी बीमारी है। मूर्च्छित व्यक्ति को लाख चरित्रवान बनाने की कोशिश करो, चरित्र ऊपर ही ऊपर रहेगा, भीतर तो मूर्च्छा ही भरी रहेगी। यूं समझो कि कोई काला है, उसको रंग दिया, गोरा कर दिया। इससे वह कुछ गोरा नहीं हो जाएगा। भीतर तो वह जैसा है वैसा है।

मुल्ला नसरुद्दीन बूढ़ा हो गया था। सफेद बाल, सफेद दाढ़ी। लगता था जैसे ओल्ड टेस्टामेंट का कोई पैगंबर। लखनऊ की नुमाइश देखने गया था। नुमाइश और फिर उसमें दिल न आ जाए! और फिर लखनऊ की नुमाइश! सुंदर स्त्रियां! धक्का-मुक्की करने लगा। भारतीयता प्रकट हुई। सोचा--यहां भीड़-भाड़ में कौन देखता है! शील वगैरह तो बातचीत करने के लिए हैं। भीड़-भाड़ में कौन देखता है!

लेकिन एक जवान स्त्री ने कहा कि शर्म नहीं आती। बाल सफेद हो गए और इस तरह की बेहूदगी करते हो, चिकोटी काटते हो!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, बाई, अब तुझसे क्या छिपाना! अरे बाल सफेद हो गए तो मैं क्या करूं? दिल तो अभी भी काला है! सवाल दिल का है, सवाल बालों का नहीं है।

अभी स्वीडन में एक मनोवैज्ञानिक पर बड़ी मुसीबत आई है। मुसीबत यह आई है कि उसने एक इस तरह का शोधकार्य किया है कि उसको मारे जाने तक की धमकी दी जा रही है। पत्र आ रहे हैं उसके पास रोज, फोन-कॉल आते हैं कि तुम अपने शोधकार्य को छापो मत। अखबारों में सिर्फ संक्षिप्त विवरण छपा है; उससे ही बहुत तहलका मच गया है।

उसका शोधकार्य यह है... स्वीडन जैसे मुल्कों में उम्र तो बहुत बढ़ गई है। औसत उम्र सत्तर साल हो गई है। तो सौ साल, एक सौ दस साल, एक सौ बीस साल के बूढ़े मिल जाने आसान हो गए हैं। ... उसने एक शोधकार्य किया है कि बूढ़ों के जीवन में कामवासना की क्या स्थिति है?

तो उसने सत्तर साल से लेकर पंचानबे साल तक के लोगों के जीवन में खोजबीन की। उसने एक हजार बूढ़ों से अंतरंग भेंटवार्ताएं लीं और उनसे कहा कि तुम्हारे नाम प्रकट नहीं किए जाएंगे। उन्होंने कहा कि हमारा नाम भर प्रकट नहीं होना चाहिए, नहीं तो हम बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। क्योंकि कोई नब्बे साल का बूढ़ा, उसके बेटे हैं, बेटों के बेटे हैं, उनके भी बेटे हैं। अब इस उम्र में क्या सच्ची बातें कहो! मगर चूंकि नाम छिपाए रखने की बात तय हो गई थी, जो उत्तर मिले वे हैरान करने वाले हैं।

उत्तर ये हैं कि पंचानबे साल की उम्र में भी कामवासना नहीं जाती। बूढ़ा सिर्फ दिखाता है, यूं दिखाता है कि जैसे यह सब तो फिजूल ही है, ये तो बचपन की बातें हैं, ये तो जवानी के खिलौने हैं। यूं समझाता है अपने मन को कि अरे यह सब तो माया, यह सब संसार! अब हम तो इसके पार हुए, हम तो वृद्ध हुए!

जिन एक हजार लोगों के उसने जीवन में प्रवेश करने की कोशिश की है और अंतरंग उनसे वार्ताएं ली हैं, उसके निष्कर्ष बड़े हैरान करने वाले हैं। वह कहता है, नब्बे और पंचानबे साल का बूढ़ा आदमी भी कामवासना से उतना ही पीड़ित होता है जितना जवान, थोड़ा ज्यादा ही। फर्क इतना ही होता है कि जवान आदमी कुछ कर सकता है, बूढ़ा आदमी कुछ कर नहीं सकता; उसकी सारी वासना मन ही मन में घूमती है। और डर के कारण कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि बच्चे क्या कहेंगे! बच्चों के बच्चे क्या कहेंगे! उनके भी बच्चे, वे क्या कहेंगे--कि अरे बुढ़ापे में यह तुम क्या कर रहे हो! किसी बूढ़ी से दोस्ती कर ले, प्रेम-पत्र लिखे, फिल्मी गाने गाए--झंझट खड़ी घर में न हो जाए!

इस आदमी के पास, इस मनोवैज्ञानिक के पास सैकड़ों पत्र आए हैं, तार आए हैं, फोन आए हैं कि तुम अपनी रिपोर्ट प्रकाशित मत करना। क्योंकि तुम्हारी रिपोर्ट, सिर्फ अखबारों में संक्षिप्त सूत्र आए हैं, लेकिन इससे हमारे घरों में बड़ी उपद्रव की बात खड़ी हो गई है। बूढ़ों को इससे प्रोत्साहन मिल रहा है। अब हम यह बरदाश्त न कर सकेंगे कि हमारे बूढ़े फिर स्त्रियों के पीछे भटकें। हमसे न देखा जाएगा। हमारी भी बदनामी का सवाल है। लोग हमसे क्या कहेंगे कि अरे तुम्हारे परदादा कल फिल्मी गाना गा रहे थे, सीटी बजा रहे थे! रिपोर्ट प्रकाशित नहीं होनी चाहिए।

और यह हालत कोई स्वीडन की नहीं है, आदमी सब जगह एक सा आदमी है। ध्यान के बिना वासना जाती नहीं। चरित्र को ऊपर से थोप लो, इससे कुछ भी नहीं होता। आदमी शरीर से बूढ़ा हो जाता है, लेकिन मन से तो कोई कभी बूढ़ा नहीं होता। ध्यान के अतिरिक्त कोई मन से मुक्त नहीं होता। मन तो रहेगा, मरते दम तक रहेगा। आमतौर से मरते वक्त आदमी के मन में कामना के ही विचार होते हैं, वासना के ही विचार होते हैं। जिसको जिंदगी भर दबाया है वही मरते वक्त उभर कर सामने आ जाता है, क्योंकि दबाने की ताकत भी समाप्त हो गई।

और इसीलिए तो फिर दूसरा जन्म तत्क्षण हो जाता है। क्योंकि वही वासना, वही कामना फिर नये जन्म की शुरुआत बन जाती है--वही बीज। इधर हम मरे नहीं, उधर जन्मे नहीं।

अब जैसे इधर सोहन बैठी हुई है। अगर बुद्ध के ढंग से कहो... बुद्ध का यह ढंग था कहने का... अगर सोहन बुद्ध के सत्संग में रही होती तो इससे उन्होंने कहा होता--मैं कहे देता हूं--कि पहले जमाने में, पूर्वकाल में हुए सोहनी-महीवाल। मिलना न हो सका। सो फिल्मी गीत गाते ही गाते जिंदगी बीती।

फिर मरे। फिर पूना में हुए सोहन-माणिक। वही सोहनी-महीवाल! जरा सा नाम बदलाः सोहन-माणिक। सौभाग्य से या दुर्भाग्य से पिछले जन्म में तो मिलना नहीं हो पाया था, इसलिए फिल्मी गाना चला। तुमने सोहनी-महीवाल फिल्म देखी हो, बस समझ जाना। या हीर-रांझा या लैला-मजनू। सब मौजूद हैं। जाएंगे कहां? मैं कहता हूं सौभाग्य या दुर्भाग्य से--तुम समझ लेना मतलब--तब की बार मिलना नहीं हुआ, इस बार सौभाग्य या दुर्भाग्य से मिलना हो गया। सो महीवाल अर्थात माणिक लाल बाफना, वे भवानी पेठ में गुड़ की दुकान करते हैं। अब कहां फिल्मी गाना! अब गुड़ बेचें कि फिल्मी गाना गाएं! गुड़ बेचें, मक्खियां उड़ाएं। और सोहन बाल-बच्चों की और बाल-बच्चों के बाल-बच्चों की चिंता में लगी है। अब रो रहे हैं। तब तो संन्यासी हुए कि अब छुटकारा चाहिए।

सोहनी-महीवाल को भी मैंने कहा था कि भैया, छुटकारा पा लो। नहीं माने। मानते कैसे? लेकिन सोहन और माणिक मान गए। माणिक बाबू गुड़ बेच-बेच कर समझ गए कि संसार व्यर्थ। कुछ नहीं, बस गुड़ और मक्खियां! और सोहन भी समझ गई। पुरानी कहावत है नः गुरु तो गुड़ रहे, चेला शक्कर हो गए! इसको यूं कर लो कि गुरु तो गुड़ ही रहे, सोहन शक्कर हो गई। अब दोबारा जन्म नहीं होगा। अब फल भोग लिया।

बूढ़ा आदमी भी उसी जाल में है, जिसमें जवान। वही खिलौने अभी भी उसके मन को आकर्षित करते हैं। हालांकि अब वह प्रकट नहीं कर सकता, अब कह नहीं सकता, अब बदनामी होगी। ये तुम्हारे साधु-संन्यासी, तुम्हारे महात्मा, जो शील की साधना कर रहे हैं, ये कोई साधना नहीं है। यह सिर्फ ढोंग, यह पाखंड। ये ऊपर से राम-नाम की चदरिया ओढ़ रहे हैं।

मैं शंकराचार्य से राजी नहीं होऊंगा। मैं बुद्ध से राजी होऊंगाः सम्मासति। सम्यक स्मृति ही एकमात्र आभूषण है! या मैं कबीर से, नानक से राजी होऊंगा। कबीर और नानक से पूछोगे कि आभूषणों में श्रेष्ठ आभूषण क्या है? तो वे कहेंगेः सुरति। वह सम्यक स्मृति, सम्मासति का ही रूप है--सुरति। अपना स्मरण, आत्मबोध। महावीर से पूछोगे, महावीर कहेंगेः विवेक, अमूर्च्छा, जागृति। इन सबको ही मैं ध्यान कह रहा हूं। ये सब ध्यान के ही अंग-प्रत्यंग हैं। ध्यान के मंदिर के अलग-अलग द्वार। मगर आभूषणों में एक ही आभूषण है और वह हैः भीतर से मूर्च्छा का टूट जाना और जागरण की ज्योति का जल जाना। इससे कम किसी चीज को मैं आभूषण मानने को राजी नहीं हूं।

हां, उसके पीछे शील अपने आप आता है। वह परिणाम है। उसे लाना नहीं पड़ता। जिसके भीतर जागरण है, उसके जीवन में भी जागरण की छाप होती है। जिसके भीतर जागरण है, उसके बाहर भी जागरण की किरणें आती हैं। उसके आचरण में, उसके व्यवहार में, उसके उठने-बैठने तक में एक प्रसाद होता है, एक सौंदर्य होता है। उससे हिंसा नहीं हो सकती। उससे किसी दूसरे को कष्ट नहीं दिया जा सकता। वह असंभव है।

नागार्जुन से एक चोर ने कहा था कि तुम ही एक आदमी हो जो शायद मुझे बचा सको। यूं मैं बहुत महात्माओं के पास गया, लेकिन मैं जाहिर चोर हूं, मैं बड़ा प्रसिद्ध चोर हूं। और मेरी प्रसिद्धि यह है कि मैं आज तक पकड़ा नहीं गया। मेरी प्रसिद्धि इतनी हो गई है कि जिनके घर मैंने चोरी भी नहीं की, वे भी लोगों से कहते हैं कि उसने हमारे घर चोरी की। क्योंकि मैं उसी के घर चोरी करता हूं जो सच में ही धन वाला है, हर किसी ऐरे-गैरे-नत्थूखैरे के घर चोरी नहीं करता। सम्राटों पर ही मेरी नजर होती है। और कोई मुझे पकड़ नहीं पाया है। लेकिन तुमसे मैं पूछता हूं। और महात्माओं से पूछता हूं तो वे कहते हैंः पहले चोरी छोड़ो।

रहे होंगे शंकराचार्य जैसे लोग। पहले चोरी छोड़ो, पहले अचौर्य व्रत धारण करो, फिर आगे बात होगी।

और उस चोर ने कहा, आप समझ सकते हैं कि यह तो मैं नहीं छोड़ सकता। यह छोड़ सकता तो इन महात्माओं के पास ही क्यों जाता, खुद ही छोड़ देता। छोड़ने का ढोंग कर सकता हूं, लेकिन ढोंगी मुझे नहीं

होना। कोई ऐसी तरकीब बता सकते हो कि मुझे छोड़ना न पड़े और छूट जाए? क्योंकि छोड़ना पड़े तो मुझसे न छूट सकेगा। यह तो मैं कर-कर के देख चुका। बहुत नियम, बहुत संयम, बहुत दफे कसमें खा लीं, व्रत ले लिए। मगर सब व्रत टूट गए, सब कसमें टूट गईं और हर बार चित्त आत्मग्लानि से भर गया, क्योंकि मैं फिर-फिर वही कर लेता हूं।

नागार्जुन ने कहा कि तूने फिर अब तक किसी महात्मा का सत्संग किया ही नहीं। तू भूतपूर्व चोरों के पास चला गया होगा। यह तो सीधी-सादी बात है। चोरी से क्या लेना-देना है? चोरी जी भर के कर।

चोर चौंका। चोर भी चौंका! उसने कहा, क्या कहते हो, चोरी जी भर के करूं!

नागार्जुन ने कहा, चोरी जी भर के कर। चोरी से कुछ बनता-बिगड़ता नहीं। सिर्फ एक बात का ध्यान रख कि चोरी करते वक्त होश सम्हाले रखना। जान कर चोरी करना कि चोरी कर रहा हूं, कि यह देखो ताला खोला, यह देखो तिजोड़ी खोली, यह देखो हीरे निकाले, ये हीरे मेरे नहीं हैं, दूसरे के हैं। बस होश रहे। रोकना मत। चोरी करने को मैं कहता नहीं कि मत कर। जी भर के कर, दिल खोल के कर। होशपूर्वक करना।

पंद्रह दिन बाद वह चोर आया और उसने कहा कि तुमने मुझे फांसा, तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। कोई महात्मा मुझे मुश्किल में न डाल सका था। कसमें ले लेता था, तोड़ देता था। फिर कसमें लेना और तोड़ना ही मेरा ढंग हो गया, मेरे जीवन की शैली हो गई। वही मेरी आदत हो गई। लेते वक्त भी जानता था कि तोडूंगा। और तोड़ते वक्त जानता था कि फिर ले लूंगा, ऐसा क्या है! लेकिन तुमने मुझे उलझा दिया। यह तुमने क्या बात कही! अगर होश रखता हूं तो तिजोड़ी खुली रह जाती है। हीरे सामने होते हैं, हाथ नहीं बढ़ता। और अगर हाथ बढ़ता है तो होश खोता है। दोनों बातें साथ नहीं सधतीं। या तो चोरी करूं तो होश खोता है और या होश सम्हालूं तो चोरी खोती है।

नागार्जुन ने कहा, अब यह तू जान। अब यह तेरी झंझट। हमारा काम खतम हो गया। अब तुझे जो बचाना हो! होश बचाना हो, होश बचा लो; चोरी बचाना हो, चोरी बचा ले। हमें क्या लेना-देना है? तेरी जिंदगी, तू जान।

चोर ने कहा, और मुश्किल खड़ी कर दी। क्योंकि दो बार होश को बचा कर बिना चोरी किए हुए घर लौट आया। और जीवन में जो आनंद और जो शांति मैंने पाई उन रातों में, ऐसी कभी न पाई थी। अगर हीरे भी ले आता तो किसी काम के न थे। हीरे छोड़ कर आया, हाथ में आ गए हीरे छोड़ कर आया--तिजोड़ी खोल ली थी, सामने हीरे दमदमा रहे थे, उनको छोड़ कर आया--और घर आकर ऐसी तृप्ति पाई, ऐसा संतोष पाया, ऐसा आनंद पाया, ऐसी प्रफुल्लता, जैसी मैंने कभी अनुभव न की थी। तो मूर्च्छा तो अब फिर वापस नहीं ले सकता। जागृति तो बचानी ही होगी।

तो नागार्जुन ने कहा, फिर तू समझ। जागृति बचानी है तो चोरी जाएगी। दोनों साथ नहीं चल सकतीं।

शील, चरित्र, आचरण ऊपरी बात है। समाधि, ध्यान भीतरी बात है। मैं तो आभूषण कहूंगा सुरति को, समाधि को, ध्यान को, जागरण को। शील तो उसकी साधारण सी अभिव्यक्ति है। अपने आप जैसे तुम्हारे पीछे छाया चलती है, ऐसे ही समाधि के पीछे सम्यक आचरण चलता है। सम्यक बोध हो तो उसके पीछे सम्यक आचरण चलता है। और अगर तुम मूर्च्छित हो तो लाख उपाय करो, तुम्हारे सब उपाय व्यर्थ जाएंगे, तुम मूर्च्छित ही रहोगे। तुम जहां रहोगे वहां मूर्च्छित रहोगे।

शंकराचार्य कहते हैंः "सबसे श्रेष्ठ तीर्थ क्या है? विशुद्ध किया हुआ अपना मन ही।"

अब इससे भी गलत कोई और बात हो सकती है, पूर्णानंद? मन कभी विशुद्ध होता है?

या तो मन होता है या नहीं होता है। मन और विशुद्ध! यह तो यूं हुआ जैसे जहर और शुद्ध! कितना ही शुद्ध हो, जहर तो जहर ही रहेगा, और जहर हो जाएगा। यह तो यूं हुआ जैसे बीमारी और स्वस्थ। यह तो यूं हुआ कि जैसे तूफान और शांत! भाषा में चलती हैं बातें। भाषा में तो क्या नहीं चलता!

मुल्ला नसरुद्दीन के घर एक मेहमान आया। और उसने कहा, भई, बहुत प्यास लगी है। एक पानी का गिलास!

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, असंभव! यह नहीं हो सकता।

उस आदमी ने कहा, हद हो गई! एक पानी का गिलास नहीं दे सकते मेहमान को! इसमें ऐसी क्या असंभावना है?

मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा, पानी का गिलास हो ही नहीं सकता। गिलास में पानी कहो तो दे दूं।

अब कुछ लोग होते हैं जो भाषा को पकड़ने वाले होते हैं। उसने भाषा पकड़ ली--पानी का गिलास कहीं होता है? कैसे पानी का गिलास बनाओगे?

मगर भाषा में चलता है। जैसे तूफान आया और शांत हो गया, तो हम कहते हैं--तूफान शांत हो गया। हमें कहना चाहिए--तूफान न हो गया। तूफान शांत होने का कोई मतलब ही नहीं होता। तूफान यानी अशांति। अशांति कैसे शांत हो सकती है? अभाव हो सकता है।

इसलिए जिन्होंने जाना उन्होंने मन को विशुद्ध करने को नहीं कहा है। उन्होंने मन को अमन करने को कहा है। नानक ने जगह-जगह कहा हैः अ-मनी अवस्था। शुद्ध मन की अवस्था नहीं, अ-मनी अवस्था। झेन फकीर कहते हैंः नो माइंड। प्योर माइंड नहीं, शुद्ध मन नहीं--मन से मुक्ति। जब तक मन है तब तक अशुद्धि है। मन और अशुद्धि पर्यायवाची हैं, इनमें कुछ भेद नहीं।

हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।
गली-गली भटके, यह आवारा मन।।
एक से हजार हुआ, यह सारा मन।
गिर कर न सिमटे फिर, यह पारा मन।
खुद को ही जीत-जीत, है हारा मन।
कितना बेबाक, कितना बेचारा मन।
हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।
गली-गली भटके, यह आवारा मन।।
शूल-सा चुभे, यह फूल-सा प्यारा मन।
अंधा, पर सबकी आंखों का तारा मन।
खुद के न पांव, पर सबका सहारा मन।
हर गले का हार, यह गले की कारा मन।
हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।
गली-गली भटके, यह आवारा मन।।
हर कहीं दिल दे बैठे, यह क्वांरा मन।
कोठे का किवारा, मंदिर का भी द्वारा मन।
हर बर्तन की हो ले, ऐसी जलधारा मन।
कितना भोला है और कितना हुशियारा मन!
हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।

गली-गली भटके, यह आवारा मन।।

नये-नये रूप धरे, फिर वही दुबारा मन।

बेनकाब कैसे हो, यह सजा-संवारा मन।

छुप-छुप कर बदले ले, यह इनकारा मन।

जाने कब डस ले, यह फन मारा मन।

श्वान-सा हो संग, फिर-फिर दुतकारा मन।

हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।

गली-गली भटके, यह आवारा मन।।

पीकर न प्यास बुझे, सागर-सा खारा मन।

कस्तूरी मृग-सा फिरे, वन-वन यह मारा मन।

होश से मिले तो हरदम करे किनारा मन।

देखते ही छार हो, यह अनंग-अंगारा मन।

शव से शिव-रूप हुआ, यह मन से मारा मन।

हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।

गली-गली भटके, यह आवारा मन।।

एक अबूझ पहेली, एक जादुई पिटारा मन।

अभी लहर, अभी भंवर, अभी किनारा मन।

हमसे ही दगा करे, बेवफा हमारा मन।

दुश्मन से भी जालिम, दोस्त से भी प्यारा मन।

हर घर अपना घर, पर बंजारा मन।

गली-गली भटके, यह आवारा मन।।

इस मन को शुद्ध करने का कोई उपाय न कभी था, न हो सकता है। मन से मुक्त होने का उपाय है। मन के पार होने का उपाय है। मन के अतिक्रमण का उपाय है।

इसलिए मैं न कहूंगा कि सबसे श्रेष्ठ तीर्थ क्या है?

शंकराचार्य कहते हैंः "विशुद्ध किया हुआ अपना मन ही। तीर्थं परं किं स्वमनो विशुद्धम्।"

मन विशुद्ध भी हो जाए तो अपना है। अभी भी मैं-भाव बना रहेगा। अहंकार बना रहेगा। शुद्ध हो जाएगा अहंकार, पवित्र अहंकार हो जाएगा, पायस ईगो! और भी भयंकर बात।

शून्यता लानी है, शुद्धता नहीं।

मुझसे पूछो तो मैं कहूंगाः शून्यता ही एकमात्र शुद्धता है। और जहां तक मन है वहां तक किसी न किसी रूप में अशुद्धता रहेगी। मन यानी भरा हुआ। मन है क्या? विचार, वासना, कल्पना, स्मृति, अतीत, भविष्य, आपाधापी, बेचैनी, विडंबना, कुतूहल, प्रश्नों का ढेर, बेबूझ पहेलियां। मन है क्या? सब तरह के जंजालों का नाम मन है। इसको कैसे विशुद्ध करोगे? हां, इसका अतिक्रमण हो सकता है। इसके पार जाया जा सकता है। और उस पार जाने का नाम ही तीर्थ है। और जो पार चला गया, उसे मैं तीर्थंकर कहता हूं।

शून्यता की एक शराब है, एक मस्ती है। जो मन को शुद्ध करने में लगेगा, उसमें मस्ती नहीं हो सकती। वह हमेशा अकड़ा-अकड़ा रहेगा, सम्हला-सम्हला रहेगा। क्योंकि पारे सा है मन, जरा में छिटक जाए, जरा में

भटक जाए। अभी सब ठीक था, अभी सब खराब हो जाए। देर नहीं लगती उसके बिगड़ने में। वह तो बिगड़ने को आतुर ही बैठा है, अवसर चाहिए।

तो जो आदमी मन को शुद्ध करने में लगेगा, वह भगोड़ा हो ही जाने वाला है। वह छिपेगा जंगल में, पहाड़ पर, गुफाओं में, मंदिरों में। वह भागेगा दुनिया से, क्योंकि यहां दुनिया में हजार अवसर हैं, हजार चुनौतियां हैं। और मन हर चुनौती को पकड़ लेता है। और वह कहता है, जरा इसका मजा तो ले लो। और तो कोई मजा तुमने जाना नहीं है।

एक बात तुमसे कहूं, बुनियादी बात, जो मेरे प्रत्येक संन्यासी को स्मरण रखनी चाहिएः छोटे मजे छोड़े जा सकते हैं तभी, जब बड़ा मजा मिले; छोटा धन छोड़ा जा सकता है तभी, जब बड़ा धन मिले; छोटे घर छोड़े जा सकते हैं तभी, जब बड़ा महल मिले। जिस दिन तुम्हारे जीवन में आनंद की पुलक होगी, शून्य का संगीत होगा, यूं जैसे कि शून्य ने तुम्हारे भीतर शराब बहा दी, फिर मन तुम्हें नहीं भटका सकेगा। क्या खाक भटकाएगा? जिसने हीरों को पा लिया वह कोई कंकड़-पत्थर बीनेगा? और जब तक कंकड़-पत्थर बीनता है, तब तक उसे बचाने का एक ही उपाय है कि जहां-जहां कंकड़-पत्थर हों वहां मत जाने देना, नहीं तो बीन लेगा। उसे दूर ही रखना कंकड़-पत्थर से। उसको ऐसी जगह रखना जहां कंकड़-पत्थर रंगीन मिलते ही न हों। बिठा देना कहीं गुफा में, किसी रेगिस्तान में, किसी आश्रम में बंद कर देना कि कंकड़-पत्थर न मिल जाएं, नहीं तो फौरन बीन लेगा।

यह मेरा हिसाब नहीं। यह कोई बचाव हुआ? यह कोई क्रांति हुई? मैं तो कहता हूंः हीरे पा लो, फिर कंकड़-पत्थर कितने ही पड़े रहें, पड़े रहें, तुम्हें कोई अंतर न पड़ेगा। क्या तुम सोचते हो, हीरे मिल जाएं और तुम्हारे हाथ और तुम्हारी झोली हीरों से भरी हो तो तुम कंकड़-पत्थर उठाओगे? असंभव!

इसलिए मैं तो अपने इस मंदिर को मयकदा कहता हूं--इसी कारण। मैं तुमसे शराब छोड़ने को नहीं कहता, मैं तो तुमसे असली शराब पीने को कहता हूं। फिर नकली शराब छूट जाएगी। आत्मा में ढली पी लो तो अंगूर की ढली छूट जाएगी।

ये है मैकदा, यहां रिंद हैं, यहां सबका साकी इमाम है
यह हरम नहीं अरे शेख जी, यहां पारसाई हराम है
ये है मैकदा...
जो जरा सी पीकर बहक गया, उसे मैकदे से निकाल दो
यहां कमनजर का गुजर नहीं, यहां अहले-जर्फ का काम है
ये है मैकदा...
कोई मस्त है, कोई तश्नालब, तो किसी के हाथ में जाम है
मगर इसका कोई करे भी क्या, ये तो मैकदे का निजाम है
ये है मैकदा...
ये जनाबे शेख का फलसफा, भी अजब है सारे जहान से
जो वहां पियो तो हलाल है, जो यहां पियो तो हराम है
ये है मैकदा...
इसी कायनात में ऐ जिगर, कोई इंकलाब उठेगा फिर
कि बुलंद हो के भी आदमी यहां ख्वाहिशों का गुलाम है
ये है मैकदा...
ये है मैकदा, यहां रिंद हैं, यहां सबका साकी इमाम है
यह हरम नहीं अरे शेख जी, यहां पारसाई हराम है

पारसाई का अर्थ होता हैः संयम।

ये है मैकदा, यहां रिंद हैं...

यह मैकदा है, यहां पियक्कड़ हैं।

... यहां सबका साकी इमाम है

यहां तो हम एक ही तरह के इमाम को पहचानते हैं--साकी को। साकी सूफियों की भाषा में परमात्मा का नाम है--जो ऐसी पिलाए, ऐसी पिलाए कि होश भी आए, बेहोशी भी आए; जो ऐसी पिलाए, ऐसी पिलाए कि होश भी आए और बेहोशी भी आए, ऐसी आए कि फिर कभी जाए नहीं। होश और बेहोशी साथ-साथ आए और सदा के लिए आए।

यह हरम नहीं अरे शेख जी...

ऐ मुल्लाओ, ऐ पंडितो, ऐ अयातुल्लाओ, पोपो-पादरियो-पुरोहितो!

... यहां पारसाई हराम है

यहां एक ही चीज पाप है और वह है संयम। तुम कहोगे मैं भी क्या बात कह रहा हूं! मगर मैं भी क्या करूं? ये है मैकदा!

ये है मैकदा, यहां रिंद हैं, यहां सबका साकी इमाम है

यह हरम नहीं अरे शेख जी, यहां पारसाई हराम है

जो जरा सी पीकर बहक गया, उसे मैकदे से निकाल दो

जो जरा सी पीकर बहक जाए, उसने अभी पीना जाना ही नहीं, पीने की कला नहीं सीखी। जो जरा सी पीकर बहक जाए, उसने अभी सागर पीने नहीं सीखे। और यहां हम बूंद-बूंद पीना नहीं सिखाते, सागर ही पीना सिखाते हैं।

यहां कमनजर का गुजर नहीं...

यहां ओछी दृष्टि वालों का कोई गुजर नहीं। वे हिंदू हों कि मुसलमान कि ईसाई कि पारसी कि सिक्ख कि जैन कि बौद्ध, जिनकी छोटी नजर है, ओछी नजर है, उनका यहां कोई काम नहीं।

यहां कमनजर का गुजर नहीं, यहां अहले-जर्फ का काम है

यहां तो उनका काम है जिनमें सच में योग्यता हो। अहले-जर्फ! जिनमें पात्रता हो, जो कि शराब को झेल सकें, जो कि जाम बन सकें।

कोई मस्त है, कोई तश्नालब, तो किसी के हाथ में जाम है

मगर इसका कोई करे भी क्या, ये तो मैकदे का निजाम है

यहां तो सब तरह के लोग होंगे--कोई मस्त, पीकर मस्त, और कोई प्यास में भी मस्त!

कोई मस्त है, कोई तश्नालब...

कोई पीकर मस्त है, कोई प्यास में भी मस्त है। किसी के हाथ में जाम है और किसी के हाथ में जाम भी नहीं। मगर मस्ती है।

मगर इसका कोई करे भी क्या...

इसका कुछ किया नहीं जा सकता, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति की अपनी निजता है। संयम सारे व्यक्तियों को पोंछ डालता है, उनकी निजता को मिटा देता है, उनके व्यक्तित्व को एक सांचे में ढाल देता है। और जहां सांचा है वहां आदमी मर जाता है, वहां आत्मा मर जाती है।

ये जनाबे शेख का फलसफा, भी अजब है सारे जहान से

मगर ये तथाकथित धार्मिक लोग, इनका फलसफा भी बड़ा अजीब है। ये कहते हैं, यहां तो सुख वर्जित है और वहां परलोक में... जो यहां सुख को छोड़ेगा वहां सुख को पाएगा। यह कैसा गणित है? यहां तो शंकराचार्य

कहते हैंः धन छोड़ो! कहते हैंः कांचन और कांता छोड़ो! और पाओगे क्या? स्वर्ग में सोना ही सोना है। सोने के रास्ते, हीरे-जवाहरातों से लदे हुए वृक्ष। यहां छोड़ो और वहां पाओगे। यहां कांता को छोड़ो और वहां इंद्र महाराज क्या कर रहे हैं स्वर्ग में बैठे? अप्सराओं को नचा रहे हैं! थके भी नहीं; अप्सराएं भी थक गई होंगी। छुट्टी भी कभी वहां होती है, इसका भी किसी पुराण में उल्लेख नहीं। रविवार आता ही नहीं, चलता ही रहता है नाच। इंद्र महाराज का कुल काम इतना है कि मेनका, उर्वशी इत्यादि-इत्यादि महिलाएं नाच रही हैं। देवगणों का काम क्या है--भोग! यहां जिन्होंने त्याग किया है, संयम किया है, उनको स्वर्ग में खूब भोगने का अवसर मिलेगा। क्या अजीब फलसफा है!

ये जनाबे शेख का फलसफा, भी अजब है सारे जहान से

जो वहां पियो तो हलाल है, जो यहां पियो तो हराम है

और मुसलमानों ने तो गजब कर दिया! वे तो कहते हैंः बहिश्त में, स्वर्ग में शराब के चश्मे बह रहे हैं। यहां पीयो तो हराम और वहां पीयो तो हलाल! यहां पीयो तो पाप और वहां पीयो तो पुण्य! यह कैसा फलसफा? यह कैसा दर्शन?

इसी कायनात में ऐ जिगर, कोई इंकलाब उठेगा फिर

आ गई है जरूरत किसी बड़ी क्रांति की, किसी महाक्रांति की।

इसी कायनात में ऐ जिगर, कोई इंकलाब उठेगा फिरकि बुलंद हो के भी आदमी यहां ख्वाहिशों का गुलाम है

ये भी ख्वाहिशें हैं--स्वर्ग की, मोक्ष की। ये भी वासनाएं हैं, इनसे भी आदमी मुक्त हो तो ही आदमी अपनी परम स्वतंत्रता को पा सकता है।

लेकिन इनसे आदमी तभी मुक्त होगा जब भीतर के आनंद के झरने बह उठें। फिर किसको फिक्र पड़ी बहिश्त की! कौन फिकर करता है जन्नत की! फिर तो जहां हो वहीं जन्नत है। फिर तो तुम ही जन्नत हो, तुम ही स्वर्ग हो। फिर मरने के बाद नहीं है मोक्ष। मोक्ष तो ध्यानी की श्वास-श्वास में है। मोक्ष तो समाधिस्थ के रोएं-रोएं में है। समाधिस्थ की छाया भी किसी पर पड़ जाए तो उसे भी थोड़ा मोक्ष का स्वाद आ जाता है।

शंकराचार्य का यह कहना कि इस संसार में कौन सी वस्तुएं त्याज्य हैं--भारत की पिटी-पिटाई बकवास है--कांचन और कांता, स्त्री और धन।

और मजा यह है कि ये भारतीय सारे तथाकथित ज्ञानी जैसे पुरुषों को ही संबोधन कर रहे हैं; स्त्रियों से तो कोई प्रयोजन ही नहीं है। और मजा ऐसा है कि इनकी सभाओं में सुनने वाली स्त्रियां ही ज्यादा। पुरुष तो कुछ आ जाते हैं लफंगे धक्का-मुक्की करने या अपनी-अपनी पत्नियां की रक्षा करने, कि कहीं महात्मा किसी को ले न भागें! ब्रह्मचारियों का भरोसा क्या! और बाल-ब्रह्मचारियों का तो बिल्कुल भरोसा नहीं। तो अपनी पत्नियों पर नजर रखने कुछ पुरुष आ जाते हैं और कुछ पुरुष दूसरों की पत्नियों पर नजर रखने आ जाते हैं। महात्माओं से उन्हें क्या लेना-देना? और ये महात्मा, स्त्रियों के बीच ही इनका सारा धंधा चलता है। तुम जाकर देख लो, जहां भी महात्मा बोल रहे हों, स्त्रियां बैठी हैं, मगन होकर सिर हिला रही हैं। और ऐसी-ऐसी बातों में सिर हिला रही हैं कि पिटाई कर देनी चाहिए महात्मा की, कि उठा कर डंडे... । बेलन इत्यादि लेकर ही जाना चाहिए सभा में। इन महात्माओं के छक्के छुड़ा देना चाहिए।

सिर्फ स्त्री से ही मुक्त होना है पुरुष को? पुरुष को स्त्री से मुक्त होना है, यह तो ये बकवास करते हैं; लेकिन स्त्री को भी पुरुष से मुक्त होना है, यह बिल्कुल नहीं कहते।

असल में, स्त्री की मुक्ति की चिंता किसको पड़ी है? सच तो यह है कि इन महात्माओं का ख्याल हैः स्त्रियां मुक्त हो ही नहीं सकतीं। जो हो ही नहीं सकता, जो असंभव ही है, उसकी झंझट में क्यों पड़ना?

मैं इस तरह की बातों से राजी नहीं हो सकता। स्त्री-पुरुष दोनों में कुछ भी भेद नहीं है। दोनों ही एक ही हड्डी-मांस-मज्जा से बने हैं; और दोनों के भीतर एक सा ही वासनाओं से भरा मन है; और दोनों के भीतर एक सी ही आत्मा भी विराजमान है। शरीर में जीओ तो दोनों पागल हैं; मन में जीओ तो दोनों जाल में उलझे हैं; और आत्मा में पहुंच जाएं तो दोनों मोक्ष में हैं। और आत्मा न स्त्री होती है, न पुरुष होती है।

और आखिरी बात, उन्होंने कहाः "सदा सुनने योग्य क्या है? गुरु और वेद का वचन।"

ये दो काहे के लिए जोड़ दिए? गुरु पर्याप्त था। वेद का वचन क्यों जोड़ दिया?

वह हिंदूपन जाता ही नहीं। अब मुसलमान के लिए उपाय ही नहीं रहा, क्योंकि वह तो गुरु का और कुरान का वचन! और ईसाई--गुरु का और बाइबिल का वचन! और बौद्ध--गुरु का और धम्मपद का वचन! और जैन... उनके लिए तो कोई उपाय ही नहीं छोड़ा। इन सबके लिए वेद तो अनिवार्य हो गया।

गुरु का वचन ही वेद है, कुरान है, बाइबिल है। इसको दोहराना क्या? मगर हिंदू मतांधता शंकराचार्य जैसे लोगों की भी छूटती नहीं।

और जरा वेद को उलट-पुलट कर तो देखो, सिवाय कचरे के कुछ भी न पाओगे। तुम भी चौंकोगे। यूं कहीं से भी वेद को खोल लो। मैं यह भी नहीं कहता कि कचरा किसी खास जगह है। उठाओ वेद को, कहीं से भी खोल लो, पढ़ना शुरू कर दो, तुम कचरा पाओगे। सौभाग्य की बात होगी कि एकाध वचन तुम्हें मूल्यवान मिल जाए।

मगर यह सारे धर्मों का अंधापन, यह मजहबी, यह सांप्रदायिक वृत्ति, यह तथाकथित ज्ञानियों से भी छूटी नहीं मालूम पड़ती। यह ज्ञान झूठा ही है। यह बोध सच्चा नहीं है। नहीं तो गुरु का वचन काफी है।

और गुरु का वचन क्या सुनोगे? गुरु का मौन सुनना पड़ता है। वचन में तो सत्य आता नहीं। गुरु का मौन!

यूं समझो, सत्संग का मेरा अर्थ होता हैः शिष्य बोल सकता है, लेकिन बहरा है, सुन नहीं सकता; बोल सकता है, जानता नहीं। गुरु जानता है, बोल नहीं सकता, गूंगा है। जहां गूंगा गुरु समझाने की कोशिश करता है और बहरा शिष्य सुनने की कोशिश करता है, वहां सत्संग फलित होता है। सत्संग है गूंगे और बहरे के बीच प्रेम का नाता। बस सैन से ही बात हो सकती है, इशारों से ही बात हो सकती है। मौन में ही यह अभूतपूर्व घटना घटती है

दूसरा प्रश्नः ओशो,

मैं एक छोटा-मोटा कवि हूं। आपके पास बड़ी आशा लेकर आया हूं। आशीष दें कि मैं काव्य-जगत में खूब ख्याति पाऊं।

गोपालदास,

भैया, गलत जगह आ गए। एक तो मैं आशीष देता नहीं। क्योंकि मैं आदमी जरा उलटा हूं। अगर मैं आशीष दे दूं तो तुम समझना कि उससे उलटा ही होगा। कुछ लोग होते हैं न उलटी खोपड़ी के!

मुल्ला नसरुद्दीन के संबंध में यह बात है कि बचपन से ही वह उलटी खोपड़ी का था। थोड़े दिन तो घर के लोग परेशान रहे। अगर उससे कहें बाहर न जाओ, तो वह बाहर जरूर जाए; अगर कहें शांत बैठो, तो बिल्कुल शांत न बैठे। अगर कहें ऊधम मचाओ, तो शांत बैठ जाए। धीरे-धीरे मां-बाप समझ गए कि यह उलटी खोपड़ी है, इससे जो भी कहेंगे उससे उलटा करेगा। सो उससे जो करवाना हो उससे उलटा वे कहते थे, कि बेटा ऊधम कर। बस वह एकदम शांत बैठ जाए, जैसे ध्यान ही करने लगे। मतलब ध्यान करवाना हो, शांत बिठाना हो, तो ऊधम का आदेश देना पड़े। जैसे बाहर वर्षा हो रही हो और उसको न जाने देना हो बाहर, तो उससे कहेंगे, बेटा जा, बाहर खेल आ। वह फिर बिल्कुल बाहर नहीं जाएगा। फिर वह भीतर ही भीतर रहेगा।

एक दिन नसरुद्दीन और उसका बाप दोनों बाजार करके लौट रहे थे। अपने गधे पर शक्कर की बोरियां लादे हुए थे। बीच में नदी पड़ी। नसरुद्दीन एक गधे को सम्हाल रहा था, एक गधे को बाप सम्हाल रहा था। देखा बाप ने कि नसरुद्दीन के गधे की बोरी गिरने के करीब है, बाएं तरफ झुकी जा रही है। अब अगर नसरुद्दीन से कहो कि बाईं तरफ से जरा हटा, दाईं तरफ झुका, तो और बाईं तरफ झुका देगा। उलटी खोपड़ी! सो बाप समझता ही था, तो बाप ने कहा कि बेटा, जरा बोरी को बाईं तरफ झुका दे। मतलब यह था कि दाईं तरफ झुका दे। मगर गजब हो गया, नसरुद्दीन ने बाईं तरफ ही झुका दी। बोरी नदी में गिर गई। बाप ने कहा कि तुझे क्या हुआ? यह तूने क्या किया? नसरुद्दीन ने कहा कि अब मैं वयस्क हो गया हूं और अब तुम्हारी नीयत पहचानने लगा। अब अपनी नीयत पर ख्याल रखना। अब तुम्हारी नीयत के उलटा करूंगा। अभी तक तुम्हारी भाषा से चलता था, अब तुम्हारी नीयत से चलूंगा। ऊपर-ऊपर तो कह रहे थे कि बाईं तरफ झुका और भीतर-भीतर कह रहे थे कि दाईं तरफ झुका। अब मैं वयस्क हो गया हूं। मैंने नीयत पहचान ली। मैंने कहा अब हो गया बहुत चकमा, काफी दिन चकमा दे चुके। अब जरा सोच-समझ कर।

अब और झंझट खड़ी हो गई। ऐसा ही तुम मुझे समझो। मुझसे तुमने आशीष मांगा तो अभिशाप दे दूंगा। और ऐसा आशीष कि काव्य-जगत में खूब ख्याति पाऊं!

भैया, कविता ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है? किन जन्मों के दिए गए कष्टों का तुम बदला ले रहे हो? या श्रोताओं से तुम्हारी कोई दुश्मनी है? क्यों सताना किसी को? कुछ और करने को नहीं है गोपालदास! अरे गोलोक की खोज करो! कविता वगैरह करने से क्या होगा? प्रार्थना करो प्रभु से कि गोलोक में नंदीबाबा की तरह जन्म हो जाए! नंदीबाबा का ख्याल रखना, भूल मत जाना; कहीं गोलोक में गऊ होकर पैदा हुए तो बेकाम।

मुल्ला नसरुद्दीन अपने मनोवैज्ञानिक से कह रहा था कि इस सपने से मैं बहुत परेशान हूं। रोज रात यह सपना आता है, चूकता ही नहीं। मेरी रातें खराब हो गईं, चैन नहीं है। और दिन भर डरा रहता हूं कि फिर यह सपना आएगा। और आता है, जरूर आता है। अब वर्षों हो गए, अब तो मुझे राहत चाहिए।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, मैं यह तो सुनूं कि सपना क्या आता है?

उसने कहा, सपना यह आता है कि एक से एक सुंदर स्त्रियां एकदम रासलीला कर रही हैं मेरे चारों तरफ।

मनोवैज्ञानिक ने कहा, अरे तो इसमें बुराई क्या है? मजा लो!

उसने कहा कि अरे तुम समझे ही नहीं। सपने में यही तो खराबी होती है कि मैं भी स्त्री, सो मजा भी नहीं ले पाता। और रांडें बहुत उछल-कूद मचाती हैं। और जब जगता हूं तो पाता हूं, अरे मजा क्यों नहीं लिया! मैं तो मुल्ला नसरुद्दीन। मगर जब सोता हूं, सपना देखता हूं, तो हमेशा यही गड़बड़ हो जाती है--मैं खुद ही स्त्री।

सो यह तुम जरा ख्याल रखना। गोलोक की खोज तो करो, मगर यह प्रार्थना कर देना भगवान से कि नंदीबाबा बनाना। नहीं तो गोलोक भी चले गए गऊमाता होकर, तो फिर चूके।

अब हमारे नंदीबाबा हैं संत महाराज। रंजन ने मुझे लिखा है... अब रंजन समझो कि गऊमाता हैं... रंजन ने लिखा है कि अपने नंदीबाबा को सम्हालो, क्योंकि वे रिसेप्शनिस्ट आफिस में बार-बार घुस आते हैं। और रिसेप्शनिस्ट आफिस में गऊमाताओं का ही लोक है--गोलोक! रंजन ने मुझे लिखा है कि और हमसे कहते हैं आ-आ कर कि हमको भी रिसेप्शन आफिस में भरती कर लो, कि हमको पहरा नहीं देना, हमको तो रिसेप्शन, यही स्वागत के काम में हमें भी लगा लो।

मैंने रंजन को खबर भेज दी कि इनको बिल्कुल भीतर मत घुसने देना। नंदीबाबा का वहां क्या काम? तुम बिल्कुल बाहर, नंदीबाबा को बाहर बिठा कर रखो। उनका काम ही बाहर है। हर शिव जी के मंदिर के सामने बैठे रहते हैं। उनको कोई भीतर घुसने देता है? और गऊओं के बीच इनकी जरूरत क्या है? अपने बाहर ही बैठे-बैठे गऊओं का सपना देखो--कि अहा यह गऊ जा रही, वह गऊ जा रही!

तो गोपालदास, तुम गोलोक की खोज करो, कहां की बातों में पड़े हो। क्या कहते हो कि भगवान, मैं एक छोटा-मोटा कवि हूं। एक तो छोटे और मोटे! पता नहीं इस तरह के मुहावरे क्यों प्रचलित हो गए हैं--छोटा-मोटा! अरे मोटे होते और लंबे होते तो भी ठीक था। एक तो छोटे और मोटे! यह तो दोहरी मुसीबत हो गई।

मेरठ में हमको मिले, धमधूसर कव्वाल,

तरबूजे सी खोपड़ी, खरबूजे से गाल।

खरबूजे से गाल, देह हाथी सी पाई

लंबाई से ज्यादा थी उनकी चौड़ाई बस से उतरे,

इक्कों के अड्डे पर आए
दर्शन करके घोड़ों ने आंसू टपकाए।

रिक्शे वाले डर गए, डील-डौल को देख

साहस कर आगे बढ़ा, तांगे वाला एक

तांगे वाला एक, चार रुपये मैं लूंगा,

दो फेरे करके हुजूर को पहुंचा दूंगा
ठेले वाला बोला--क्यों बे तांगे वाले!

मेरे ग्राहक को तू तोड़ रहा है साले?

इतने में ही आ गई संयोजक की कार

"एलीफेंटा" में मिला कमरा नंबर चार।

कमरा नंबर चार, तुरत धोबी बुलवाया

कुरता-पाजामा उसके आगे खिसकाया।
धोबी चौंका! जी यह काम न बस का मेरे
और किसी से धुलवाइए ये तंबू-डेरे।

पहुंचे दिल्ली जंक्शन, तब यह उठा ख्याल,

कर लें तौल मशीन पर, दस का सिक्का डाल।

दस का सिक्का डाल, टिकट बाहर को आई,

हमने पूछा--क्या लिखा है इसमें भाई?

कहने लगे कि काका साब, आप ही पढ़िए,

कृपया चार आदमी एक साथ मत चढ़िए!

तुम कहते हो छोटा-मोटा कवि! और कविता नाजुक चीज--स्त्रैण। और तुम छोटे-मोटे कवि। क्यों भैया किसी के पीछे पड़े? किसी ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा? और कविता भी क्या करोगे? इधर बहुत कविताएं चल रही हैं देश में, एक से एक कविताएं मेरे देखने में आती हैं!

शक्कर महंगी हो गई, हो गया महंगा धान।

लीडर की फसलें उगीं, भारत देश महान।।

कुर्सी धड़कन प्राण की, कुर्सी है निःश्वास।

कुर्सी गए न ऊबरे, मंत्री अफसर बॉस।।

ऐसी-ऐसी कविताएं हो रही हैं!

दिल्ली में सब रम रहे, नेता, चोर, दलाल। पांच साल तक वह टिके, जिसकी मोटी खाल।।

जी हुजूर,
आपके राज्य में

हमें जीने के लिए सब कुछ मिल गया है
पेट की आग है
मिलों के पिछवाड़े से आता हुआ पानी है
आपके चा.ैडे मुख की धौंकनी से फूटती
वायदों की गरम-गरम हवा है
और आकाश
अरे सिर के ऊपर तो आकाश ही आकाश है
अब सिर्फ पांव टिकाने के लिए
एक गज जमीन की तलाश है

ऐसी कविताएं हो रही हैं!

सूखाग्रस्त क्षेत्र में
तालाब के निर्माण का मुहूरत
करते हुए बोले मिनिस्टर--
हम इस तालाब को
शीघ्र बनवा देंगे मगर...
मगर... मगर...
एक दर्शक चिल्लाया--
मंत्री जी, मगर मगर
क्या करते हैं
कीजिए तालाब का मुहूरत
जब आप हैं तो मगर की क्या जरूरत?

प्रश्न कर रहे क्लास में, मास्टर व्यंकटराउ,
गुण माता के दूध में, क्या-क्या हैं बतलाउ।
क्या-क्या हैं बतलाउ, तभी बोला एक बच्चा,
बिना उबाले इसको पी सकते हैं कच्चा।
अदर मिल्क से "मदर मिल्क" होता पावर
फुल, इसमें चीनी नहीं डालनी पड़ती बिल्कुल।
आखिर में बोली, छोटी-सी लड़की लिल्ली,
मम्मीजी का दूध नहीं पी सकती बिल्ली।
क्या कविताएं करने का इरादा है? कविताएं तो हो चुकीं। खूब काव्य रचे जा रहे हैं।

और ख्याति पाकर क्या करोगे? मिल भी गई ख्याति तो क्या होगा? सब ख्याति पानी पर खींची गई लकीरों जैसी है; खिंच भी नहीं पातीं लकीरें और मिट जाती हैं। कुछ मतलब की बात पूछो। यह ख्याति तो अहंकार का ही रोग है। कोई धन कमा कर पाता है, कोई पद पर बैठ कर पाता है, कोई त्याग-तपश्चर्या करके पाता है। जिनसे कुछ नहीं बनता वे कविता करके पा लेते हैं। कविता में करना क्या पड़ता है? कुछ जोड़-तोड़। कुछ शब्दों की तिकड़म। मगर ख्याति की आकांक्षा वही। ख्याति की आकांक्षा ही तो मनुष्य को भटका रही है, गोपालदास। इसलिए ही तो गोलोक नहीं पहुंच पा रहे।

छोड़ो यह अहंकार! क्या होगा, सारी दुनिया भी जान ले तो क्या होगा? खुद को जानो तो कुछ हो। अपने को जानो तो कुछ हो। जिसने अपने को जाना उसे कोई भी न जाने तो चलेगा। और जिसे सारी दुनिया भी जान ले और अपने को ही न जाना उसने, तो व्यर्थ जीवन गंवाया।

मैं इस तरह का आशीष नहीं दे सकता हूं। मैं तो यही सुझाव दे सकता हूं--आशीष नहीं--कि अगर थोड़ा भी जीवन में बल है, थोड़ी भी ऊर्जा है, थोड़ी भी बुद्धिमत्ता है, तो सब कुछ निछावर कर दो स्वयं को जानने के लिए।

और जिस दिन तुम अपने को जान लोगे, शायद उस दिन कविता भी पैदा हो। मगर उस कविता का रंग-रूप और होगा, गंध-गौरव और होगा, प्रसाद-प्रकाश और होगा। जो स्वयं के जानने से धुन बजेगी, जो स्वयं को जानने से तुम्हारे हृदय की वीणा के तार झनझना उठेंगे, उनसे कुछ पैदा हो तो सुंदर है। चित्र बनें, गीत आए, नृत्य उमगे, जो भी हो वह स्वाभाविक होगा, सहज होगा, स्वस्फूर्त होगा। उसके लिए तुकबंदी नहीं करनी पड़ेगी।

यही तो कवि और ऋषि में फर्क है।

मैं तो कहूंगाः ऋषि बनो! क्या कवि बनना? फर्क को ख्याल में रख लेना। कवि वह है जो चेष्टा करके रचता है। और ऋषि वह है जिससे धारा बहती है--सहज बहती है। कवि वह है जो खुद ही फूंक मार-मार कर किसी तरह बांसुरी बजाता है, थका अपने को डालता है, फेफड़ों को पसीना आ जाता है। और ऋषि वह है जो खुद ही बांसुरी हो गया--बांस की पोली पोंगरी। और कह दिया परमात्मा से कि बजाना हो तो बजा, न बजाना हो तो न बजा। और ऐसा कभी नहीं हुआ कि परमात्मा ने न बजाई हो ऐसी बांसुरी।

जो भी अपने भीतर अहंकार से खाली है, वही बांस की पोंगरी हो सकता है। ख्याल रखना, ठोस डंडे नहीं बजाए जाते। हां, किसी की खोपड़ी पर बजाने हों तो बात अलग। मगर ठोस डंडों से कोई स्वर नहीं उठते, कोई गीत नहीं फूटते। और अहंकार ठोस डंडा है। और ख्याति की आकांक्षा तो ठोस डंडा बनने की आकांक्षा है।

पोले बनो। खाली बनो। शून्य बनो। भीतर जगह बनाओ। उसी जगह से परमात्मा निःसृत होता है। और तब तुम जो भी करोगे, उसमें ही काव्य है, उसमें ही सौंदर्य है, उसमें ही नृत्य है, उसमें ही उत्सव है!

आज इतना ही।

सातवां प्रवचन

निमंत्रण--दीवानों की बस्ती में

पहला प्रश्नः ओशो, पुरुषस्य भाग्यं त्रिया चरित्रम्।
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।।
पुरुष का भाग्य, स्त्री का चरित्र देव भी नहीं जानते, फिर मनुष्य के जानने का तो सवाल कहां।
क्या आप इससे सहमत हैं?

कनुलाल मेहता,

भाग्य जैसी कोई चीज मनुष्य के जीवन में तो नहीं होती, पशुओं के जीवन में होती है। पशु का अर्थ ही होता है--जो पाश में बंधा है। पशु शब्द में ही भाग्य छिपा है--बंधन, बंधा हुआ। जो पैदा होते ही एक विशिष्ट ढंग से जीने को बाध्य है वही पशु है। कुत्ता कुत्ते का भाग्य लेकर पैदा होता है। लाख उपाय करे तो भी कुछ और नहीं हो सकता। सिंह सिंह का भाग्य लेकर पैदा होता है। कोई साधना, कोई तपश्चर्या रत्ती भर भी अंतर न कर पाएगी।

इसीलिए तो हम किसी पशु को निंदित नहीं कर सकते, पापी नहीं कह सकते। क्योंकि पुण्य की ही स्वतंत्रता न हो तो पाप का दोष कैसे? स्वतंत्रता ही न हो चुनाव की तो फिर कैसा पाप, कैसा पुण्य? कैसी नीति, कैसी अनीति? किसी पशु को तुम दुश्चरित्र नहीं कह सकते। क्योंकि पशु तो जीता है नियति से। पशु तो जीता है बंधा हुआ।

मनुष्य की यही तो गरिमा है, यही तो गौरव है; यही तो पशु और मनुष्य के बीच भेद है कि मनुष्य का कोई भाग्य नहीं। मनुष्य पैदा होता है कोरे कागज की तरह--बिना किसी लिखावट के। फिर तुम्हें ही अपने निर्णय से, अपने चुनाव से, अपनी स्वतंत्रता से लिखना पड़ता है कोरे कागज पर। हस्ताक्षर सिर्फ तुम्हारे--किसी विधाता के नहीं। लकीरें जो चाहो खींचो--तुम्हारी। और जब चाहो मिटा दो। क्योंकि खींचने वाले तुम हो, मिटाने वाले तुम हो।

मनुष्य नियंता है स्वयं का। और जब तक मनुष्य अपना निर्णय स्वयं नहीं लेता तब तक जानना कि पशु ही है, दिखाई पड़ता है मनुष्य जैसा। इसलिए ज्योतिषियों के पास जो जाते हैं वे मनुष्य नहीं हैं। ज्योतिषियों का धंधा पशुओं के कारण चलता है। मनुष्य क्यों जाएगा ज्योतिषी के पास? किसलिए जाएगा? मनुष्य के होने का अर्थ ही स्वतंत्रता है।

गौतम बुद्ध के जीवन में यह प्यारा उल्लेख है। एक दोपहर दूर की यात्रा करके वे एक नदी के तट पर पहुंचे हैं। एक वृक्ष की छाया में बैठे हैं विश्राम करने को। और तभी संयोगवशात काशी से लौटता था एक महापंडित ज्योतिष का। बारह वर्षों तक ज्योतिष का अध्ययन करके लौटता था। कीमती से कीमती ज्योतिष के शास्त्रों का अपने साथ संग्रह भी लाया था। उसकी नजर नदी-तट पर गीली रेत में बने हुए बुद्ध के चरण-चिह्नों पर पड़ी। देख कर हैरान हुआ। आंखों पर भरोसा न आया। क्या बारह वर्ष का अध्ययन व्यर्थ गया? क्योंकि जो देखा, अगर सच था, तो जो शास्त्र अपने साथ बांध लाया था वे गलत थे। और अगर शास्त्र सही थे तो भरी दोपहरी में इस दीन-दरिद्र गांव के किनारे, इस रूखी-सूखी नदी के तट पर ये चरण-चिह्न कैसे?

क्योंकि चरण-चिह्नों में जो रेखाएं थीं, वे उसके शास्त्रों के अनुसार चक्रवर्ती सम्राट की रेखाएं थीं। वैसी रेखाएं केवल उसके ही पैरों में हो सकती हैं जो सारे जगत का, छहों महाद्वीपों का एकमात्र सम्राट हो, जो पूरी पृथ्वी का मालिक हो। पृथ्वी का मालिक, चक्रवर्ती सम्राट इस भरी दोपहरी में नंगे पैर इस गंदे से किनारे पर इस

दीन-दरिद्र नदी के पास क्या करने आएगा? क्यों आएगा? ऐसे व्यक्ति तो स्वर्ण-पथों पर भी नंगे पैर नहीं चलते। ऐसे व्यक्ति तो महलों से भी नीचे नहीं उतरते। और अकेला! क्योंकि चरण-चिह्न एक ही व्यक्ति के थे। साथ में वजीर भी नहीं, सेनापति भी नहीं, कोई भी नहीं--अकेला! असंभव। मगर बड़ा कुतूहल उसे पैदा हुआ। जहां से चरण-चिह्न आए थे उस दिशा को उसने देखा। जिस दिशा की तरफ बढ़े थे उस दिशा की तरफ खोज में निकला--कि इस आदमी को खोजना ही होगा, मिलना ही होगा। मेरा सारा भविष्य इस पर ही निर्भर है। मैंने बारह वर्ष यूं ही तो नहीं गंवाए? रेत से तो तेल नहीं निचोड़ता रहा?

जल्दी ही पहुंच गया उस वृक्ष के पास जहां चरण-चिह्न समाप्त हो गए थे। और बुद्ध को उसने बैठे देखा, तब और मुश्किल में पड़ा। एक तरफ से तो यूं लगे--ऐसा प्यारा व्यक्ति, ऐसा सौंदर्य, ऐसा प्रसाद, ऐसी सुगंध, ऐसी आभा, निश्चित ही होना चाहिए चक्रवर्ती। इससे कम नहीं, रत्ती भर कम नहीं। और दूसरी तरफ से लगे--भिखारी, भिक्षापात्र पास में रखा। फटे, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहने, अकेला, इस वृक्ष से टिका विश्राम कर रहा। भूखा भी हो शायद। पेट पीठ से लग गया है, देह हड्डी-हड्डी हो गई है।

झकझोरा बुद्ध को और कहा, मुझे मुश्किल में डाल दिया है। बारह वर्ष बड़ी मेहनत करके ज्योतिष की शिक्षा लेकर लौटा हूं और तुम पहले आदमी मिल गए, जिसने सब अस्तव्यस्त कर दिया। अराजकता पैदा हो गई मेरे भीतर। ये तुम्हारे चरण-चिह्न कहते हैं कि तुम्हें होना चाहिए चक्रवर्ती सम्राट और तुम्हारा इस वृक्ष के नीचे बैठा होना, भिक्षापात्र, और तुम्हारी यह भिखारी की दशा--जाहिर है कि तुम भिक्षु हो। और तुम्हारी आंखों को भी देखता हूं, तुम्हारे चेहरे को भी देखता हूं--जाहिर है कि तुम चक्रवर्ती भी हो। मैं बड़ी मुश्किल में पड़ गया। मुझे सुलझाओ।

बुद्ध हंसे और उन्होंने कहा, जब तक बंधा था तब तक तेरा ज्योतिष सच था। अब मैं मुक्त हूं, अब तेरा ज्योतिष सच नहीं। तेरा ज्योतिष उन लोगों के संबंध में सच हो सकता है जो सोए हैं; उनके संबंध में नहीं जो जाग गए हैं। अब मैं स्वतंत्र हूं।

समझा नहीं ज्योतिषी। ज्ञान से भरे हुए लोगों की समझ बड़ी कम हो जाती है। उनकी खोपड़ी में इतना कचरा भरा होता है कि बात हृदय तक पहुंचती ही नहीं। सुना तो जरूर, लेकिन पंडितों से ज्यादा बहरा और कोई भी नहीं होता।

उसने कहा, कैसा बंधन? कैसी मुक्ति? मैं यह पूछना चाहता हूं कि आप मनुष्य हैं या नहीं?

बुद्ध ने कहा कि नहीं।

तो पूछा, क्या आप देवता हैं?

बुद्ध ने कहा, नहीं।

तो पूछा कि क्या आप किन्नर हैं?

बुद्ध ने कहा, नहीं।

तो पूछा कि क्या आप यक्ष हैं?

यूं ज्योतिषी पूछता चला और बुद्ध इनकार करते चले। अंततः घबड़ा गया और उसने कहा कि फिर तुम्हीं कहो--कौन हो?

बुद्ध ने कहा, मैं तो सिर्फ बुद्ध हूं, जागा हुआ हूं। अब सोया हुआ नहीं हूं। इसलिए तुझसे फिर कहता हूं, सोए हुओं पर तेरा ज्योतिष ठीक है। जो मूर्च्छित हैं उनका भाग्य है। लेकिन जो जाग गए उनका फिर कोई भाग्य नहीं।

इस अवस्था को ही हमने मुक्ति कहा है, मोक्ष कहा है, परम स्वतंत्र कहा है, कैवल्य कहा है, समाधि कहा है, बुद्धत्व कहा है।

कनुलाल मेहता, तुम कहते होः "पुरुषस्य भाग्यं... पुरुष का भाग्य देवता भी नहीं जानते।"

भाग्य तो होता ही नहीं। भाग्य तो तुम्हारी तंद्रा में है, तुम्हारी मूर्च्छा में है, तुम्हारे यंत्रवत व्यवहार में है, तुम्हारी पशुता में है। जैसे ही तुम थोड़े से जागे, वैसे ही भाग्य विदा हो गया।

और पुरुष शब्द को ठीक से समझ लेना। पुरुष का अर्थ यह मत समझ लेना कि जो नारी नहीं है। इस सूत्र को लिखने वाला होगा कोई पंडित, होगा कोई थोथी, व्यर्थ की बौद्धिक बातों से भरा हुआ आदमी। पुरुष का अर्थ ठीक उस शब्द में छिपा है। पुर का अर्थ होता हैः नगर। नागपुर, कानपुर, उदयपुर, जयपुर। पुर का अर्थ होता हैः नगर। और पुरुष का अर्थ होता हैः नगर के भीतर जो बसा है। शरीर है नगर, सच में ही नगर है। विज्ञान की दृष्टि से भी नगर है। वैज्ञानिक कहते हैंः एक शरीर में सात अरब जीवाणु होते हैं। अभी तो पूरी पृथ्वी की भी इतनी संख्या नहीं; चार अरब को पार कर गई है, लेकिन एक-एक शरीर में सात अरब जीवाणु हैं। सात अरब जीवित चेतनाओं का यह नगर है और उसके बीच में तुम बसे हो। मूर्च्छित हो, इसलिए पता नहीं। होश में आ जाओ तो पता चले। तुम देह नहीं हो, मन नहीं हो, भाव नहीं हो।

देह का परकोटा बाहरी परकोटा है तुम्हारे नगर का, जैसे बड़ी दीवाल होती है पुराने नगरों के चारों तरफ--किले की दीवाल। फिर मन का परकोटा भीतर का परकोटा है--और एक दीवाल। और फिर भावनाओं का परकोटा सबसे अंतरंग है--और एक दीवाल। और इन तीन दीवालों के पीछे तुम हो चौथे, जिसको जानने वालों ने तुरीय कहा है। तुरीय का अर्थ होता हैः चौथा। और जब तुम चौथे को पहचान लोगे, तुरीय को पहचान लोगे, जब इतने जाग जाओगे कि जान लोगे--न मैं देह हूं, न मन, न हृदय; सिर्फ चैतन्य हूं, सिर्फ बुद्धत्व हूं--उस क्षण तुम पुरुष हुए।

स्त्री भी पुरुष हो सकती है और तुम्हारे तथाकथित पुरुष भी पुरुष हो सकते हैं। स्त्री और पुरुष से इसका कुछ लेना-देना नहीं है। स्त्री का देह का परकोटा भिन्न है; यह परकोटे की बात है। घर यूं बनाओ या यूं बनाओ। घर का स्थापत्य भिन्न हो सकता है, द्वार-दरवाजे भिन्न हो सकते हैं, घर के भीतर की रंग-रौनक भिन्न हो सकती है, घर के भीतर की साज-सजावट भिन्न हो सकती है। मगर घर के भीतर रहने वाला जो मालिक है, वह एक ही है। वह न तो स्त्री है, न पुरुष तुम्हारे अर्थों में। स्त्री के विपरीत नहीं। स्त्री और पुरुष दोनों के भीतर जो बसा हुआ चैतन्य है, वही वस्तुतः पुरुष है।

और पुरुष का तो कोई भाग्य नहीं होता। इसलिए देवता जानना भी चाहें तो क्या खाक जानेंगे! पुरुष की स्वतंत्रता होती है--प्रतिपल स्वतंत्र। वह प्रतिपल जीता है--अनबंधा। न कोई जंजीरें, न कोई आग्रह, न कोई अतीत। वह अतीत से निर्धारित नहीं होता और न उसकी भविष्य की कोई रूप-रेखा होती है। न वह बीते कल से जीता है, न आने वाले कल के कारण जीता है। वह अभी जीता है, यहीं जीता है, इसी क्षण में उसका पूरा का पूरा व्यक्तित्व अपनी समग्रता में खिलता है, जैसे फूल खिलता हो। पुरुष का कोई भाग्य नहीं होता। इसलिए मैं कैसे इस सूत्र से राजी होऊं? इस सूत्र के किसी हिस्से से मैं राजी नहीं हूं।

पुरुषस्य भाग्यं त्रिया चरित्रम्।
देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।।

पुरुष का भाग्य होता ही नहीं। जो है ही नहीं, उसे देवता भी कैसे जानेंगे और मनुष्य भी कैसे जानेंगे!

दूसरा हिस्सा हैः त्रिया चरित्रम्, स्त्री का चरित्र!

तुम्हारे तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों ने स्त्री की जिस तरह हो सके उस तरह निंदा की है; जिस भांति हो सके उस भांति स्त्रियों को गालियां दी हैं। इन गालियों से सिर्फ इतना ही पता चलता है कि उनके मन में बहुत गहरा स्त्रियों के प्रति आकर्षण था। यह आकर्षण का शीर्षासन करता हुआ रूप है। तुम्हारे शास्त्र स्त्रियों को गालियां ही देते रहे हैं सदियों से। लेकिन जिन्होंने भी स्त्रियों को गालियां दी हैं, वे सिर्फ इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि अभी उनके मन से स्त्री की वासना नहीं गई। कहीं न कहीं घाव है, कहीं न कहीं मवाद है, कहीं न

कहीं दर्द है, टीस है। कहीं कोई चुभन है, कोई कांटा अभी भी गड़ता है। उस कांटे की चुभन के कारण ही गाली निकल रही है।

स्त्री के चरित्र पर भरोसा नहीं। जैसे कि पुरुष जिनको तुम कहते हो उनके चरित्र का कोई भरोसा है! सच तो यह है कि स्त्रियां सदा से ज्यादा चरित्रवान सिद्ध हुई हैं पुरुषों की बजाय।

जिन देवताओं का तुम बड़ा सम्मान करते हो उनका कोई चरित्र है? तुम्हारे पुराणों को उठा कर देखो! कनुलाल मेहता, तुम चकित होओगे। तुम्हारे देवताओं से ज्यादा भ्रष्ट व्यक्ति खोजना मुश्किल है। तुम्हारे देवताओं की सारी कथाएं भ्रष्टता की कथाएं हैं। लेकिन उनका सम्मान है, उनकी पूजा है। और स्त्रियों को गाली। और तुम्हारे देवता तक भी चरित्र को स्वीकार करते मालूम नहीं होते। मगर कसूर किसी का भी हो, गाली स्त्री को पड़ती है। यह हमारा कुछ अजीब तर्क है।

जैसेः लोभ तो हमारे भीतर है, लेकिन धन को हम गाली देते हैं। धन का क्या कसूर है? हजार रुपये रास्ते के किनारे पड़े हैं, तुम्हारी लार टपक रही है और गाली धन को दे रहे हो! जरा सोचते हो कि धन का क्या कसूर है? वे रुपये तुमसे नहीं कह रहे हैं लार टपकाओ। रुपयों को तुम्हारी लार से कोई प्रयोजन नहीं है। रुपयों को तुमसे भी कोई प्रयोजन नहीं है।

भर्तृहरि के जीवन में यह कथा है--प्यारी कथा है--कि भर्तृहरि ने जीवन को खूब देखा, समझा, भोगा। और जो भी देखेगा, समझेगा, भोगेगा, वह मुक्त हो जाएगा। भर्तृहरि महाभोगी थे। इसलिए उन्होंने दो अदभुत किताबें लिखी हैं। ऐसी दो किताबें एक साथ किसी व्यक्ति ने नहीं लिखी हैं। पहली किताब लिखीःशृंगार-शतक।शृंगार की ऐसी अनूठी किताब बेजोड़ है, अद्वितीय है।शृंगार को जरूर जाना, गहरे से जाना, अनुभव से जाना। यह किसी कवि की बात नहीं है, अनुभोक्ता की बात है। इसलिएशृंगार-शतक में बड़ा बल है। और इतनी गहराई से जाना जीवन को, उसके भोग को, कि जान कर मुक्त हो गए। जानने से हमेशा मुक्ति आती है। अनुभव से हमेशा अतिक्रमण आता है। तुम जिस चीज को जान लेते हो, उसी से मुक्त हो जाते हो; जिसको नहीं जान पाते उसी से बंधे रह जाते हो। इसलिए जो भागेगा संसार से, वह संसार में वापस लौट-लौट आएगा। जो संसार में जीकर मुक्त होता है, वह फिर नहीं लौटता है।

भर्तृहरि ने जीवन को देखा। सम्राट थे; सब तरह से भोगा। और फिर देख कर व्यर्थता, ध्यान में प्रवेश किया। फिर दूसरी किताब लिखीः वैराग्य-शतक। भर्तृहरि जैसा व्यक्ति ही लिख सकता है। जिसनेशृंगार जाना वही वैराग्य जान सकता है। जिसने राग जाना वही वीतरागता जान सकता है। जिसने संसार जाना वही मोक्ष से परिचय पा सकता है।

भर्तृहरि सब छोड़ कर चले गए। बड़ा राज्य था, अपार संपदा थी। सब को पीठ दिखा दी। जंगल में जाकर, ध्यान में लीन, एक सुबह--ऐसी ही सर्द सुबह रही होगी--सूरज की धूप, भर्तृहरि अपनी शिला पर बैठे ध्यान की मस्ती में डोल रहे हैं। घोड़ों की टाप की आवाज सुनाई पड़ी। आंख खोल कर देखा। जो देखा, उसने भर्तृहरि को बड़ा बोध दिया। देखा कि सामने ही शिला के राह गुजरती है, पगडंडी जंगल की, और उस पगडंडी पर एक इतना बड़ा हीरा पड़ा है। पारखी थे, बहुत हीरे देखे थे। एक क्षण को भूल ही गए कि मैं तो हीरों को छोड़ आया हूं। एक क्षण को मूर्च्छा ने पकड़ लिया, तंद्रा आ गई। एक क्षण को बेहोशी की लहर आ गई। हुआ मन--उठा लूं! लेकिन इसके पहले कि उठाते, दो घुड़सवार दोनों दिशाओं से आए और दोनों की नजर भी करीब-करीब साथ ही हीरे पर पड़ी। दोनों की तलवारें निकल आईं और दोनों ने कहा कि हमारी नजर पहले पड़ी है।

नजर तो भर्तृहरि की पहले पड़ी थी, लेकिन अब तक भर्तृहरि सम्हल गए थे; पांव डगमगाया था, मगर सम्हल गए थे। सम्हल गए थे, यह सोच कर थोड़ी हंसी भी आ गई थी कि इस तरह के बहुत से हीरे तो मेरे खजाने में थे, इससे बड़े-बड़े हीरे थे, उनको मैं छोड़ कर चला आया और इस हीरे पर मेरी नजर बिगड़ गई,

नीयत बिगड़ गई। मैं भी कैसा हूं! अगर इन्हीं हीरों पर रस था तो आया ही क्यों? हंसे अपने पर--अपनी मूढ़ता पर। और अब यह तो कहने का सवाल ही न था कि नजर मेरी पहले पड़ी, चुप ही रहे।

उन दोनों ने तो भर्तृहरि को देखा ही नहीं, देखने का सवाल ही कहां था! सवाल तो तय करने का था कि नजर किसकी पहले पड़ी। जिसकी नजर पड़ी वह मालिक। दोनों में विवाद हो गया, तलवारें खिंच गईं, तलवारें चल गईं। एक क्षण में हो गई यह सारी बात। दोनों की तलवारें एक-दूसरे की छाती में छिद गईं। दोनों गिर पड़े। दो लाशें पड़ी थीं। खून का फव्वारा छूट गया था। हीरा अपनी जगह पड़ा था। दो आदमी अभी जिंदा थे, अभी मुर्दा हो गए।

भर्तृहरि और भी खिलखिला कर हंसे। पहले तो मुस्कुराए थे, अब खिलखिला कर हंसे कि हद हो गई, हीरे को कुछ लेना-देना नहीं, आदमी जिंदा रहे कि मर जाए। ये दो आदमी मर गए, हीरे की आंख में आंसू भी न आया, हीरे को पता भी न चला, हीरे को कुछ प्रयोजन भी नहीं। और ये दो आदमियों ने अपनी जान गंवा दी एक पत्थर के लिए। और कभी मैं भी यूं ही जान गंवा देता। क्षण भर पहले मुझे भी लहर आई थी, मुझे भी तरंग आई थी।

धन को क्या गाली देते हो? अगर समझना है तो लोभ को समझो। मगर आदमी का यह हिसाब हैः अपना दोष दूसरे पर टाल देता है।

पुरुषों के मन में स्त्रियों के प्रति प्रबल कामना है। इतनी प्रबल जितनी कि स्त्रियों के मन में पुरुष के प्रति नहीं है। यही कारण है कि स्त्रियों ने पुरुषों को गाली देने वाली किताबें नहीं लिखीं। पुरुषों ने किताबें लिखीं। मेरा भी अपना अनुभव यह है कि मैंने सब तरह की स्त्री साध्वियां देखीं, संन्यासिनियां देखीं; पुरुष साधु देखे, पुरुष संन्यासी देखे। स्त्री साध्वियों में एक तरह की गरिमा है। स्त्री साध्वियों में एक तरह की निष्ठा है। पुरुष साधु बेईमान हैं, झूठे हैं। और फिर भी गाली जब देंगे तो त्रिया चरित्र को। कारण तुम समझ लेना। कारण यह है कि अभी भी इनको स्त्री आकर्षित करती है।

और इसके पीछे मनोविज्ञान ही नहीं है, इसके पीछे पुरुष और स्त्री की जैविक व्यवस्था भी है। पुरुष की कामवासना आक्रामक है। स्त्री की कामवासना ग्राहक है। तो जो आक्रामक है उसको तो अपनी वासना बहुत दिखाई पड़ती है, क्योंकि वह हमेशा छलांगें मारती है, वह कुछ कर दिखाने को आतुर होती है। तलवारें चमकाती है। म्यान के बाहर आ-आ जाती है। स्त्री को अपनी वासना दिखाई नहीं पड़ती; दिखाई पड़ भी नहीं सकती, वह ग्राहक है। कोई स्त्री कभी किसी पुरुष के पीछे नहीं दौड़ती। और दौड़े तो पुरुष ऐसा भागे... । कोई स्त्री पुरुष के पीछे नहीं जाती। कोई स्त्री पुरुष से प्रेम का निवेदन नहीं करती।

मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी सुबह ही सुबह चाय की टेबल पर ही उलझ पड़े। वहीं से शुरू होता है रोज पुराण। चाय की टेबल से ही शुरू हो जाता है। कुछ और भी पहुंचे हुए हैं, वे बिस्तर से ही शुरू कर देते हैं। आंख खुली नहीं कि पुराण शुरू।

मुल्ला नसरुद्दीन कहने लगा कि मैं भी कहां की झंझट में पड़ गया! तुझसे विवाह करके किस उपद्रव को मैंने अपने सिर ले लिया!

पत्नी ने कहा कि मैं तुम्हारे पीछे न पड़ी थी। तुम्हीं पूंछ हिलाते मेरे पीछे घूमते थे। तुम्हीं मेरे पापा के हाथ-पैर जोड़ते थे, मेरी मम्मी को चढ़ोत्तरी चढ़ाते थे। तुम्हीं लिखते थे लंबे-लंबे प्रेम-पत्र। मैंने अभी भी संदूक में सम्हाल कर रखे हैं। कहो तो निकाल लाऊं? क्या-क्या तुमने लिखा है--कि हे प्राण प्यारी, तेरे बिना मर जाऊंगा, जी न सकूंगा, एक क्षण न रह सकूंगा। भूल गए वे सब बातें? मैं तुम्हारे पीछे नहीं पड़ी थी।

नसरुद्दीन ने कहा, यह बात सच है। कोई भी चूहादानी किसी चूहे के पीछे नहीं पड़ती। मगर ये मूरख चूहे खुद ही चले जाते हैं।

स्वभावतः, जब मूरख चूहा चूहेदानी में फंस जाएगा तो चूहेदानी को गाली देगा कि फंसा लिया। ये मूरख चूहों की बातें हैं--पुरुषस्य भाग्यं त्रिया चरित्रम्। इनको त्रिया का चरित्र समझ में नहीं आता। जैसे कि इनको अपना चरित्र समझ में आ गया हो। इनका खुद का चरित्र तो देखो!

मगर दोष दूसरे को देना मनुष्य की एक बुनियादी कमजोरी है--हमेशा दोष दूसरे पर टाल देना। और यह अच्छा लक्षण नहीं है। यह धार्मिक व्यक्ति का लक्षण नहीं है। इसलिए तुम्हारी धर्म-किताबों में मुझे बहुत कम धर्म दिखाई पड़ता है, अधर्म बहुत ज्यादा दिखाई पड़ता है। निन्यानबे प्रतिशत अधर्म, कभी भूल-चूक से एकाध बात कोई धर्म की आ जाती हो तो आ जाती हो, नहीं तो अधर्म ही अधर्म दिखाई पड़ता है।

अब जैसे, तुम जरा सोचो कि अगर कोई स्त्री पुरुषों के कपड़े चुरा कर झाड़ पर बैठ गई होती तो तुम कहते--पुरुषस्य भाग्यं त्रिया चरित्रम्, देवो न जानाति कुतो मनुष्यः। अरे मनुष्य का क्या है? मनुष्य का क्या बस है, यह स्त्रियों का कुछ ढंग ही समझ में नहीं आता। पुरुष बेचारे नहा रहे हैं, सीधे-सादे पुरुष, साधु-संत नहा रहे हैं, ये उनके कपड़े चुरा कर झाड़ पर चढ़ जाती हैं!

मगर कृष्ण कन्हैया यही करते रहे और तुमको उनका चरित्र समझ में आता है। यह बड़े मजे की बात है! वे जो नग्न स्त्रियां खड़ी हैं पानी में, उनका चरित्र तुम्हें समझ में नहीं आ रहा। और ये सज्जन जो ऊपर चढ़ बैठे हैं कदंब के झाड़ पर कपड़े लेकर, इनका चरित्र तुम्हें समझ में आ रहा है। न केवल चरित्र समझ में आ रहा है बल्कि तुम इनको पूर्णावतार कहते हो। पूर्णता से समझ में आ रहा है कि ये कोई साधारण पुरुष नहीं हैं, पूर्ण अवतार हैं।

एक गांव में रास-लीला हो रही थी। रास-लीला में वह दृश्य आया, जब दुर्योधन द्रौपदी की साड़ी खींचने लगता है। इंतजाम पूरा किया गया था, ढंग से बनाई गई थी सारी व्यवस्था। ऐसी व्यवस्था पहले भी रही होगी। छप्पर के ऊपर बिजली से चलने वाली एक मशीन लगाई थी, जिसमें साड़ियों पर साड़ियां बंधी हुई थीं। इधर कृष्ण भगवान बटन दबाते और उधर बिजली चलती, साड़ियों में बंधी हुई साड़ियां निकलती चली आतीं, निकलती चली आतीं। मगर संयोग की बात, बिजली चली गई। यूं गैसबत्तियां भी थीं, इसी डर से थीं, क्योंकि गांव था छोटा और बिजली आठ-दस दफे दिन में जाती ही थी, सो कब बिजली चली जाए पता नहीं। लेकिन यह किसी ने विचार ही न किया था कि ठीक ऐसे समय बिजली जाएगी। तो प्रकाश तो था, बत्तियां तो थीं, मगर साड़ियां आनी बंद हो गईं। कृष्ण कन्हैया बहुत मुश्किल में पड़े। उनकी तो जान पर बन आई, वे भूल ही गए मामला कि अब क्या करना! और दुर्योधन और द्रौपदी में झगड़ा था; सो वह माने ही नहीं, वह साड़ी खींचे ही चला जाए। कृष्ण ने बहुत कहा, अरे दुष्ट! ठहर! बिजली चली गई। जरा ठहर!

दुर्योधन बोला कि ऐसी की तैसी बिजली की! अरे आए बिजली कि जाए, मुझे क्या लेना-देना? आज रास-लीला पूरी होकर रहेगी। आज इस रांड को नंगा करके बताता हूं! और देख ले जनता भी कि यह रांड नहीं, रंडुआ है।

और उसने खींच ही दी साड़ी। वह गांव का ही एक पहलवान द्रौपदी बना था। तालियां पिट गईं। जो रास-लीला हुई वह देखने लायक थी। जनता एकदम ताली बजा रही। जो सो गए थे वे भी जग गए। बच्चे किलकारी मार रहे। लोग खड़े हो गए कि यह तो गजब हो गया! और कृष्ण कन्हैया कुछ भी न कर पाए। अब क्या करो, बिजली ही चली गई!

एक तरफ ये कृष्ण कन्हैया लोगों के वस्त्र चुराते रहे, स्त्रियों के वस्त्र चुरा कर झाड़ पर बैठते रहे। और दुर्योधन जरा लीला करना चाहता था तो कहने लगे कि बिजली चली गई। आखिर दुर्योधन भी तो वही कर रहा था जो कृष्ण का धंधा था--वही गोरखधंधा! कुछ फर्क तो न था। इन्होंने बहुत स्त्रियों के साथ किया था। सोलह हजार स्त्रियां कृष्ण ने इकट्ठी कर रखी थीं--चुराई, भगाई। इनका चरित्र तुम्हें समझ में आता है। कोई चरित्र है यह?

युधिष्ठिर का चरित्र तुम्हें समझ में आता है? उनको धर्मराज कहते हो! सब धन लगा दिया जुए के दांव पर। धन ही नहीं लगा दिया, द्रौपदी को भी लगा दिया--पत्नी को भी लगा दिया। पहले तो पांच भाइयों ने पत्नी बांट ली, यह कोई चरित्र है? फिर भी वे धर्म के रक्षक हैं--पांडव। कौरव जो हैं, वे अधार्मिक हैं; उनको हराना है, उनको विनष्ट करना है। विनष्ट करने का काम कौन करेंगे? ये पांच पांडव करेंगे जिन्होंने एक को बांट लिया। जैसे स्त्री कोई सामान हो!

मगर यही ढंग रहा है। जिन्होंने यह सूत्र कहा है, कनुलाल मेहता, इन्होंने स्त्री को संपत्ति कहा है--स्त्री-संपदा। इसलिए तो कन्यादान करते हैं। और मजा यह है कि अब पढ़ी-लिखी स्त्रियां भी, जब उनका कन्यादान किया जाता है, तो खड़े होकर नहीं कहतीं कि बंद करो यह बकवास! हम कोई सामान नहीं हैं जिनका दान किया जाए! पुत्र-दान नहीं किया जाता, कुंवर-दान नहीं किया जाता, कन्या-दान किया जाता है। ये कुंवरों को, सुंअरों को, इनको दान करो! कन्याओं को बहुत दिन हो गए दान करते।

मगर दान तो चीजों का ही किया जा सकता है। बांट लिया स्त्री को। और बांट लिया, यहां तक भी बात रहती तो भी ठीक थी, तो भी गनीमत थी, उसको दांव पर भी लगा दिया। संपत्ति हो तो दांव पर लगाई जा सकती है। और जब जीत गया दुर्योधन तो पाप क्या था? फिर संपत्ति उसकी हो गई। फिर वह डब्बा खोले कि बंद करे, फिर इसमें अड़चन क्या डालनी? फिर अड़चन भी डालनी है! हार भी गए। हार गए तो हार गए, अब स्त्री उसकी हो गई। चलो पांच की न हुई, छह की हो गई। इसमें क्या फर्क पड़ने वाला था? लेकिन वह कृष्ण की बहन थी, इसलिए चरित्र समझ में आ जाता है। कृष्ण की बहन थी, इसलिए बचाव। और ये सोलह हजार स्त्रियां भी तो किसी की बहनें रही होंगी, किसी की बेटियां रही होंगी, किसी की पत्नियां भी थीं ये। इनमें अधिकतर तो विवाहित थीं। इनको भगा लाए--न शर्म, न संकोच। और पुरुषों का तुम्हें चरित्र समझ में आता है और स्त्रियों का चरित्र समझ में नहीं आता। कैसा पाखंड है!

स्त्री ने हमेशा, पुरुष ने जो भी उससे कहा है, उसे मान लिया है, सरलता से स्वीकार कर लिया है। उसका अगर कोई कसूर है तो यही है कि उसने कभी बगावत नहीं की, इनकार नहीं किया। उससे जो झूठी बातें मनवाईं, वही मान लीं। फिर भी उसका चरित्र तुम्हें समझ में नहीं आता? और दुश्चरित्र तुम हो--पुरुष है।

स्त्रियों को सती होने का पाठ सिखा दिया; वह भी स्त्री ने मान लिया। लाखों स्त्रियां उनके पतियों के मर जाने पर उनकी चिताओं पर चढ़ गईं। और तुम्हें इनका चरित्र समझ में नहीं आता! और ये जिन्होंने सती की व्यवस्था जारी की, इनमें से एक भी कभी अपनी पत्नी के मरने पर उसकी चिता पर न चढ़ा। एक सता न हुआ, सतियां ही सतियां होती रहीं। एकाध तो सता हो जाता। कहने को तो बात रह जाती कि नहीं भाई, सतियों का चौरा ही नहीं, यह सता का चौरा है। स्त्रियों को चढ़ा दिया बलिवेदी पर। क्यों? क्योंकि संपदा है।

पुरुष मर कर भी यह तय कर लेना चाहता था कि मेरी स्त्री किसी और की न हो जाए। वह मर कर भी अपना कब्जा कायम रखना चाहता था। सबसे ज्यादा उचित उपाय यही था कि स्त्री भी मर जाए। क्योंकि जिंदा रहे, तो जिंदगी का क्या भरोसा! जिंदगी स्वतंत्रता है; आज कुछ है, कल कुछ है; जिंदगी रोज बदलती है। कल किसी से प्रेम हो जाए! कोई इसी पुरुष ने तो ठेका नहीं ले लिया था। एक दिन इससे भी प्रेम नहीं था, फिर इससे प्रेम हो गया, तो एक दिन किसी और से भी प्रेम हो सकता है। यह संभावना ही मिटा दो, जीवन का ही अंत कर डालो। यह महाहत्या धर्म के नाम पर चलती रही।

और ध्यान रखना, सती होना आसान मामला नहीं है। जरा आग में अपना हाथ डाल कर देखना! तुम बाहर न भी निकालोगे तो हाथ अपने आप बाहर निकल आएगा। रिफ्लैक्स एक्शन वैज्ञानिक कहते हैं--कि कोई निकालने की जरूरत नहीं है; जो आदमी कोमा में बेहोश पड़ा हो, उसका हाथ भी आग में डाल दो, वह भी बाहर आ जाएगा। इतनी बुद्धि तो हाथ को ही है। इसके लिए उसकी खुद की बुद्धि की कोई जरूरत नहीं है। यह

हाथ बाहर निकल आएगा। बेहोश आदमी को भी सुई चुभाओ तो फौरन प्रतिक्रिया होगी, पैर हट जाएगा। रात तुम सोते हो, मच्छर काटता है, तुम हाथ से उड़ा देते हो। चींटा चढ़ने लगे पैर पर, तुम झटक देते हो। नींद नहीं खुलती।

तो आग में हाथ डालने से इतनी मुश्किल होती है, पूरा जीवित व्यक्ति जब आग में उतरता होगा तो आसान तो नहीं है मामला।

और किस पति के लिए? जिसने जीवन में दिया ही क्या था--सिवाय कष्टों के, सिवाय दुखों के! किस पति के लिए? जिसने जिंदगी को दूभर कर दिया था। जिसने जीवन को नरक कर दिया था। मारा होगा, पीटा होगा। क्योंकि बाबा तुलसीदास जैसे तथाकथित धर्मगुरु कह गए कि स्त्रियों को जितना पीटो उतना ही अच्छा।

ढोल गंवार शूद्र पशु नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी।

इनको तो ताड़ना देनी ही चाहिए। ढोल को मारो न तो बजे न। ऐसे ही स्त्री को मारो न तो बजे न। इसको तो मारते ही रहना चाहिए, पीटते ही रहना चाहिए।

यह बाबा तुलसीदास का चरित्र तुम्हें समझ में आता है! ये स्त्री पर नाराज हैं, क्योंकि स्त्री ने ही इनको बोध दिया। उसको ये क्षमा नहीं कर पाते।

खयाल रखना, इस दुनिया में जिन व्यक्तियों के कारण तुम्हें बोध मिले उनको क्षमा करना बहुत मुश्किल हो जाता है। क्योंकि बोध का क्षण अपमान का क्षण मालूम होता है। जीसस को लोगों ने सूली पर लटका दिया। किसलिए? क्योंकि जीसस ने हजारों लोगों को बोध देने की कोशिश की। लोगों के बरदाश्त के बाहर हो गया--कि यह हमें बुद्धू समझ रहा है! हमें बोध दे रहा है! सुकरात को जहर पिलाया। क्या कसूर था उसका? यही कसूर था कि उसने लोगों को जगाने की कोशिश की। लेकिन जगाने की कोशिश में एक बात तो जाहिर हो जाती है कि तुम सोए हुए हो। और कोई आदमी मानने को राजी नहीं कि मैं और सोया हुआ! सोए होंगे मेरे दुश्मन, सोए होओगे तुम। मैं नहीं सोया हुआ हूं! मैं जागा हुआ हूं।

इसलिए जो इसे जगाएगा उसको यह कभी क्षमा न कर पाएगा।

तुलसीदास को तुलसीदास की पत्नी ने ही जगाया। क्योंकि तुलसीदास की पत्नी गई थी मायके। और ये भैया पहुंच गए। बरसात की रात, अमावस की रात, ये पहुंच गए। ये रह न सके दो-चार दिन भी अकेले। नदी पूर पर थी। नदी को पार करना मुश्किल था। एक लाश का सहारा लेकर नदी पार की। समझा कि लाश नहीं, लक्क्ड़ है। ऐसा अंधापन! घर के पीछे के दरवाजे से घुसने की कोशिश की, दरवाजा बंद था। सांप लटक रहा था छज्जे से, उसी को पकड़ कर चढ़ गए, समझे कि रस्सी है। ऐसा अंधापन! और जब इनकी पत्नी ने इन्हें देखा, इनकी यह हालत देखी, तो कहा कि अगर तुमने इतनी ही चाहत परमात्मा की की होती, इतना ही प्रेम परमात्मा के प्रति जताया होता, ऐसी ही तुमने कभी अगर एक तल्लीनता से प्रभु की स्मृति की होती, तो उसे पा लेते। क्या मुझ हड्डी-मांस-मज्जा की स्त्री के पीछे पागल हो!

इससे तुलसीदास को चोट लगी। अहंकार फन मारा होगा। बात तो साफ थी, इनकार भी नहीं की जा सकती थी, विवाद भी नहीं किया जा सकता था। लौट पड़े। इस स्त्री के प्रति सम्मान प्रकट करना चाहिए था, लेकिन कभी कोई सम्मान प्रकट न किया। इस स्त्री को अपना गुरु मानना चाहिए था, मगर नहीं। इस स्त्री के कारण ही तुलसीदास को थोड़ा सा बोध हुआ, लेकिन उस बोध का बदला उन्होंने यूं लिया--सारी स्त्री जाति को गाली देकर। और पुरुषों का चरित्र तुम्हें समझ में आता है और स्त्रियों का चरित्र तुम्हें समझ में नहीं आता!

स्त्री सीधी-सरल है। उसके चरित्र में कोई उलझाव नहीं है। उलझाव है तो पुरुष के चरित्र में। और अगर स्त्री के चरित्र में कोई उलझाव हो, तो वह पुरुष ने पैदा किया है। इस स्त्री को तुमने जलने के लिए कहा तो जलने के लिए तैयार हो गई। लेकिन जलना आसान तो नहीं था, तो बड़ा आयोजन करना पड़ता था। हजारों ब्राह्मण बड़े जोर-जोर से वेद-पाठ करते थे, ढोल बजाए जाते, मंजीरे पीटे जाते और चिता पर घी फेंका जाता ताकि धुआं उठे--इतना धुआं उठे कि किसी को कुछ दिखाई न पड़े कि स्त्री की हालत क्या हो रही है। और इतने ढोल

पीटते और इतने जोर-जोर से वेद-पाठ करते कि स्त्री की चीख-पुकार का पता न चले। जिंदा स्त्री जलेगी तो चीख-पुकार तो होगी ही। और यह ब्राह्मणों का एक समूह चारों तरफ से मशालें लिए खड़ा रहता; वह स्त्री भागती तो उसे मशालों से धक्का देकर वापस गिरा देना पड़ता। यह हत्या थी, शुद्ध हत्या थी।

लेकिन इस हत्या को करने वाले लोगों का चरित्र तुम्हें समझ में आता है। और जिसकी हत्या की गई उसका चरित्र तुम्हें समझ में नहीं आता।

स्त्री को आदमी ने क्या-क्या नहीं बनाया! तुमने देवदासियां बनाईं, जो कि सिर्फ वेश्याओं के लिए दिया गया अच्छा नाम है। और वेश्याएं भी किसने बनाईं?

अब यह थोड़ा सोचो! वेश्या इस बात का सबूत है कि पुरुष का चरित्र समझ में नहीं आता। अगर स्त्री के चरित्र में गड़बड़ होती तो वेश्य बनाती, वेश्याएं नहीं। तो जैसे लाल बत्ती वाला मोहल्ला होता है स्त्रियों का, ऐसा लाल बत्ती वाला पुरुषों का मोहल्ला होता, जहां दादा, गुंडे, अखाड़ेबाज अपने-अपने दरवाजे के सामने दंड-बैठक लगाते हुए प्रदर्शन करते कि बाई, वहां कहां जा रही है, असली दादा यहां रहता! भुजाएं फड़काते। हनुमान जी का चालीसा पढ़ते। लंगोट लगा कर सड़कों पर कवायद करते। अगर स्त्री के चरित्र में कोई गड़बड़ होती तो उसने पुरुष वेश्याएं पैदा की होतीं। गड़बड़ तो पुरुष के चरित्र में मालूम होती है, क्योंकि स्त्री वेश्याएं पैदा क्यों हुईं? किसने पैदा कीं?

लेकिन पुरुष कुछ भी कहे, कहते हैं--वह मर्द बच्चा! पुरुषों का समाज है, पुरुषों की सत्ता है, इसलिए स्त्रियों पर जबरदस्ती तुमने थोप दी हैं चीजें। और फिर भी तुम कहते हो--इनका चरित्र समझ में नहीं आता! इनका चरित्र... तुमने इन्हें मौका ही कहां दिया कि अपना चरित्र निर्माण कर लें? तुमने इन्हें मौका ही कहां दिया, स्वतंत्रता कहां दी?

तुम्हारे शास्त्र कहते हैं कि जब लड़की छोटी हो तो बाप उसकी रक्षा करे। खयाल रखना, मां का नाम नहीं आता उसमें, सिर्फ बाप रक्षा करे। क्यों? छोटी बच्ची की मां रक्षा न करे? मां का क्या भरोसा--त्रिया चरित्रम्! बाप रक्षा करे। और जब लड़की बड़ी हो जाए, विवाहित हो जाए, तो पति रक्षा करे। और जब स्त्री बूढ़ी हो जाए तो उसका बेटा रक्षा करे।

यह बड़े मजे की बात है, रक्षा ही रक्षा हो रही है, तो खतरा किससे है? मतलब बाकी स्त्रियों से खतरा है? बचपन में बाप रक्षा करे, मतलब मां से खतरा है? जवानी में पति रक्षा करे, मतलब मोहल्ले की पत्नियों से खतरा है? बुढ़ापे में बेटा रक्षा करे, मतलब मोहल्ले की बुढ़ियों से, किससे खतरा है? खतरा है तो पुरुष से है। तो चरित्र किसका समझ में नहीं आता?

यह बकवास अब बंद होनी चाहिए। कनुलाल मेहता, मैं तो इससे राजी नहीं। भाग्य तो होता ही नहीं; ईजाद है पंडितों और पुरोहितों की--आदमी के शोषण के लिए। ईजाद है आदमी को सांत्वना देने के लिए। भाग्य के कारण ही इस देश में पांच हजार साल से हम गरीब हैं, गुलाम हैं, परेशान हैं, दुखी हैं, दीन हैं, दरिद्र हैं। भाग्य है! क्या कर सकते हैं! और स्त्री का चरित्र--यह भी पुरुषों का जाल है। स्त्री साफ-सीधी है। उसका अगर कोई कसूर है तो एक मैं मानता हूं और वह यह कि उसने पुरुष के मापदंड स्वीकार किए। इनकार कर देना चाहिए। उसे अपना चरित्र स्वयं खोजना चाहिए। उसे अपनी निजता की घोषणा करनी चाहिए।

और पुरुष को क्या जरूरत पड़ी कि स्त्री का चरित्र समझे? अपना ही समझे! अपना तो समझेंगे नहीं, स्त्री का चरित्र समझने चले हैं! स्त्री अपना समझ लेगी। कोई स्त्री नहीं कहती कि हमें पुरुष का चरित्र समझना है। क्या कचरे से लेना-देना है! उसे पता ही है इनका चरित्र, समझना क्या है! इनकी एक-एक हरकत से वाकिफ है। इनके हर रंग-ढंग से वाकिफ है। समझने जैसा क्या है इनमें! समझने को भी कुछ हो। मगर पुरुष को स्त्री का चरित्र समझना है। क्यों? उसका कारण तुम समझने की कोशिश करो।

पश्चिम के बहुत बड़े विचारक बेकन ने लिखा हैः नालेज इ.ज पावर। ज्ञान शक्ति है। जो चीज समझ में आ जाए, उसके हम मालिक हो जाते हैं। जब, बिजली कैसे चलती है, हमें समझ में आ गया, तो हम मालिक हो

गए। जब तक नहीं समझ में आता था, तब तक बिजली चमकती आकाश में, आदमी घुटने टेक देते। हमारे ऋषि-मुनि का काम ही यह था कि बिजली चमके, जल्दी से घुटने टेकें, हवन-यज्ञ करें, इंद्र देवता को प्रसन्न करें--कि हे देवता, ऐसा न करना! हम से कुछ भूल-चूक हुई हो तो क्षमा करना! बिजली न चमकाओ! नाहक न धमकाओ! दुश्मनों पर गिराओ! अरे हम तो भक्त हैं, हम तो तुम्हारी हमेशा याचना के लिए तैयार खड़े हैं। सोमरस पीयो। विराजो। पधारो! पलक-पांवड़े बिछाते हैं। सोमरस यानी शराब, गांजा-भांग, अफीम। सोमरस पी लो, मगर शांत हो जाओ। मत बिजली चमकाओ।

लेकिन जिस दिन आदमी समझ गया बिजली का राज, उसी दिन बिजली पर काबू हो गया। अब कोई इंद्र देवता की प्रार्थना नहीं करता। बटन दबाई, और इंद्र देवता बेचारे पंखा चला रहे हैं। बटन दबाई, इंद्र देवता बल्ब में लटके हुए हैं, उलटे लटके हुए हैं! रात भर लटके हुए हैं! जो चाहो करवाओ। रेलगाड़ी चलवाओ। यह हवाई जहाज चल रहा है, अगर यह हवाई जहाज ऋग्वेद के समय में चलता, एकदम ऋषि-मुनि गिर पड़ते अपने घुटनों पर कि आ गए इंद्र देवता! यह गर्जन, यह तर्जन, देखते हैं! मगर अब हम जानते हैं। तुम हंस रहे हो! ऋषि-मुनि होते तो रोते!

स्त्री के चरित्र को समझने की जरूरत क्या है? क्योंकि स्त्री पर कब्जा करना है। हम जिस चीज को समझना चाहते हैं उसका कारण ही कुल इतना होता है कि ज्ञान से शक्ति आती है। समझ लिया कि फिर मालिक हो गए। स्त्री के मालिक होना है, सब तरह से मालिक होना है। इतनी मालकियत, लेकिन फिर भी पक्का भरोसा नहीं। तो आदमी जासूसी करता रहता है। दफ्तर से जल्दी आ जाएगा, खिड़की में से झांक कर देखेगा कि कहीं त्रिया चरित्र, अरे क्या भरोसा, किसी से गुफ्तगू कर रही हो! घर में आकर चारों तरफ देखेगा--पहला काम। किसी के जूते दिखाई पड़ जाएं, किसी की छतरी दिखाई पड़ जाए, किसी की टोपी टंगी दिखाई पड़ जाए।

स्वर्ग के दरवाजे पर तीन आदमी एक साथ पहुंचे। सेंट पीटर ने, जो वहां के पहरेदार हैं... ईसाई स्वर्ग रहा होगा। कई दरवाजे हैं। तीनों ईसाई थे पहुंचने वाले, इसलिए ईसाई दरवाजे पर पहुंचे। पहले से पूछा कि भाई, अभी तो तुम्हारे आने की कोई बात न थी, कैसे अचानक आ गए? अभी तुम्हारी उम्र पूरी हुई नहीं।

उस आदमी ने कहा कि मैं अपने घर आया, देखा कि पत्नी बिस्तर पर लेटी है और उसके तकिए के ऊपर बगल में ही एक सिर का और चिह्न बना हुआ है। गड्ढा बना है तकिए पर। शक पैदा हो गया। मैंने पूछा, यह आदमी कहां है? वह कहने लगी, कहां का आदमी? कैसा आदमी? अरे तुम भी क्या बातें करते हो! मैंने करवट ली होगी तो मेरे ही सिर का निशान बन गया होगा। मगर वह निशान जाहिर था कि दूसरे का ही है। बिस्तर पर भी सलवटें थीं। नीचे झांक कर देखा तो जूते भी थे। फिर तो शक बढ़ गया। फिर मेरा दिमाग एकदम भन्ना गया। फिर मैं भागा, सारे मकान को ढूंढ डाला। यह खिड़की खोली, वह दरवाजा खोला, यह अलमारी खोली, वह अलमारी खोली। ऐसा क्रोध चढ़ा कि चीजें तोड़-फोड़ दीं, बर्तन गिरा दिए। चौके में पहुंचा, फिर भी कुछ किसी का कहीं कोई पता नहीं। एकदम गुस्से में आकर रेफ्रिजरेटर को सरका कर सातवीं मंजिल से नीचे गिरा दिया। रेफ्रिजरेटर सरका कर गुस्से में गिरा तो दिया, मगर वजनी था, कि मेरा हार्टफेल हो गया।

दूसरे से पूछा कि भाई, तुम यहां कैसे आए?

उसने कहा, मैं भी क्या बताऊं! मैं तो रास्ते से चला जा रहा था कि एकदम रेफ्रिजरेटर मेरे ऊपर गिरा। बचने का मौका ही नहीं मिला। सोचने का भी मौका नहीं मिला। चट मंगनी पट ब्याह हो गया। जब आंख खुली तो यहां खड़ा पाया।

तीसरे से पूछा, तुम्हारी क्या कथा है?

उसने कहा, मैं भी क्या करूं! मैं कुछ कर ही नहीं रहा था। मैं तो सिर्फ रेफ्रिजरेटर के भीतर खड़ा हुआ था। यह हरामजादा आया और इसने एकदम से सात मंजिल से गिरा दिया। मैं तो शांति से बिल्कुल ध्यान-मग्न;

जिंदगी में पहली बार तो निर्विचार हुआ था, पहली दफे तो समाधि का थोड़ा सा रस आ रहा था, यह कमबख्त आ गया। मैंने किसी का कुछ बिगाड़ा ही नहीं था, सिर्फ रेफ्रिजरेटर में खड़ा था। अब आदमी को कहीं न कहीं तो होना ही पड़ेगा। अरे कोई कहीं तो खड़ा होगा ही।

आदमी घर आता है तो पता लगाता रहता है, उसकी आंखें तलाश करती रहती हैं--कि कहीं स्त्री प्रसन्न तो नहीं दिखाई पड़ रही! कहीं घर में कोई ऐसा जरा सी भी आहट मिल जाए। दफ्तर में भी बैठा यही विचार करता रहता है कि घर क्या हो रहा है! त्रिया चरित्र! और खुद? खुद श्रीमद्भगवद गीता में कोकशास्त्र छिपा कर पढ़ता रहता है। वह भी त्रिया चरित्र समझने को। ऐसा कुछ... नहीं तो कोकशास्त्र से उसको क्या करना है? त्रिया चरित्र समझने को कोकशास्त्र पढ़ता है। त्रिया चरित्र समझने को महर्षि वात्स्यायन के काम-सूत्र पढ़ता है। त्रिया चरित्र समझने को फिल्में देखने जाता है। त्रिया चरित्र समझने को वेश्याओं के घर जाता है। त्रिया चरित्र समझ कर ही रहेगा! मगर किसलिए? तुम्हारा त्रिया ने क्या बिगाड़ा? अरे तुरीय समझो न, क्या त्रिया समझ रहे हो! ये तीन में ही तो तेरह हो गए, तीन तेरह हो गए, अब चौथे को ही समझो।

चौथे को समझना हो तो स्वयं को समझना होता है। मैं यह बात ही नहीं सोच पाता कि क्यों कोई किसी का चरित्र समझे! अपने को ही समझे।

मगर दूसरे के चरित्र में रस है, क्योंकि दूसरे पर कब्जा करना है। और तुम समझ लो तो मालिक हो जाते हो। रहस्य का कोई मालिक नहीं हो सकता। इसलिए पुरुष की आकांक्षा तो प्रकट होती है, कनुलाल मेहता, इस सूत्र में, और कुछ भी नहीं।

औरः देवो न जानाति कुतो मनुष्यः!

और फिर कहा जाता है कि देव भी नहीं जानते त्रिया का चरित्र।

कौन देव? कैसे देव? उनकी जरा कथाएं तो उलट-पलट कर देखो। अगर मैं उनको ठीक-ठीक वर्णन करूं तो नाराज न होना। नहीं तो कई लोग कहते हैंः हमारी भावनाओं को ठेस पहुंच गई। अब मैं क्या करूं, तुम्हारे देवता ही ऐसे हैं, इसमें मेरा क्या कसूर? अपने देवताओं से कहो कि भैया, तुम अपना चरित्र जरा ठीक करो, कि तुम्हारे ऐसे चरित्र के कारण यह आदमी उलटी-सीधी बातें कह देता है, उससे हमारी भावनाओं को ठेस पहुंचती है! और यह मानेगा नहीं जब तक तुम चरित्र ठीक न करोगे।

मगर देवताओं के चरित्र से तुम्हें कोई चिंता नहीं पैदा होती। ये क्या खाक देवता समझेंगे! ये खुद ही स्त्रियों के पीछे दीवाने हुए घूमते हैं। कोई ऋषि-मुनि बेचारे ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने गए, उनकी स्त्रियों को धोखा दे जाते हैं। ये देवता हैं तुम्हारे! थोड़ी शर्म भी खाओ! फिर लुच्चे-लफंगे किसको कहोगे? कम से कम इतना तो करो कि ऋषि-मुनियों की स्त्रियों को तो न सताओ! वे बेचारे ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करने गए। पहले तो उनको समझा दिया इन्हीं देवताओं ने कि ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करो, ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करना बहुत ही अच्छा है। मतलब तुम समझो कि क्यों ब्रह्ममुहूर्त में स्नान करो? कि मुंह अंधेरे तुम घर के बाहर जाओ तो ये घर के भीतर आएं। और देवता हैं और अंधेरा, सो देवता धोखा दे देते हैं। और देवता हैं, इनकी शक्तियों का तो क्या कहना, चमत्कार ही चमत्कार! पति बन कर चले आते हैं! और पत्नियां धोखा खा जाती हैं। बेचारी अब पत्नियां करें भी क्या, जब पति ही सामने खड़े हों। और फिर यही देवता कहेंगे कि त्रिया का चरित्र समझ में नहीं आता।

अहिल्या को इसी तरह एक देवता ने भ्रष्ट किया। लेकिन मजा तुम देखते हो, जब अहिल्या का पति, ऋषि वापस लौटा, तो उसने देवता को श्राप नहीं दिया, अभिशाप नहीं दिया। यह कैसी बेईमानी है! अभिशाप दिया अहिल्या को कि जा पत्थर हो जा! यह कैसा न्याय? बेईमानी की थी किसी देवता ने, धोखा दिया था किसी देवता ने, बदमाशी की थी किसी देवता ने, कोई देवता गुंडा साबित हुआ था, मगर दोष स्त्री का है! पुरुषों के बीच एक सांठ-गांठ है। देवता को तो दोष देना ही नहीं। स्त्री पत्थर हो गई।

और फिर यह स्त्री भी, राम का चरण जब इसे स्पर्श होगा, तब मुक्त होगी अभिशाप से। क्यों? सीता के पैर से नहीं हो सकता था यह काम? सीता मइया भी पीछे-पीछे चली आ रही थीं। यह रामचंद्र जी के चरण में ऐसी क्या खूबी है? रामचंद्र जी के ही पैर को छूकर क्यों? पहले तो एक देवता भ्रष्ट कर गया, वह भी पुरुष। छुड़ाएगा भी पुरुष ही!

इतना तो करते कम से कम, चलो अहिल्या पर नाराज हो गए थे, पत्नी पर, देवता से डरे होंगे, ऋषि-मुनि थे, कि देवता और कहीं नाराज न हो जाए, बिजली न कड़काए, बादल न भेज दे, कुछ उपद्रव न मचाए, तो जो गरीब है, जो कमजोर है, उसकी गर्दन पकड़ लो। पकड़ ली स्त्री की गर्दन, इसको पत्थर बना दिया। मगर अब तो कम से कम थोड़ा खयाल रखना था कि इसको फिर किसी पुरुष से ही मुक्ति न दिलवाओ। वह भी राम का ही पैर पड़ेगा तो!

और राम का व्यवहार स्त्रियों के साथ अच्छा नहीं है। मर्यादा पुरुषोत्तम होंगे, मगर स्त्रियों को कतई उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम नहीं मानना चाहिए। क्योंकि सीता को जब लंका से वे छीन कर लाए तो जो पहले शब्द सीता से बोले, अभद्र हैं। पहले शब्द उन्होंने ये कहे कि सीता, यह तू जान रख, ऐ औरत तू ठीक से पहचान ले कि मैंने तेरे लिए युद्ध नहीं किया है। यह तो अपने वंश की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया है। यह तो अपने कुल की प्रतिष्ठा के लिए युद्ध किया है। हम जैसे पुरुष स्त्रियों के लिए नहीं लड़ते। अरे स्त्री तो पैर की जूती है, स्त्री के लिए कौन लड़ता है!

यह कोई बात थी? यह कोई स्वागत करने का ढंग था? वर्षों तक यह सीता प्रतीक्षा करती रही इस व्यक्ति की, जो इस बेहूदे ढंग से स्वागत करेगा! और फिर इसकी अग्नि-परीक्षा ली गई। वह भी स्त्री की! कम से कम इतना तो भलेमानस को सोचना था कि जब विवाह किया था तो दोनों ने फेरे लगाए होंगे साथ-साथ। आगे-आगे पति चले होंगे, पीछे-पीछे पत्नी चली होगी। अग्नि-परीक्षा हुई थी तो दोनों को साथ-साथ निकलना था, आगे-आगे पति, पीछे-पीछे पत्नी। दोनों की ही परीक्षा हो जानी थी। क्योंकि स्त्री भी इतने दिन दूर रही थी, पता नहीं त्रिया चरित्र! मगर ये सज्जन भी तो इतने दिन दूर रहे थे, क्या पता इनके चरित्र का!

मेरे एक मित्र हैं--डाक्टर नावलेकर। उन्होंने एक अदभुत किताब लिखी हैः ए न्यू एप्रोच टु रामायण। बड़ी हिम्मतवर किताब है। उन्होंने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि राम का शबरी से प्रेम था।

शक मुझे भी होता है। पक्का मैं नहीं कह सकता, क्योंकि मुझे राम में इतना रस नहीं है, इसलिए मैंने कोई खोजबीन की नहीं। रस ही नहीं है, क्यों समय खराब करूं? लेकिन शक मुझे भी होता है। क्योंकि सिर्फ प्रेमी ही एक-दूसरे की झूठी चीजें खा सकते हैं। नहीं तो कौन किसकी झूठी चीज खाए? कोई औरत तुम को जूठा बेर करके दे, तुम फौरन कहोगेः ऐ बाई, यह क्या करती है? अरे देना किसी और को। अपने घरवाले को देना! कोई जूठा खा सकता है केवल तभी जब प्रेम हो, बहुत प्रेम हो।

नावलेकर ने तो बहुत प्रमाणों से सिद्ध करने की कोशिश की है कि शबरी से प्रेम था। नावलेकर की तो यह भी मान्यता है कि राम का सोने के मृग को खोजने जाना वस्तुतः सप्रयोजन था। नहीं तो राम क्या इतने बुद्धू हैं कि सोने के मृग को खोजने जाएं?

बात तो सोचने जैसी है। तुम को भी रास्ते में अगर सोने का मृग दिखाई पड़ जाए, तो माना कि तुम महाबुद्धू हो, फिर भी तुम इतना समझोगे कि कहीं सोने का मृग होता है! होता ही नहीं सोने का मृग। और सोने का मृग हो भी तो किसी ने पेंट किया होगा, पोत दिया होगा ऊपर से रंग। लगता है स्वर्ण का, स्वर्ण का हो कैसे सकता है? और सोने का हो तो चलेगा, भागेगा, लौट-लौट कर रामचंद्र जी को देखेगा? सोने का मृग और रामचंद्र जी धोखा खा गए! हद हो गई। और यूं तो ज्ञानी समझाते हैं कि यह जगत मृग-मरीचिका है और राम सोने के मृग की मरीचिका में आ गए!

नावलेकर का कहना हैः यह सब जालसाजी है। यह सीता चोरी चली जाए, इसका आयोजन है। क्योंकि सीता के रहते शबरी से कैसे संबंध बने? वह सीता मइया पीछे ही लगी हैं।

मैं नहीं जानता कहां तक यह बात सच है, कहां तक झूठ है। मगर कुछ भी हो, राम को भी परीक्षा देनी चाहिए थी। हमेशा स्त्री-पुरुष के साथ समतौल व्यवहार होना चाहिए। परीक्षा भी ले ली अग्नि की, सीता उसमें से बच कर भी निकल आई, सबूत भी मिल गया।

एक तो मैं ऐसा मानता नहीं कि अग्नि कोई फर्क करेगी। तुम खुद ही प्रयोग करके देख सकते हो। जैसे मैं तुमसे पूछूं, दो और दो कितने? तुम कहो, चार। सच बोल रहे हो न? अब जरा अंगारा हाथ में रखो। झूठ तो तुम बोले नहीं, कोई भी नहीं कहेगा कि झूठ बोले, दो और दो चार। मैं तुमसे पूछूं, घड़ी में कितने बजे? तुम कहो कि सवा नौ। मिनट, सेकेंड बता दो। कोई झूठ तो नहीं बोल रहे। उठाओ अंगारा हाथ में, अगर न जलो तो मैं समझूं कि सत्य के लिए अग्नि भेद कर देती है। और फिर तुम कहो दो और दो पांच और जल जाओ। इतना सीधा सा प्रयोग है, करके घर में देख लेना।

अग्नि की परीक्षा, पहले तो बात ही गलत है। मगर अभी भी इस तरह की मूढ़ता चलती है। अभी चार दिन पहले मैंने अखबारों में पढ़ा कि एक स्त्री को शक हो गया कि उसके घर में जो नौकरानी है--लड़की, जो बर्तन वगैरह साफ करती, गरीब--उसने चोरी कर ली है। घड़ी चोरी चली गई है। वह उसको लेकर मंदिर पहुंच गई। मंदिर के पुजारी ने कहा, परीक्षा ले लो। वह लड़की कह रही है कि मैंने नहीं चुराई है। चूंकि गरीब लड़की है, उसको पक्का भरोसा ही है कि उसने चुराई नहीं है। तो उसने कहा, फिर जलते हुए, उबलते हुए तेल में हाथ डाल दे! भीड़ इकट्ठी हो गई। अग्नि-परीक्षा शुरू। और लड़की को पक्का था कि उसने चुराई ही नहीं है इसलिए उसने तेल में हाथ डाल दिया। हाथ जल गया। हाथ जल गया तो सिद्ध हो गया कि इसने चुराई है। और लड़की कहती रही कि मैंने नहीं चुराई है। और निश्चित है कि उसने नहीं चुराई, नहीं तो वह हाथ डालने में डरती। सीधी-सादी, भोली-भाली लड़की। सोचा होगा उसने कि जब सीता बच गई अग्नि-परीक्षा में तो तेल मुझे ही क्यों जलाएगा जब मैंने चुराई ही नहीं है?

मगर ये मूर्खतापूर्ण बातें हैं। इन मूर्खतापूर्ण बातों को कितना ही तुम बल दो, कितना ही समर्थन जुटाओ, ये ताश के पत्ते हैं, जरा से हवा के झोंके में गिर जाएंगे। मगर इसी तरह की मूर्खतापूर्ण बातों पर इस देश की पूरी की पूरी बुनियादें रखी हैं।

राम को भी जाना था! मगर राम होशियार और त्रिया चरित्र समझ में आता नहीं। राम जानते होंगे कि गए कि जले। और सोचते होंगे--सीता जल ही जाए तो झंझट मिटे। तो लेकर शबरी को अयोध्या नगरी पहुंच जाएं। मगर सीता बच गई।

अब पता नहीं कैसी अग्नि-परीक्षा थी! यूं ही रही होगी जैसी सरकस वगैरह में होती है। स्प्रिट वगैरह से जलाई गई होगी, जिसमें से आदमी निकल सकता है। तुमने सरकस में देखा होगा। स्प्रिट से जलाई जाती है आग, उसमें से छलांग लगा कर निकल सकते हो। यह कोई असली अग्नि नहीं रही होगी। कुछ न कुछ धोखाधड़ी है, कहीं न कहीं कोई न कोई चार सौ बीसी है। आग नियम नहीं बदलती। प्रकृति के नियम निरपवाद हैं।

और फिर भी समझ लो कि अग्नि से यह बच गई थी, तो एक धोबी ने कह दिया, संदेह कर दिया, अपनी पत्नी से कह दिया कि तू रात भर कहां रही? त्रिया चरित्र समझ में ही नहीं आता कि रात भर कहां रही!

अरे रात भर कहीं भी रही हो, त्रिया चरित्र समझ में तो आ ही जाना चाहिए!

चंदूलाल मुझसे कह रहे थे कि मेरी स्त्री बड़ी धोखेबाज है, बड़ी बेईमान है।

मैंने कहा, तुम्हें कैसे पक्का भरोसा हुआ?

उसने कहा, कल रात कहने लगी... मैंने पूछा, कहां रही रात भर? कहने लगी, अरे कहीं नहीं, अपनी सहेली कमला के यहां रुक गई थी। बिल्कुल झूठ बोल रही है।

मैंने कहा, चंदूलाल, तुम्हें कैसे पक्का हुआ कि झूठ बोल रही है?

उसने कहा, पक्का झूठ है, क्योंकि कमला के पास तो रात भर मैं था। हरामजादी बिल्कुल झूठ बोल रही है! चरित्र तो है ही नहीं। पुरुषस्य भाग्यं त्रिया चरित्रम्--कहने लगे चंदूलाल--देवो न जानाति कुतो मनुष्यः! अरे क्या मनुष्य का वश। क्या चंदूलाल बेचारा जान पाए! देवों को भी समझ में नहीं आता। अब यह देखो दुष्ट बिल्कुल झूठ बोल रही है, सरासर झूठ बोल रही है। रात भर मैं कमला के पास रहा, और यह बता रही है मैं कमला के यहां रुकी थी।

धोबी ने कह दिया कि तू रात भर कहां रही? मैं कोई राम नहीं हूं कि तुझे घर में रख लूं।

बस यह बात काफी हो गई, यह पर्याप्त हो गई, अग्नि-परीक्षा व्यर्थ हो गई। और सीता को निकाल बाहर कर दिया। बिना कुछ कहे, बिना कुछ बताए गर्भवती स्त्री को घर के बाहर फेंक दिया। यह कुछ बात समझ में तुम्हें आती है? यह त्रिया चरित्र में गड़बड़ है या यह तुम्हारे तथाकथित पुरुष के चरित्र में गड़बड़ है?

यह पुरुष चरित्र कुछ भ्रांतियों पर खड़ा हुआ है। एक तो पुरुष का अहंकार, दंभ। वही दंभ बोला कि मैंने अपने वंश की परंपरा के बचाने के लिए तुझे बचाया है, तुझे बचाने के लिए युद्ध नहीं किया है। वही दंभ अग्नि-परीक्षा लिया। वही दंभ एक धोबी के कह देने से... । अगर यूं ही था कि धोबी ने कहा था, तो खुद भी चले जाते कि ठीक है, क्या ऐसे लोगों पर समय खराब करना जिनको मुझ पर भरोसा न हो। क्योंकि उस धोबी ने सिर्फ सीता पर ही तो शक नहीं किया था, उस धोबी ने असल में राम पर शक किया था। बात तो साफ है। उसने यह कहा थाः मैं कोई राम नहीं हूं कि तुझे घर में रख लूं! उसका संदेह किस पर था--सीता पर या अपने पर? वह यह कह रहा था कि मैं कोई राम नहीं हूं, तू मुझे राम जैसा गया-बीता न समझ कि तुझे घर में रख लूंगा। संदेह तो उसने राम पर उठाया था। राम तो घर में ही रहे, सीता को निकाल बाहर कर दिया।

ये सब पुरुषों के द्वारा रची गई कथाएं!

रावण की बहन शूर्पणखा ने लक्ष्मण से निवेदन किया कि मुझे तुमसे प्रेम है, मैं विवाह कर लूं। लक्ष्मण जी ने आव देखा न ताव, बड़े भैया की आज्ञा ली कि काट दूं नाक? और बड़े भैया बोले, काट दे, क्या देखता है, लक्ष्मण दास! काट दे नाक!

अब इसमें नाक काटने का क्या सवाल था? क्योंकि हर किसी को हक है। ये दोनों भैया जब गए जनकपुरी और सीता को इन्होंने बगीचे में फूल चुनते देखा, तो दोनों ललचा गए थे। इनकी क्या नाक काटनी थी? दोनों मोहित हो गए थे। इनके मोहित होने का वर्णन खूब रस ले-ले कर कवियों ने किया है।

लेकिन इस स्त्री की क्या भूल थी? इससे इतना ही कह सकते थे कि क्षमा करो, मैं विवाहित हूं! नाक काटने का क्या सवाल था? मैं कई दफे सोचता हूं कि नाक काटने की बात क्यों उठती है? मगर स्त्री है। स्त्री के साथ जो भी दुर्व्यवहार करो, सब ठीक है। काट दो नाक!

यह भी मैं सोचता हूं कि यह स्त्री जरूर बहुत सुंदर रही होगी। रावण की बहन थी, राजकुमारी थी। अलमस्त, अल्हड़ थी। यही तो कसूर था रावण का और रावण के आस-पास जो लोगों का समूह था उसका--कि वे अलमस्त लोग थे, फक्कड़ लोग थे, ज्यादा आदिम लोग थे। और ये तथाकथित ऋषि-मुनि ईसाई मिशनरियों जैसे थे। ये उनको जबरदस्ती आचरण सिखा रहे थे, उनका अल्हड़पन नष्ट कर रहे थे। और उनकी ही रक्षा के लिए राम को बुलाया गया था। यूं समझो कि वे राम के एजेंट थे--वे सब जो ऋषि-मुनि थे, वशिष्ठ इत्यादि। उनका धंधा यह था कि दक्षिण में जाकर लोगों को वैदिक धर्म में दीक्षित करना।

लेकिन दक्षिण ऐसा मालूम होता है ज्यादा स्वतंत्र था। नहीं तो कोई युवती आकर लक्ष्मण से सीधा निवेदन करे! जाहिर है कि स्वतंत्रता थी, स्त्री और पुरुष के बीच एक समानता थी। उसने कुछ बुराई तो न की

थी। इतना ही कहा था कि मैं प्रेम का निवेदन करती हूं, मुझसे विवाह कर लो। मना कर देना था कि मैं पहले से ही विवाहित हूं, क्षमा करो।

लेकिन नाक काटी, इससे मुझे यह शक होता है कि स्त्री बहुत सुंदर रही होगी। और राम ने भी हां भर दी कि काट ही ले नाक। इससे मुझे यह भी साफ होता है कि दोनों को सुंदर लगी होगी। इसके सौंदर्य को नष्ट ही कर दो, नहीं तो खतरा है। खुद के भीतर कहीं खतरा छिपा होगा। वह हम अपना दोष दूसरे पर थोपते हैं।

कनुलाल मेहता, मैं तो कुछ ऐसा नहीं देखता कि स्त्री के चरित्र में कुछ भूल है। अगर भूल है तो वह पुरुष के द्वारा आरोपित चरित्र के कारण है। मैं एक ऐसी दुनिया देखना चाहता हूं जहां स्त्री अपने ढंग से जीए, पुरुष अपने ढंग से जीए। अगर दोनों का मिलन हो जाए तो ठीक। लेकिन मिलन का मतलब गुलामी न हो। मिलन का मतलब मैत्री हो। न कोई पति हो, न कोई पत्नी हो; मित्रता पर्याप्त है। पति का मतलब होता हैः मालिक। मालकियत का रिश्ता कोई रिश्ता नहीं है। मालकियत का रिश्ता अपमानजनक है। और स्त्री को जानने की चेष्टा में उसी मालकियत को मजबूत करने का उपाय है।

और किन देवताओं की तुम बात कर रहे हो? देवता कहीं होते हैं? सिर्फ कल्पनाएं हैं। लेकिन तुमने जिन देवताओं की कल्पनाएं की हैं, वे तुम्हारे भीतर की वासनाओं के सबूत हैं। तुम जो नहीं कर सकते हो, वही तुमने देवताओं से करवा लिया है। वह प्रक्षेपण है। जो तुम करना चाहते हो और नहीं कर सकते हो, वह देवताओं से करवा लिया है। देवता तुम्हारी वासनाओं के साकार रूप हैं। देवता कहीं हैं ही नहीं।

और मनुष्य अपने को समझे, अपने को जाने; किसी दूसरे को न समझने की कोई जरूरत है, न जानने की कोई जरूरत है।

और मैं इतना जरूर कहना चाहूंगाः जिसने अपने को जाना उसने सबको जाना। जिसने अपने को पहचाना उसने सबको पहचाना। जिसने अपने को पा लिया उसने इस जगत में जो भी पाने योग्य है सब पा लिया। उसके लिए कुछ और पाने को शेष नहीं रह जाता है।

खुदा जाने कहां है असगरे-दीवाना बरसों से
कि जिसको ढूंढते हैं काबा-ओ-बुतखाना बरसों से
तड़पना है न जलना है, न जल कर खाक होना है
ये क्यों सोई हुई है फितरते-परवाना बरसों से
कोई ऐसा नहीं या रब कि जो इस दर्द को समझे
नहीं मालूम क्यों खामोश है दीवाना बरसों से
कभी सोजे-तजल्ली से उसे निस्बत न थी गोया
पड़ी है इस तरह खाकिस्तरे-परवाना बरसों से
हसीनों पर न रंग आया, न फूलों पर बहार आई
नहीं आया जो लब पर नग्मा-ए-मस्ताना बरसों से
जिसे लेना हो आकर उससे अब दर्से-जुनूं ले ले
सुना है होश में है असगरे-दीवाना बरसों से

कनुलाल मेहता, यहां आ गए हो। यह दीवानों की बस्ती है--पागलों की, मस्तों की! यहां से थोड़ी पीकर लौटो। थोड़ा स्वयं को जानने का सूत्र लेकर लौटो।

खुदा जाने कहां है असगरे-दीवाना बरसों से
कि जिसको ढूंढते हैं काबा-ओ-बुतखाना बरसों से

नहीं मिलेगा मंदिरों और मस्जिदों में। मंदिर-मस्जिद खुद उसको खोज रहे हैं।

तड़पना है न जलना है, न जल कर खाक होना है

और यह क्या हो गया है आदमी को?

तड़पना है न जलना है, न जल कर खाक होना है
ये क्यों सोई हुई है फितरते-परवाना बरसों से

यह परवाने को क्या हो गया? जलना ही भूल गया।

जो स्वयं को जानता है, वह परवाना अपने ही भीतर की शमा के पास आ जाता है। जो स्वयं को पहचान लेता है, वह परवाना अपनी ही शमा में जल कर राख हो जाता है। अहंकार मिट जाता है। और तभी स्वयं का बोध, स्वयं की अनुभूति प्रकट होती है।

नहीं मालूम क्यों खामोश है दीवाना बरसों से
कोई ऐसा नहीं या रब कि जो इस दर्द को समझे
नहीं मालूम क्यों खामोश है दीवाना बरसों से

क्या हो गया आदमी को? क्यों यह खामोशी है? क्यों यह खोज नहीं? क्यों जुस्तजू खो गई है? क्यों आदमी ने अपने को खोजना बंद कर दिया है?

कभी सोजे-तजल्ली से उसे निस्बत न थी गोया
पड़ी है इस तरह खाकिस्तरे-परवाना बरसों से
हसीनों पर न रंग आया, न फूलों पर बहार आई
नहीं आया जो लब पर नगमा-ए-मस्ताना बरसों से

जब तक तुम्हारे ओंठों पर मस्ती का नग्मा न आ जाए... और यह तभी आ सकता है जब अपने को जान लो। यह भीतर का झरना फूटे तो ही अमृत, तो ही गीत, तो ही मस्ती। तो तुम्हारे भीतर से ऋचाएं उठें! तो तुम्हारे भीतर से सूत्र जगें, शास्त्रों का जन्म हो! तुम्हारे कंठ से वेद फूटें!

हसीनों पर न रंग आया, न फूलों पर बहार आई
नहीं आया जो लब पर नगमा-ए-मस्ताना बरसों से

आदमी की जिंदगी में न अब फूल हैं, न रंग है। यूं जैसे कि आदमी के पंख टूट गए। जैसे आदमी परवाज भूल गया, उड़ना ही भूल गया। यह क्या हो गया है?

हम औरों को समझने में लग गए। कोई पदार्थ को समझ रहा है, कोई समाज को समझ रहा है, कोई धर्मशास्त्र को समझ रहा है, कोई स्त्रियों को समझने में लगा है। कोई किसी को समझ रहा है, कोई किसी को समझ रहा है। लेकिन कोई अपने को नहीं समझ रहा।

कनुलाल मेहता, यहां आ गए हो तो कुछ अपनी खोज की प्यास लेकर जाओ।

जिसे लेना हो आकर उससे अब दर्से-जुनूं ले ले

जिसे लेना हो मुझसे थोड़ा सा पागलपन ले ले, थोड़ा सा उन्माद, थोड़ी सी मस्ती ले ले।

जिसे लेना हो आकर उससे अब दर्से-जुनूं ले ले
सुना है होश में है असगरे-दीवाना बरसों से

बहुत दिनों से मैं दीवाना हूं और बहुत दिनों से मैं होश में हूं। जिसको यह होश लेना हो, यह बेहोशी लेना हो--ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--उसे निमंत्रण है! औरों को समझना छोड़ो, अपने को समझने की शुरुआत करने का समय आ गया है।

आज इतना ही।

आठवां प्रवचन

सितारों के आगे जहां और भी हैं

पहला प्रश्नः ओशो, मैं गुजरात का एक माननीय कथाकार हूं। मैंने अपने वाकचातुर्य से अपने आस-पास एक समूह खड़ा किया है। समाज का मुझे बहुत प्रेम मिलता रहा है। यहां तक कि अब उस प्रेम को झेलने की मुझमें शक्ति भी नहीं रही है। मुझे सुनने वाले पांच हजार में से पचास व्यक्ति तो ऐसे ही आए कि जिन्होंने मुझे ही भगवान माना और कहा कि गुरु-मंत्र दें। लेकिन उनको धोखा देने की मुझमें हिम्मत नहीं। और मेरे द्वारा जब कोई सत्य को उपलब्ध होने की इच्छा रखते हैं, तब मुझे लगता है कि मैं क्या करूं! मुझे भगवान मानने वालों को मैं कहता हूं कि मैं सत्य को जानने के बाद समय आने पर आपको समझाऊंगा। तो वे राह देख रहे हैं। आपके प्रवचन सुन कर और आपके ही विचारों को प्रस्तुत करने से करीब-करीब बहुत से संतों के साथ विरोध खड़ा हुआ है। मुझे चाहने वाले आपके विचारों का सत्कार कर रहे हैं, संन्यास का नहीं। तो क्या बिना संन्यास लिए सत्य की उपलब्धि संभव है? संन्यास लेने में मुझे इस बात का डर लगता है कि मुझे चाहने वालों का दिल मैं नहीं तोड़ पाऊंगा। मैं समाज को चाहता हूं। मेरा प्रेम ही मेरा गला घोंट रहा है। मुझे क्या करना चाहिए? प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।

शास्त्री बालकृष्ण--छोटे मुरारी।

पुनश्चः आपको प्रश्न पूछने के लिए डेढ़ साल से सोच रहा था, लेकिन आज हिम्मत जुटा ली।

छोटे मुरारी,

मैं इस बात से आनंदित हूं कि कम से कम सत्य को तुमने वैसा ही कहने का साहस तो किया जैसा है। तुमने पाखंड नहीं ओढ़ा। तुमने अपनी कमजोरी भी बताई, अपना भय भी बताया, अपने संकोच का निवेदन भी किया। यह अच्छी शुरुआत है। यह यात्रा का पहला कदम बन सकता है--बनेगा।

सबसे पहले तो यह समझने की आवश्यकता है कि संन्यास का क्या अर्थ है। तुमने पूछा कि क्या बिना संन्यास के सत्य की उपलब्धि नहीं हो सकती है? हो सकती है, लेकिन कभी करोड़ में एकाध व्यक्ति को। वह अपवाद है। अपवाद को नियम मत मानना। अपवाद नियम नहीं होता। उलटे, अपवाद से नियम सिद्ध होता है। करोड़ में एकाध व्यक्ति सत्य को बिना किसी गुरु के उपलब्ध होता है। ऐसा व्यक्ति स्वयं अपने जीवन में परम गुरु सिद्ध होता है। उलटबांसी लगेगी। सच में जिसने किसी को कभी गुरु नहीं बनाया, वही जानता है--केवल वही जानता है--कि बिना गुरु के तलाश कैसी दुर्गम है, कैसी कठिन है, करीब-करीब असंभव है।

मैंने कभी किसी को गुरु नहीं बनाया। इसलिए मैं जानता हूं कि छोटे मुरारी, असंभव होगा तुम्हें पाना बिना गुरु के। कृष्णमूर्ति कहते हैं कि बिना गुरु के पाया जा सकता है। लेकिन जरा मजे की बात समझना, विडंबना समझना। मैंने कभी गुरु नहीं माना किसी को, गुरु बनाया नहीं किसी को, किसी से दीक्षा नहीं ली और मैं कहता हूं कि बिना गुरु के पहुंचना करीब-करीब असंभव है। और कृष्णमूर्ति को जितने गुरु मिले, शायद ही किसी और व्यक्ति को मिले हों! और जितनी दीक्षाएं कृष्णमूर्ति को मिलीं, शायद ही मनुष्य-जाति के इतिहास में किसी को मिली हों!

नौ वर्ष की उम्र से लेकर पच्चीस वर्ष की उम्र तक सतत गुरुओं के चरणों में बैठ कर कृष्णमूर्ति ने शिक्षा पाई, दीक्षा पाई। उस समय की लिखी हुई कृष्णमूर्ति की किताब आज भी महत्वपूर्ण है। सच तो यह है, उतनी महत्वपूर्ण किताब फिर बाद में वे नहीं लिख सके। हालांकि अब तो वे यह कहते हैं कि उस किताब को मैंने कब लिखा, मुझे याद भी नहीं। क्योंकि वह किताब और उनके आज के वक्तव्यों में विरोध है, भारी विरोध है। इतनी हिम्मत तो नहीं उनकी कि विरोधों को अंगीकार कर लें, कि कह सकें कि मैं इतना विराट हूं कि विरोध मुझमें

समा जाते हैं। तो एक ही उपाय है कि कह दें कि मुझे याद ही नहीं कि कब मैंने वह किताब लिखी; मैंने लिखी भी या किसी और ने लिखी, यह भी मुझे पता नहीं; मैंने लिखी या मुझसे लिखवा ली गई, यह भी मुझे पता नहीं। किताब का नाम हैः ऐट दि फीट ऑफ दि मास्टर। श्री गुरु के चरणों में। और उसका एक-एक वचन महत्वपूर्ण है। मनुष्य-जाति के इतिहास में जो थोड़ी सी महत्वपूर्ण किताबें लिखी गई हैं, उनमें से वह किताब एक है।

कृष्णमूर्ति कहते हैं, गुरु की कोई जरूरत नहीं। और उन्हें जितने गुरु मिले, किसी और को नहीं मिले। और मैं तुमसे कहता हूं, बिना गुरु के पाना करीब-करीब असंभव है। और मुझे कोई गुरु नहीं मिला। मैंने बिना गुरु के पाया है और कृष्णमूर्ति ने बहुत से गुरुओं की सहायता से पाया है।

मगर ऊपर से उलटी दिखने वाली बात भीतर से इतनी उलटी नहीं है। कृष्णमूर्ति को सस्ते में गुरु मिले, इसलिए गुरु की महत्ता कभी समझ में न आई। मुफ्त जो मिल जाए उसकी महत्ता समझ में नहीं आती। कृष्णमूर्ति ने गुरु नहीं चुने थे, गुरुओं ने कृष्णमूर्ति को चुन लिया था। नौ वर्ष का बच्चा नदी में नहा रहा था और लीडबीटर नाम के एक बड़े महत्वपूर्ण थियोसोफिस्ट यूं ही घूमने को निकले थे। और अदियार नदी में स्नान करते हुए कृष्णमूर्ति को देखा और लीडबीटर ने उन्हें चुन लिया। एनीबीसेंट को खबर दी, जो कि थियोसोफिकल आंदोलन की प्रमुख थी, कि यह जो बच्चा है, विश्व गुरु हो सकता है, जगतगुरु हो सकता है।

लीडबीटर में ऐसी क्षमता थी कि दूसरे के अंतरतम में प्रवेश कर सके, दूसरे के भावों को समझ सके, दूसरे की संभावनाओं को देख सके। बीज में छिपे हुए फूलों को देखने की क्षमता लीडबीटर की क्षमता थी। और लीडबीटर ने जितने लोगों में क्षमता देखी, वे सारे लोग बड़े महत्वपूर्ण सिद्ध हुए। लीडबीटर ने ही जर्मनी के प्रसिद्ध विचारक, तत्वविद, स्टाइनर को चुना था--छोटे बच्चे की तरह। उसी ने एनीबीसेंट को खबर दी थी कि यह बच्चा बड़ा अदभुत भविष्य लिए हुए है। यह कली हजार पंखुरियों वाला कमल बनेगी।

और यही हुआ। स्टाइनर, पिछले सौ वर्षों में जर्मनी में जो सर्वाधिक प्रतिभाशाली लोग पैदा हुए हैं, उनमें अग्रगण्य है। लीडबीटर ने इस तरह और लोग भी चुने--छोटे-छोटे बच्चे, जिनको कोई देख कर कह भी न सकता था कि इनके भीतर ऐसी क्षमता होगी।

एनीबीसेंट ने लीडबीटर की बात मान ली, कृष्णमूर्ति के पिता को संपर्क किया। पिता थे गरीब, मां की मृत्यु हो चुकी थी कृष्णमूर्ति की। पिता को वैसे ही कठिनाई थी बच्चों को बड़ा करने की। एक साधारण क्लर्क थे। उन्होंने सोचा यह तो सौभाग्य हुआ। अगर एनीबीसेंट गोद ले ले, तो इससे अच्छा और क्या। इस तरह कृष्णमूर्ति एनीबीसेंट की गोद चले गए। और एनीबीसेंट उनकी पहली गुरु। लीडबीटर उनके दूसरे गुरु। और फिर थियोसोफिस्टों में जितने भी महत्वपूर्ण, ध्यान को उपलब्ध व्यक्ति थे, उन सभी ने कृष्णमूर्ति को दीक्षा दी, उन सभी के संपर्क में कृष्णमूर्ति को बड़ा किया गया।

इसलिए कृष्णमूर्ति को जो मुफ्त में मिला, उसका मूल्य मालूम नहीं होता। कुछ आश्चर्य नहीं कि वे कहते हैं, बिना गुरु के भी पाया जा सकता है। और मैं कहता हूं, बिना गुरु के पाना करीब-करीब असंभव है। करीब-करीब कहता हूं, क्योंकि यह तो नहीं कह सकता कि बिल्कुल ही असंभव है। मुझे खुद ही बिना गुरु के मिला। लेकिन मुझे कठिनाई पता है कि बिना गुरु के कठिनाई कैसी है। कठिनाइयां बहुत हैं।

एक तो अनंत मार्ग हैं; किस मार्ग से जाओ, किस आधार से चुनो, कोई तुम्हारे पास कसौटी नहीं है। और एक रास्ता पहुंचाने वाला है, एक हजार एक रास्ते भटकाने वाले हैं। उन एक हजार एक रास्तों को काटना और एक को चुन लेना, संयोग से ही कभी हो जाए तो हो जाए; अन्यथा लंबी भटकन है, जन्मों-जन्मों की भटकन है।

फिर ठीक रास्ता भी मिल जाए संयोग से--करोड़ में एक मौका--तो भी ठीक रास्ते से भी भटकने के हर कदम पर उपाय हैं। अगर न भी भटको, तो ठीक रास्ते पर भी हर पड़ाव ऐसा लगता है कि मंजिल आ गई, हर पड़ाव पर ऐसा लगता है कि पहुंच गए। क्योंकि हर पड़ाव पर ऐसी शांति, ऐसा आनंद, ऐसी सुगंध, ऐसी

ज्योति, ऐसा उत्सव, ऐसा वसंत आ जाता है, हर पड़ाव पर मधुमास ऐसा गहरा जाता है, ऐसे गीतों का फूटना, ऐसे घूंघर का बजना, ऐसे वीणा का छिड़ जाना, कि लगता है कि अब और इससे ज्यादा क्या होगा! भरोसा नहीं आता कि इससे ज्यादा भी कुछ हो सकता है! कि इससे भी पूर्णतर की कोई संभावना है!

कौन कहेगा कि रुक मत जाना, चरैवेति-चरैवेति! चले चलो, चले चलो! अभी और मंजिल है! अभी आगे और मंजिल है! कौन कहेगा? सितारों से आगे जहां और भी हैं--कौन कहेगा? कौन धक्का देगा कि नहीं, रुको मत! माना कि बड़ा प्यारा है यह पड़ाव, माना कि बड़ी घनी छाया है अमराई की, माना कि कोयल की कुहू-कुहू है, पपीहे की पुकार है, माना कि मोर का यह नृत्य, माना पक्षियों का यह कलरव, झरने का यह गीत, यह सुंदर सुबह, यह प्यारा मौसम, मगर नहीं, रुक मत जाना, अभी और है--कौन कहेगा?

सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं
तही जिंदगी से नहीं ये फिजाएं
यहां सैकड़ों कारवां और भी हैं
कनाअत न कर आलमे-रंगो-बू
परचमन और भी, आशियां और भी हैं
अगर खो गया एक नशे
मन तो क्या गममुकामाते आहो-फुगां और भी हैं
तू शाहीं है, परवाज है काम तेरा
तेरे सामने आस्मां और भी हैं
इसी रोज-ओ-शब में उलझ कर न रह जा
कि तेरे जमां-ओ-मकां और भी हैं
गए दिन कि तन्हा था मैं अंजुमन में
यहां अब मेरे राजदां और भी हैं
सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं

कौन कहेगा? हर पड़ाव पर कोई कहने वाला चाहिए कि मत रुक जाना, अभी और, अभी और, अभी बहुत बाकी है। सदगुरु के बिना हर पड़ाव मंजिल मालूम होगा। और बहुत हैं जो पड़ावों पर रुक गए हैं और भटक गए हैं। बहुत हैं जिन्होंने छोटी सी छाया को सब कुछ समझ लिया। बहुत हैं जिन्होंने रंगीन कंकड़-पत्थरों को हीरे-जवाहरात समझ लिए।

संन्यास का क्या अर्थ है?

छोटे मुरारी, संन्यास का इतना ही अर्थ है कि जो दीया जला हो उसका हाथ पकड़ लेना। बुझा दीया भी जले हुए दीये के पास आ जाए तो जल उठता है। संन्यास यानी सत्संग।

तुम कहते हो कि मुझे चाहने वाले आपके विचारों से करीब-करीब राजी हैं। आपके विचारों का सत्कार कर रहे हैं, लेकिन संन्यास का नहीं।

और संन्यास मेरा विचार है--मेरा मूल विचार है। किस भांति वे मेरे विचारों का सत्कार कर रहे हैं? विचारों का सत्कार करना तो आसान है, सवाल तो विचारों को जीने का है। अच्छी-अच्छी बातें, प्यारी-प्यारी बातें, सुभाषित दोहराने में क्या लगता है? हल्दी लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए! उधार सुंदर-सुंदर फूलों को, दूसरों की बगियाओं से तोड़ कर ले आए हो और अपना घर सजा लोगे, लेकिन बगिया लगाना मुश्किल काम है। फूल चुरा लाना किसी की बगिया से तो बहुत आसान है, लेकिन गुलाब उगाना बहुत कठिन है।

तुम कहते हो कि आपके विचारों का सत्कार कर रहे हैं।

छोटे मुरारी, मेरे विचारों का सत्कार करने में तो कोई अड़चन नहीं है। अड़चन तो तब शुरू होती है जब तुम उन्हें जीना शुरू करो। जीओ तो कदम-कदम पर अड़चन है। तुमको खुद ही लग रही है अड़चन। तुम्हारे सुनने वालों को तो जाने दो दूर, तुम खुद भी मेरे विचारों से राजी हो लेकिन संन्यास की हिम्मत नहीं जुटा पा रहे। जब तुम्हीं नहीं जुटा पा रहे तो तुम्हारे सुनने वाले क्या खाक जुटा पाएंगे!

और तुम्हारे सुनने वाले भी मेरे विचारों से सीधे राजी नहीं हो रहे होंगे। मेरे विचारों को तो देश में बहुत से लोग दोहरा रहे हैं, लेकिन दोहराते हैं तरकीब से, दोहराते हैं किसी आड़ में। गीता का श्लोक करेंगे, अर्थ करेंगे, अर्थ में मेरे विचार डाल देंगे। गीता के श्लोक पर मेरे विचारों को सवार करा देंगे। और लोगों को तो कृष्ण का वचन है, गीता का श्लोक है, तो उसके साथ मेरे विचारों को भी गटक जाने में कोई अड़चन नहीं होती।

छोटे मुरारी, मेरा नाम लेना जरा। संन्यास की तो बात दूर, मेरा नाम ही लोगे और अड़चन शुरू हो जाएगी। मेरा नाम लोगे और कठिनाई खड़ी हो जाएगी। और संन्यास से वही तो तुम्हें डर है कि संन्यास घोषणा हो जाएगी, फिर तुम छिपा न सकोगे कि ये विचार किसके हैं।

अभी तो तुम इस तरह कह रहे होओगे जैसे तुम्हारे हैं। अभी तो तुम इस तरह कह रहे होओगे जैसे कृष्ण के हैं, जैसे कि रामायण के हैं, जैसे कि वेदों के हैं। लेकिन अगर तुमने संन्यास लिया तो तुम मेरे हुए। और जब तुम मेरे हुए तभी पता चलेगा कि कितने लोग तुम्हें प्रेम करते हैं। अभी तो वे किसी और को प्रेम कर रहे हैं, तुम तो सिर्फ बहाना हो। तुम अच्छी राम की कथा कह रहे होओगे, प्यारे राम की कथा कह रहे होओगे। राम का उनके मन में सम्मान है सदियों पुराना, साख है; उसी साख पर तुम्हारी भी साख है; उसी इज्जत पर तुम्हारी भी इज्जत है। नाम बिकते हैं यहां। विचारों से किसको पड़ी है? घर जाते वक्त लोग विचारों को झाड़ कर चले जाते हैं, वहीं के वहीं झाड़ कर चले जाते हैं।

संन्यास से यह भी पक्का तुम्हें पता चल जाएगा कि कितने लोग तुम्हें प्रेम करते हैं। जो तुम्हें प्रेम करते हैं वे फिर भी प्रेम करेंगे, क्योंकि प्रेम बेशर्त होता है। लेकिन तुम्हें भी पता है कि पांच हजार की तो बात छोड़ दो, पांच हजार में जो पचास व्यक्ति तुम्हें भगवान भी मानने को तैयार हैं, उनमें से अगर पांच भी टिक गए तो बहुत।

और यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूं। और तुम तो केवल मेरे संन्यासी होओगे, तुम मेरी तरफ देखो। पांच नहीं, मुझे पचास हजार सुनने वाले लोग थे। लेकिन आड़ चाहिए थी। मैं तो वही कहता था जो मैं आज कह रहा हूं, तब भी वही कहता था। लेकिन अगर महावीर के कंधे पर रख कर बंदूक चला देता था तो जैन खुश होता था। कृष्ण के कंधे पर रख कर बंदूक चला देता था--बंदूक हमेशा मेरी थी--हिंदू खुश होता था। मुसलमान आकर प्रार्थना करते थे कि मोहम्मद के कंधे पर बंदूक रखिए। सिक्ख कहते थे, नानक के कंधे का कब विचार करिएगा?

जरूरी था तब। मेरे लिए एकदम आवश्यक था। लेकिन मैं कृष्ण का या राम का या बुद्ध का या महावीर का या नानक का उपयोग यूं ही कर रहा था जैसे मछली को फांसने के लिए लोग कांटे पर आटा लगा देते हैं। मछली कांटा तो निगलने को राजी होती नहीं। और मेरी बात तो कांटा है, क्योंकि क्रांति है, आग है, अंगारा है! अंगारे को निगलने को कौन राजी होगा? थोड़े से हिम्मतवर, थोड़े से छाती वाले लोग। लेकिन मछली आटे को निगलने को राजी हो जाती है। और जब तक कांटे का पता चलता है तब तक बहुत देर हो जाती है।

जब मैंने कुछ मछलियां पकड़ लीं तो मैंने सोचा कि अब क्यों किसी के कंधे पर बंदूक रखनी! अब क्यों आटा लगाना! अब सीधा कांटा ही पिलाता हूं। अब जिनको कांटा पीने का मजा आ गया उनको आटे से नफरत भी हो गई। अब मेरे पास अपने लोग हैं।

तुम देख सकते हो, पिछले बीस वर्षों में कितने लोग मेरे पास आए और गए! फिर वही बच रहे जिनका सच में मुझसे प्रेम था; जिनका मुझसे प्रेम था वही बच रहे। जिनका महावीर से प्रेम था वे गए। जिनका कृष्ण से प्रेम था वे गए। सच तो यह है, मैंने उन्हें खुद छांटना शुरू कर दिया। क्योंकि जिनका मुझसे प्रेम नहीं उनके साथ व्यर्थ समय क्यों खराब करना? समूह इकट्ठा कर लेना तो बहुत आसान है, उसमें तो कोई कठिनाई नहीं है।

तुम कहते होः "मैंने अपने वाकचातुर्य से अपने आस-पास एक समूह खड़ा किया है।"

अच्छी बात है यह कि तुम समझते हो कि यह वाकचातुर्य ही है, कहीं कोई सत्य नहीं है इसमें; केवल शब्द हैं, कहीं कोई निःशब्द का संगीत नहीं है। यह अच्छा लक्षण है। यह प्यारा लक्षण है। यह शुभ संकेत है। लेकिन कुछ बातों में तुम्हें भ्रांतियां हैं।

तुम कहते हो कि मैंने वाकचातुर्य से अपने पास एक समूह खड़ा किया है और समाज का मुझे बहुत प्रेम मिलता रहा है।

वह प्रेम नहीं है। वह तुम्हारे वाकचातुर्य को दिया गया आदर है। और वाकचातुर्य को भी क्यों आदर दिया गया है? वह भी इसीलिए कि तुम्हारा वाकचातुर्य या तो कृष्ण के पैरों में फूल चढ़ा रहा है या राम के चरणों पर सिर झुका रहा है या वेद की प्रशंसा है, स्तुति है। वह प्रेम तुम्हारे लिए नहीं है। तुम इस गलती में मत पड़ जाना। और कहीं न कहीं तुम्हें भी शक है कि वह प्रेम तुम्हारे लिए नहीं है। क्योंकि अगर तुम्हें शक न होता तो तुम्हें यह भी भरोसा होता कि अगर मैं संन्यास भी ले लूंगा तो जिन्होंने मुझे प्रेम किया है वे प्रेम करेंगे। सच तो यह है कि और ज्यादा प्रेम करेंगे, क्योंकि तुम प्रकट हुए, तुम और स्पष्ट हुए, तुमने अपने को और उघाड़ा, तुमने आड़ छोड़ी, तुमने घूंघट उठाया। तुम भी कहीं जान तो रहे हो कि वह प्रेम किसी और को मिल रहा है, तुम केवल माध्यम हो। क्योंकि तुम्हारे द्वारा स्तुति की जा रही है शास्त्रों की, पुराणों की। तुम कथा कह रहे हो प्यारी-प्यारी। लेकिन आदर कथा को मिल रहा है।

यह ऐसा ही है जैसे गांव में रामलीला होती है, तो जो आदमी राम बनता है उसके चरणों में भी लोग सिर झुकाते हैं। हालांकि भलीभांति जानते हैं कि यह कौन है। गांव का ही आदमी है। लुच्चा-लफंगा भी हो सकता है। और अक्सर रामलीला वगैरह कौन करेंगे? कोई भलेमानुस करेंगे? ऐसे ही गांव के आवारा, जिन्हें और कोई काम नहीं। बरसात में आल्हा-ऊदल पढ़ेंगे। फिर रामलीला खेलेंगे। यूं ही फिजूल के लोग। सबको पता है कौन सज्जन हैं ये। यूं तो घर में भी निमंत्रण न दें इनको। लेकिन अभी इनकी शोभायात्रा निकल रही है। अभी बारात जा रही है जनकपुरी। तो लोग उनके चरणों में फूल चढ़ा रहे हैं, पैसे चढ़ा रहे हैं, आरती उतार रहे हैं। दो दिन बाद इन्हीं को कोई पूछेगा नहीं। रामलीला खतम कि ये भी खतम।

अभी गांव की स्त्रियां इनके पैर दबा रही हैं। और दो दिन बाद अगर यह आदमी किसी स्त्री की तरफ गौर से देख लेगा--उन्हीं स्त्रियों की तरफ; अभी भी देख रहा है, मगर अभी रामचंद्र जी हैं; अभी तो बड़ी इनकी कृपा है, कृपा-कटाक्ष! अभी अगर मुस्कुरा दें तो क्या कहना! अभी तो राम का वाहन है। दो दिन बाद जब रामलीला खतम हो जाएगी, ये ही उन्हीं स्त्रियों में से किसी को गौर से देख लेगा, तो लोग कहेंगे कि लुच्चा है, उचक्का है।

लुच्चा का मतलब समझते हो? गौर से देखना! लुच्चा यानी लोचन। आंख गड़ा कर देखना! और उचक्का यानी ऊंचे हो-हो कर देखना। पैर के बल, अंगुलियों के बल खड़े हो-हो कर देखना। बड़े प्यारे शब्द हैं--लुच्चा, उचक्का, उठंगा! उठ-उठ कर देखना। मतलब बैठ कर देखने में अड़चन हो रही है तो घुटने टेक-टेक कर देख रहा है।

यही आदमी अभी अगर देख दे उन्हीं देवियों को तो कृपा की वर्षा हो गई, प्रसाद बरसा। और अभी भी इसके देखने का ढंग वही है। आदमी यह वही है। लेकिन दो दिन बाद सब बात बदल जाएगी। अभी यह शायद सोचता होगा कि अहा, मुझे कितना स्वागत मिल रहा है! कितना सम्मान मिल रहा है! दो दिन बाद जो मिलेगा वही इसका है; अभी तो जो इसको मिल रहा है वह राम को मिल रहा होगा। किसी और को मिल रहा है, यह तो केवल प्रतीक मात्र है। इसका काम तो पोस्टमैन से ज्यादा नहीं है।

यूं तो पोस्टमैन भी अच्छा सा पत्र ले आता है, शुभ-संवाद ले आता है, तो तुम उसे भी मिठाई खिला देते हो, शरबत पिला देते हो, बिठा कर दो प्रेम-भरी बातें कर लेते हो। लेकिन इसका यह मतलब मत समझ लेना, पोस्टमैन इस भ्रांति में न पड़ जाए कि यह स्वागत उसे मिल रहा है।

तुम यह गलती छोड़ दो, छोटे मुरारी, कि लोगों से तुम्हें बहुत प्रेम मिला है। वह तुम्हें नहीं मिला है, तुम्हारी कथाओं के कारण मिला है, कथाओं को मिला है।

हां, मेरे जैसे आदमी को जब कोई प्रेम करता है तो उसे मुझे ही करना पड़ता है। क्योंकि कथाओं का तो मैं जिस तरह से सत्यानाश करता हूं, कथा को तो जैसा काटता हूं, जहां तक मेरा वश चले चिंदी-चिंदी निकाल देता हूं, कथा से तो मुझे कोई आदर मिलने वाला नहीं है। लेकिन मुझे अगर कोई प्रेम करेगा तो ही, तो ही बरदाश्त कर पाएगा जो मैं कह रहा हूं उसे। तुम जो कह रहे हो उसके कारण तुम्हें प्रेम मिल रहा है।

अगर सच में ही तुम्हें परीक्षा करनी है कि कितने लोग तुम्हें प्रेम करते हैं, तो संन्यास कसौटी बन जाएगी। पता चल जाएगा कि पांच हजार तो गए ही, वे जो पचास तुम्हें भगवान मानते थे वे भी गए। इतना ही नहीं कि चले ही गए, वही जो तुम्हें प्रेम करते थे वही गालियां देने लगेंगे। वही लट्ठ उठा लेंगे जो फूलमालाएं पहनाते थे।

और तुम कहते हो कि मुझे अब उस प्रेम को झेलने की शक्ति नहीं रही है।

पहली तो बात, वह प्रेम ही नहीं है। क्योंकि प्रेम होता तो प्रेम को झेलना नहीं पड़ता। प्रेम होता है तो बोझ नहीं होता। प्रेम तो मुक्तिदायी है। प्रेम तो निर्भार करता है, निर्बोझ करता है। जो बोझ बन जाए वह कुछ और है; वह प्रेम के नाम पर कुछ और ही है। इसे ठीक-ठीक समझ लो। अचेतन में तो तुम्हारे यह बात साफ है, लेकिन मैं इसे चेतन बना देना चाहता हूं। अंधेरे-अंधेरे में तो तुम्हें भी यह बात, टटोलते हो तो समझ में आ रही है। लेकिन मैं दीया जला देना चाहता हूं, ताकि तुम ठीक से देख लो।

तुम कहते हो कि उस प्रेम को झेलने की अब मुझमें शक्ति नहीं रही।

जाहिर है कि वह प्रेम नहीं है। क्योंकि प्रेम तो कितना ही हो, झेलने का सवाल ही नहीं उठता। प्रेम तो आनंद है। पूरा आकाश भी प्रेम बन कर टूट पड़े तो भी उसका बोझ नहीं होगा।

तुम कहते हो कि मुझसे लोग पूछते हैं सत्य को पाने का मार्ग, सत्य को उपलब्ध होने की इच्छा करते हैं, तो मुझे लगता है मैं क्या करूं? मुझे भगवान मानने वालों को मैं कहता हूं कि मैं सत्य को जानने के बाद समय आने पर आपको समझाऊंगा।

वे जो तुमसे सत्य जानने की आकांक्षा कर रहे हैं, वे सत्य नहीं जानना चाहते हैं। ऐसे आकांक्षियों को मैं बहुत जानता हूं। जिस गुजरात में, छोटे मुरारी, तुम्हें लोग कथा सुन रहे हैं, उस गुजरात से मैं भलीभांति परिचित हूं। जितने लोगों ने मुझे गुजरात में सुना है, तुम्हें क्या सुनेंगे! लाखों लोगों ने सुना है। अधिकतर तो वही लोग होंगे जो मुझे सुनते थे, वही तुम्हें सुन रहे होंगे। सुनने वाले तो वही होते हैं। कुछ लोगों का काम ही सुनना होता है।

अभी बंबई में कुछ दिन पहले भारतीय जनता पार्टी का अधिवेशन हुआ, पचास हजार आदमी सुनने इकट्ठे हुए। और फिर बहुगुणा ने लोकतांत्रिक समाजवादी दल की स्थापना की, उनको भी सुनने पचास हजार आदमी इकट्ठे हुए। मैं थोड़ा हैरान हुआ कि पचास हजार, पचास हजार! ये कहीं वही पचास हजार तो नहीं हैं! यह पचास हजार का आंकड़ा... ।

मैं ऐसे लोगों को जानता हूं। मैं जबलपुर में कोई बीस वर्ष रहा। मेरे एक संबंधी, जब शुरू-शुरू में मैंने उनको देखा तो मैं बड़ा हैरान हुआ; कम्युनिस्ट पार्टी का जुलूस निकले, उसमें भी सम्मिलित; सोशलिस्ट पार्टी का जुलूस निकले, उसमें भी सम्मिलित; कांग्रेस का जुलूस, तो उसमें भी सबसे आगे झंडा लिए; जनसंघ का जुलूस, तो उसमें भी।

मैंने उनसे पूछा कि माजरा क्या है? आपकी राजनीति क्या है?

अरे, उन्होंने कहा, राजनीति से क्या लेना-देना! हमको नारे लगाने में मजा आता है। अपने को क्या करना किसके नारे लग रहे हैं! धक्कम-धुक्की करना, नारे लगाना! कवायद भी हो जाती है, तफरीह भी हो गई, जान-पहचान भी हो जाती है कई लोगों से, वक्त पर काम भी पड़ जाते हैं।

उन्हें कोई प्रयोजन ही नहीं है। फिर तो उन्होंने मुझे बाद में बताया जब उनसे और संबंध मेरे गहरे हो गए। मैंने कहा कि यह बात तो बड़ी ऊंची तुमने कही। यह बात तो जंचती है।

अरे, उन्होंने कहा, अब मैं तुमसे क्या कहूं! मैं सभी पार्टियों का सदस्य भी हूं। अरे एक रुपया दो, चवन्नी दो, सदस्य हो जाओ! साल भर सदस्यता चलती है। तो सभी अपने को अपना मानते हैं। और अपने को क्या लेना-देना राजनीति वगैरह से?

और जब वे लगाते थे नारा तो जी खोल कर लगाते थे। किसी की भी जय बुलवा लो, जिंदाबाद करवाओ कि मुर्दाबाद करवाओ, हर हालत में वे राजी हैं। उसी आदमी को जिंदाबाद कर दें, उसी को मुर्दाबाद कर दें। उनको सवाल है अपनी खराश निकालने का।

कुछ लोग हैं जिनको सुनना है, जिनको धार्मिक सभा में होना ही चाहिए। तुम उनको हमेशा पाओगे। गुजरात से मैं परिचित हूं। वे सब तुम्हें छोड़ भागेंगे। मगर तुम्हारा भार भी कट जाएगा। तुम भ्रांतियों से भी मुक्त हो जाओगे। और तुम्हें एक बात भी पता चल जाएगी कि जितने तुमसे मांगने आए थे कि सत्य हमें कैसे मिले, वे कोई सत्य को नहीं जानना चाहते हैं। तुम्हारा संन्यास तक स्वीकार नहीं होगा, तुम्हारा सत्य क्या स्वीकार होगा! सत्य तो बड़ी कठिन बात है--तलवार की धार है! वे सब अपने पक्षपात सही सिद्ध करवाना चाहते हैं। कोई चाहता है कि सिद्ध कर दो कि कृष्ण भगवान हैं। कोई चाहता है कि सिद्ध कर दो कि महावीर भगवान हैं। कोई चाहता है कि वेद सही, कोई चाहता है कुरान सही, कोई चाहता है गुरु-ग्रंथ सही--सिद्ध कर दो। सत्य से किसी को प्रयोजन नहीं है। सत्य से क्या लेना-देना है! कोई हिंदू है, कोई मुसलमान है, कोई ईसाई है, कोई बौद्ध है। सत्य का आकांक्षी कौन है?

हिंदू होकर कोई सत्य की अभीप्सा कैसे कर सकता है? हिंदू होने का क्या अर्थ होता है? हिंदू होने का अर्थ होता हैः मैंने मान लिया कि सत्य क्या है। जाना तो नहीं, मान लिया।

बिना जाने जिसने मान लिया, यह आदमी बेईमान है, यह पाखंडी है। सत्य का जिज्ञासु हिंदू नहीं हो सकता, मुसलमान नहीं हो सकता, ईसाई नहीं हो सकता, सिक्ख नहीं हो सकता। सत्य का जिज्ञासु तो कहेगा कि मुझे पता ही नहीं, तो मैं कैसे कहूं कि गीता सही कि कुरान सही कि बाइबिल सही? सत्य का पता चले तो फिर मेरे पास कसौटी होगी, तो मैं तौल सकूंगा--कौन सही?

तुम जो कथाएं कह रहे हो, उन कथाओं को ही ये लोग सत्य मान कर चल रहे हैं। और उन्हीं कथाओं के आधार पर ये तुमसे पूछते हैं कि सत्य हमें कैसे उपलब्ध हो जाए? मतलब यह कि यह कथा सही कैसे हो जाए? यह हमारे अनुभव में भी कैसे आ जाए? जैसे किसी पापी का उद्धार किया कृष्ण ने, ऐसा हमारा उद्धार कैसे होगा? कि अजामिल ने पुकारा मरते वक्त अपने बेटे को और आकाश में बैठे भगवान ने समझ लिया कि वह मुझे पुकार रहा है। क्योंकि बेटे का नाम भी वही था। रहा होगा--गोविंद या हरि। वह बुला रहा था अपने बेटे को। अजामिल पापी था, हत्यारा था, डाकू था, चोर था। बेटे को बुला रहा था। जिंदगी भर जिसने चोरी की, हत्या की, डकैती की, वह कोई मरते वक्त बेटे को कोई गुरु-मंत्र देने के लिए नहीं बुला रहा होगा। बुला रहा होगा कि देख कहां धन गड़ाया है! कि देख अगर किसी को मारे तो इस तरह से मारना! अपने धंधे का कुछ राज बताना चाहता होगा। मरते वक्त आदमी वही कहना चाहता है तो जिंदगी भर का निचोड़ है। बुलाया होगा कि ऐ गोविंद, कहां है? लेकिन ऊपर बैठे गोविंद ने समझा कि मुझे बुला रहा है। हद हो गई! आदमी धोखा खा जाए तो भी ठीक है, लेकिन भगवान भी धोखा खा गया। और उन्होंने अजामिल को मुक्त कर दिया और स्वर्ग पहुंचा दिया।

अब तुम यह कथा लोगों को सुनाते होओगे, छोटे मुरारी, कि अजामिल जैसे पापी का भी उद्धार कर दिया! हे प्रभु, मेरा उद्धार कब करोगे? और उसने तो भूल से अपने बेटे को बुलाया था, और मैं तो कितने प्रेम से और कितने भाव से तुम्हें पुकार रहा हूं, रोज-रोज पुकार रहा हूं, सुबह पुकारता, सांझ पुकारता, मुझे कब छुटकारा दिलाओगे? मुझे कब स्वर्ग में बुलाओगे? मेनका और उर्वशी मेरे आस-पास कब नाचेंगी? कल्पवृक्ष के नीचे मैं कब बैठूंगा? हे प्रभु, तुमने बड़े-बड़े पापियों का उद्धार किया! मैं तो कोई इतना बड़ा पापी भी नहीं, अरे मेरा भी उद्धार करो!

ये जो तुम्हारे पास मंत्र लेने आते हैं, गुरु-मंत्र, ये क्या कह रहे हैं? यही कह रहे हैं, कोई ऐसी बात बता दो कि हम जैसे हैं वैसे ही रहें, मंत्र को दोहरा लेंगे सोते वक्त या सुबह उठ कर, और बस पार पा जाएंगे। यह भवसागर से पार होना है, कोई मंत्र बता दो! कोई सत्य बता दो!

मगर इनमें सत्य की जिज्ञासा किसी की भी नहीं है। अभी सत्य की जिज्ञासा का अर्थ भी इन्हें पता नहीं है। सत्य की जिज्ञासा का तो अर्थ ही यह होता है कि मेरे कोई विश्वास नहीं, कोई अविश्वास नहीं, कोई पक्षपात नहीं, कोई शास्त्र नहीं, कोई सिद्धांत नहीं। अभी तो मैं कोरे कागज की तरह हूं, अभी मैंने कुछ लिखा नहीं; खोजने चला हूं, जब मिल जाएगा तो लिखूंगा। अभी तो दर्पण हूं। अभी तो दर्पण को साफ कर रहा हूं। फिर जो तस्वीर बनेगी, दर्पण पर जो प्रतिफलन होगा, उसको पहचानूंगा। तब कहूंगा कि मैं कौन हूं।

और मैं तुमसे कहता हूंः जिसने सत्य जाना वह क्या हिंदू होगा फिर? वह क्या वेद के ऊपर सिर पटकेगा? उसके भीतर वेद होगा। उसकी वाणी में वेद होगा। उसके मौन में उपनिषद होंगे। उसके उठने-बैठने में गीता होगी। वह क्यों किसी कृष्ण के मंदिर या राम के मंदिर जाएगा? वह जहां बैठेगा वहां मंदिर होगा। वह क्यों काबा और काशी जाएगा? वह जहां चलेगा वहां काबा बन जाएंगे। जिस पत्थर को छू देगा वह पत्थर काबा का पत्थर हो जाएगा। सत्य को जानने वाला तो किसी धर्म का हिस्सा हो ही नहीं सकता। और जिसने सत्य को जाना नहीं है वह कैसे हो सकता है?

इसलिए मैं तुमसे यह कह रहा हूं कि दुनिया में सत्य को जाना नहीं तब तक तो कोई व्यक्ति हिंदू, मुसलमान, ईसाई हो ही नहीं सकता। और अगर जान लिया, तब होने का सवाल ही नहीं उठता। इसलिए खुद को और दूसरों को धोखा देने वाले लोग धर्मों में विभाजित हैं। और जब ये तुम्हारे पास आकर कहते हैं कि हमें सत्य जानना है, तो इनको सत्य नहीं जानना है, इनको अपनी मान्यता को सत्य सिद्ध करवाना है।

और ये चाहते हैं कोई सस्ती तरकीब। गुरु-मंत्र का मतलब होता हैः कोई सस्ती तरकीब, कोई ताबीज--कि राम-राम जपने से होगा, कि हरि-हरि जपने से होगा, कि हरे कृष्ण जपने से होगा। कितनी बार--एक सौ आठ बार, कि एक हजार आठ बार। किस मुहूर्त में--सुबह कि सांझ, भोजन के पहले कि बाद। ये तुमसे पूछ रहे हैं इस तरह की बातें।

लेकिन अच्छा है कि तुम इनको बता नहीं रहे। तुम इनसे कह रहे हो कि जब मैं सत्य को जान लूंगा... लेकिन सत्य जानने में तुम्हारी भी बड़ी घबराहट है। तुम अभी संन्यास तक जानने को राजी नहीं, सत्य जानने को तुम कैसे राजी हो सकोगे?

तुम पूछ रहे होः "क्या संन्यास को बिना पाए सत्य नहीं पाया जा सकता?"

तुम ऐसा क्यों नहीं पूछते कि क्या बिना सत्य को पाए सत्य नहीं पाया जा सकता? सत्य पाने की भी झंझट क्यों लेते हो? क्योंकि सत्य पाते ही से ये तुम्हारे प्रेम करने वाले लोग छूट जाएंगे। तुमने सत्य कहा और तुम मुश्किल में पड़े। सुकरात ने कहा और जहर मिला। ये तुमको छोड़ देंगे? जीसस ने कहा और सूली मिली। और तुम सोचते हो कि ये तुमको सिंहासन देंगे सत्य के बाद? रामलीला करो तो सिंहासन मिलेगा। सत्य की बात उठाई कि सूली के अतिरिक्त और कुछ बचता नहीं। सूली पर चढ़ने की तैयारी हो तो सत्य को कहना।

मगर सत्य को अभी तो कहोगे कैसे? अभी तो जानना पड़ेगा। लेकिन एक बात अच्छी है कि तुम उनसे कह रहे हो कि जब जान लूंगा तब तुम्हें समझाऊंगा।

और तुम कहते होः "वे राह देख रहे हैं।"

कब तक उनको राह दिखलाओगे? मैं तैयार हूं तुम्हें सत्य जनवा देने को। मैं नहीं कहता राह देखो। मैं नहीं कहता कल की राह देखो। कल का क्या पता है! मौत हमेशा द्वार पर खड़ी है। तुमने डेढ़ साल सोच-सोच कर तो यह प्रश्न पूछा। संन्यास लेने में क्या डेढ़ जन्म लगाओगे, क्या करोगे? डेढ़ साल तुम विचार करते रहे यह प्रश्न ही पूछने को! तो सत्य को जानने के लिए कितना समय लगाना है? और जिंदगी का भरोसा नहीं है--आज है, कल न हो।

करीब मौत खड़ी है, जरा ठहर जाओ
कजा से आंख लड़ी है, जरा ठहर जाओ
करीब मौत खड़ी है...
थकी-थकी सी फिजाएं बुझे-बुझे तारे
बड़ी उदास घड़ी है, जरा ठहर जाओ
फिर इसके बाद कभी हम न तुमको रोकेंगे
लबों पे सांस अड़ी है, जरा ठहर जाओ
अभी न जाओ कि तारों का दिल धड़कता है
तमाम रात पड़ी है, जरा ठहर जाओ
नहीं उम्मीद कि हम आज की सहर देखेंये
रात हम पे कड़ी है, जरा ठहर जाओ
गमे-फिराक में जी भर के तुम को देख तो लें
ये फैसले की घड़ी है, जरा ठहर जाओ
करीब मौत खड़ी है, जरा ठहर जाओ
कजा से आंख लड़ी है, जरा ठहर जाओ

मौत तो बहुत करीब खड़ी है। हर क्षण द्वार पर खड़ी है। कब दस्तक दे देगी, कुछ पता नहीं। डेढ़ साल, छोटे मुरारी, तुमने प्रश्न पूछने में लगा दिया! तो संन्यास के लिए क्या करोगे? नहीं, इतने आहिस्ता-आहिस्ता चलने से यह यात्रा नहीं होगी।

और तुम कहते हो कि आपकी बातों को, आपके विचारों को प्रस्तुत करने से करीब-करीब बहुत से संतों के साथ विरोध खड़ा हो गया है।

जिससे मेरी बातों के कारण विरोध खड़ा हो जाए, समझ लेना कि वह संत नहीं है; संत का आभास होगा, ढकोसला होगा।

खेत में तुमने देखे हैं न, आदमी खड़े कर दिए जाते हैं! डंडा लगा देते हैं, कुरता पहना देते हैं। चूड़ीदार पाजामा हो तो चूड़ीदार पाजामा पहना दो। हंडी ऊपर रख कर गांधी टोपी लगा दो। खड़िया मिट्टी से आंख-नाक बना दो। चाहो तो लिख दो कि मोरारजी भाई देसाई, भूतपूर्व प्रधानमंत्री! वह जो खेत में झूठा आदमी खड़ा होता है, उसी तरह के तुम्हारे संत हैं--टीका इत्यादि लगाए हुए, सिर इत्यादि घुटाए हुए, माला वगैरह फेरते हुए। सब ढोंग-धतूरा पूरा कर रहे हैं। सारा क्रियाकांड पूरा कर रहे हैं। मगर संतत्व कहां? अगर संतत्व हो तो सत्य के साथ सदा राजी होने की हिम्मत होगी। चाहे कोई भी कीमत चुकानी पड़े। जिनसे तुम्हारा विरोध खड़ा हो गया है, उसको कसौटी समझ लेना कि वे संत नहीं हैं।

और कहते होः "मेरे चाहने वाले आपके विचारों का सत्कार कर रहे हैं।"

मत इस भ्रांति में पड़ो। पक्का तो तभी होगा जब तुम संन्यास लो और फिर भी तुम्हारे साथ खड़े रहें। तभी कसौटी है।

तुम कहते होः "संन्यास लेने में मुझे इस बात का डर लगता है कि मुझे चाहने वालों का दिल मैं नहीं तोड़ पाऊंगा।"

दिल वगैरह है कहां? छोटे मुरारी, कैसी बातों में पड़े हो! कहां दिल, किसका टूटता दिल! होना भी तो चाहिए टूटने के पहले। सभी दिल लेकर पैदा थोड़े ही होते हैं। ये फुफ्फस-फेफड़े को तुम दिल मत समझ लेना। सांस वगैरह चलती है, इसको दिल मत समझ लेना। दिल तो बड़ी मुश्किल से मिलता है। और सभी को नहीं मिलता। मिल सकता है, लेकिन श्रम से मिलता है। प्रेम और प्रार्थना से मिलता है। ध्यान और समाधि से मिलता है। मत चिंता करो, किसी का दिल नहीं टूटेगा। बल्कि खुश होंगे इसमें से बहुत से लोग--कि अरे चलो ठीक, जाहिर हो गया।

तुम सोचते हो मेरे साथ जो लाखों लोग थे, मुझे छोड़ कर चले गए, उनका किसी का भी दिल टूटा? नहीं, एक का भी नहीं टूटा। किसी का हार्टफेल वगैरह हुआ ही नहीं। बल्कि वे खुश हुए कि चलो इस आदमी ने सच्ची-सच्ची बात कह दी, जाहिर कर दिया अपने हृदय को पूरा, नहीं तो हम इसके चक्कर में न मालूम कब तक पड़े रहते! उन्होंने कोई और किसी को खोज लिया।

कोई कमी है? तुम्हारी कथा सुनते हैं, छोटे मुरारी, किसी और की सुन लेंगे। तुम्हारे वाकचातुर्य से प्रसन्न हैं, किसी और के वाकचातुर्य से प्रसन्न हो जाएंगे। हां, ग्राहक कुछ खो जाएंगे। दिल वगैरह कुछ भी नहीं टूटेगा। और जिनका दिल है वे तुम्हें छोड़ कर जाएंगे नहीं; दिलदार ही बचेंगे।

और तुम कहते होः "मैं समाज को चाहता हूं।"

इस सड़े समाज को? इस लाश को? इसको दफनाना है कि चाहना है? इसको मरघट ले जाना है। इसकी अंतिम क्रिया करनी है। इसको विदा करना है। एक नये जीवन को जन्माना है।

और तुम कहते होः "मेरा प्रेम मेरा गला घोंट रहा है।"

प्रेम कभी गला नहीं घोंटता है। कहीं न कहीं भीतर, यह हजारों लोगों की भीड़ जो तुम्हारी कथा सुनने इकट्ठी होती है, तुम्हारे अहंकार को तृप्ति दे रही होगी। तुम्हें कष्ट तो होगा, मगर मेरी आदत ही कष्ट देना है, मैं क्या करूं? मैं दिल वगैरह तोड़ने से नहीं डरता, जी भर कर तोड़ता हूं। हां, जो टूटने पर भी न टूटे, मेरी सब चेष्टाओं से भी न टूटे, उसको ही मैं स्वीकार करता हूं कि हां था दिल, नहीं टूटा। नहीं तो दिल के टुकड़े हजार हुए, कोई इधर गिरा, कोई उधर गिरा! तो गिर जाने दो, झंझट मिटी। ऐसे दिल को रख कर भी क्या करोगे?

छोटे मुरारी, तुम कहते होः "प्रकाश डालने की अनुकंपा करें।"

प्रकाश तो डाल दिया, अब तुम लेने की अनुकंपा करो! तुम जरा आंख खोलो, संन्यास का निमंत्रण मैंने दे दिया है, तुम हिम्मत करो। कम से कम तुम तो दिल दिखलाओ। फिर तुम्हारे पीछे जिनके पास दिल होगा वे भी चले आएंगे। नहीं हजारों में रह जाएंगे, थोड़े से लोग बचेंगे। लेकिन वे थोड़े से लोग ही कीमती हैं, वे थोड़े से लोग ही प्राणवान हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, आप क्या कर रहे हैं? आपका इस कलियुग में विशिष्ट कार्य क्या है?

शिव प्रसाद अग्रवाल, पहली तो बात, यह कलियुग नहीं है। कलियुग पहले था, यह सतयुग है। मेरी समय की अपनी धारणा है।

तुम्हारी परंपरागत धारणा है कि पहले सतयुग हुआ। सतयुग था, तब समय के चार पैर थे। फिर त्रेता आया, एक टांग टूट गई। चार पैर की जगह तीन ही पैर बचे, तिपाई हो गई। किसी तरह तीन पैरों पर भी टिका

रह सकता है। समय टिका रहा। त्रेता भी इतना बुरा नहीं था; सतयुग जैसा तो नहीं था, कुछ भ्रष्ट हुआ, एक टांग टूट गई, लंगड़ाया थोड़ा, मगर तिपाई फिर भी टिकी रही।

फिर द्वापर आया। दो ही पैर रह गए। फिर जरा मुश्किल मामला हो गया। फिर जरा कठिनाई हो गई। फिर सत्य यूं चलने लगा जैसे साइकिल चलती है। दुई-चक्र। मारे जाओ पैडल तो चलती है, जरा ही पैडल रोका कि धड़ाम से गिरे। मतलब गिरना हर हालत में कहीं भी हो जाता है, देर नहीं लगती। जरा ही रुके कि गिरे। जरा ही चूके कि गिरे। द्वापर आया।

फिर द्वापर भी गया। अब कलियुग चल रहा है--तुम्हारे हिसाब से, परंपरागत हिसाब से। कलियुग का मतलब होता है, एक ही टांग बची। यह बड़ा कठिन काम, सर्कस वगैरह में होता है। यह एक ही चक्के की साइकिल चलाने वाले लोग।

मेरा एक संन्यासी है। वह सारी दुनिया की यात्रा कर रहा है, एक ही साइकिल का चक्का लेकर। अभी कुछ दिन पहले यहां था। जापान से लेकर भारत तक की यात्रा करके एक ही चक्के पर आया। यह है पक्का कलियुगी--महात्मा कलियुगानंद!

और अब आगे कुछ बचा ही नहीं। अब एक टांग की टूटने की और जरूरत है। और एक टांग कभी भी टूट जाएगी। एक टांग से कितने उछलोगे-कूदोगे? आज टूटी, कल टूटी। एक टांग का क्या भरोसा? अब तो लंगड़ी दौड़ चल रही है। कभी भी गिर जाएगा।

यह तुम्हारी समय की धारणा है। इस समय की धारणा के पीछे मनोविज्ञान है। हम सबको ख्याल है कि बचपन प्यारा था, सुंदर था। फिर जवानी आई; वह उतनी प्यारी नहीं जैसा बचपन था। बचपन तो स्वर्ग था। फिर बुढ़ापा आता है, और फिर मौत। जन्म से शुरू होती है बात और मौत पर खत्म होती है। यह हमारे सामान्य जीवन का अनुभव है। इसी अनुभव को हमने पूरे समय पर व्याप्त कर दिया है। तो पहले जन्म--सतयुग; बचपन भोला-भाला; सब सच्चे लोग; कहीं कोई बेईमानी नहीं; घरों में ताला नहीं लगाना पड़ता; कोई चोरी ही नहीं करता। यह बचपन की धारणा है हमारी। फिर जवानी आई, थोड़ा तिरछापन आया। तीन टांगें रह गईं। थोड़ी धोखाधड़ी प्रविष्ट हुई, थोड़ी बेईमानी, थोड़ा पाखंड, थोड़ी प्रतियोगिता। वह भोलापन न रहा जो बचपन का था। फिर बुढ़ापा आया। बुढ़ापे में आदमी और भी चालबाज हो जाता है, और बेईमान हो जाता है। क्योंकि जीवन भर का अनुभव। सब तरह के दंद-फंद कर चुका। सब तरह के दंद-फंद झेल चुका। और फिर तो मौत ही बचती है।

इस तरह हमने चार हिस्सों में समय को बांट दिया, आदमी के हिसाब से। मगर यह धारणा उचित नहीं है। यह सामान्य आदमी के जीवन को देख कर तो ठीक है, लेकिन अगर बुद्धों का जीवन देखो तो बात बदल जाएगी। बुद्ध का तो जो सर्वाधिक स्वर्ण-शिखर है, वह मृत्यु का क्षण है, क्योंकि उसी क्षण महापरिनिर्वाण होता है। हम जिसे मृत्यु की तरह जानते हैं, बुद्धपुरुषों ने उसे महामिलन जाना है। वह परमात्म सत्ता से मिल जाना है। वह बूंद का सागर में खो जाना है। वह सीमित का असीमित में मिल जाना है। वह मिलन है, महामिलन है। वह सुहागरात की घड़ी आई। वही प्रणय का क्षण है, प्रेम का क्षण है--अपनी पराकाष्ठा पर।

बुद्धों के जीवन में विकास होता है। बुद्‌धुओं के जीवन में ह्नास होता है। मैं नहीं मानता कि मेरा बचपन ज्यादा सुंदर था। मैं तो रोज-रोज ज्यादा सौंदर्य को, ज्यादा आनंद को, ज्यादा रस को उपलब्ध होता रहा हूं। घटा कुछ भी नहीं है, बढ़ा है। बढ़ता ही जा रहा है। मेरी मृत्यु का क्षण परम आनंद का क्षण होगा। वही असली जन्म होगा। यह पहला जन्म जो था यह तो देह में बंध जाना था। यह तो कारागृह में पड़ जाना था। वह जो जन्म होगा मृत्यु के क्षण में, वह महाजन्म होगा। वह देह से मुक्त होना, कारागृह से मुक्त होना; और महान विराट में एक हो जाना, उसके साथ तत्सम हो जाना। वह दुर्भाग्य नहीं है। लेकिन बोध बढ़े तो।

मेरे हिसाब से आदमी विकासमान है, ह्रासमान नहीं। और विज्ञान मुझसे राजी है। तुम्हारी धारणा, जो तुम्हारे पुराण तुम्हें दे गए हैं, विज्ञान के हिसाब से गलत है। विज्ञान विकासवादी है। विज्ञान मानता हैः आदमी विकसित हो रहा है। तुम सोचते होः स्वर्णयुग पहले थे, और अब कलियुग। विज्ञान कहता हैः कलियुग पहले था, स्वर्णयुग अब; और-और स्वर्णयुग आएंगे। और मैं मानता हूं कि इस तरह की धारणा जीवन के विकास में सहयोगी है।

भारत के पतन में कलियुग की धारणा ने भी बहुत सहारा दिया है। धारणाएं महंगी साबित होती हैं अगर गलत हो जाएं तो। क्योंकि लोग मानते हैं कि बुरा तो होना ही है, आगे तो और बुरा होना है, अच्छा तो हो ही नहीं सकता। जब हो ही नहीं सकता तो प्रयास क्या करना! जब मरीज ठीक ही नहीं हो सकता तो दवा क्या पिलानी, अस्पताल क्या ले जाना, चिकित्सक को क्या बुलाना! एक उदासी, एक हताशा। जब रोज-रोज नीचे ही गिरते जाना है तो उठने की आकांक्षा, अभीप्सा ही समाप्त हो गई। यूं भारत के मन में एक बड़ी विषाद, अंधकारपूर्ण अमावस छा गई। इसमें सुबह की आशा ही नहीं है। इसमें रात गहरी ही होती जानी है, सुबह होनी ही नहीं है।

इसलिए तुम इतना दुख भोग रहे हो, इतने दरिद्रता में सड़ रहे हो, इतनी दीनता में हो। कोई और जिम्मेवार नहीं। तुमने गलत मनोविज्ञान खड़ा कर लिया है। तुमने एक गलत आधार पर अपने मनोविज्ञान को विकसित किया है। इसको बदल देना जरूरी है। इसको आमूल रूप से बदल देना जरूरी है।

अय्याम बदलने हैं, तकदीर बदलनी है
टूटे हुए ख्वाबों की ताबीर बदलनी है
अश्कों से जो लिखी है, तहरीर बदलनी है
हालात के मारों की तकदीर बदलनी है
मुश्किल से न घबरा के, हालात से टकरा के
इस गर्दिशे-दौरां की तस्वीर बदलनी है
नादारिओ-मुफलिस की इंसाने-मुकद्दस के
पांवों में पड़ी है जो, जंजीर बदलनी है
हैं जिनके मुकद्दर में नाकामिओ-महरूमी
उन अपनी दुआओं की तासीर बदलनी है
तामीर के जज्बे से दुनिया की हमें "ताहीर"
तख्रीब-शिआरों की तदबीर बदलनी है
अय्याम बदलने हैं, तकदीर बदलनी है
टूटे हुए ख्वाबों की ताबीर बदलनी है

तो मैं तो यह नहीं कहूंगा कि यह कलियुग है। शिव प्रसाद अग्रवाल, कलियुग पहले था, अब सतयुग है। और आगे-आगे और सत्यतर युग होगा। आदमी विकासमान है। आदमी को और-और ऊंचाइयां छूनी हैं। आदमी को और-और नये-नये आयाम छूने हैं।

सितारों से आगे जहां और भी हैं
अभी इश्क के इम्तिहां और भी हैं

इसे नहीं भूलना है। सितारों तक जाना है। मत कलियुग की इस धारणा को और ढोओ। काफी ढो चुके और इसके वजन के तले काफी दब चुके। यह पहाड़ है जो तुम्हारी छाती पर रखा है।

तो पहली तो बात तुमसे यह कहूं कि यह कोई कलियुग नहीं है।

दूसरी बात तुमसे यह कहूं, मैं कोई विशिष्ट कार्य नहीं कर रहा हूं। यह विशिष्ट और साधारण का भेद ही मिटा देना है। यह भेद ही खतरनाक है। यह भी अहंकार के कारण हमने भेद कर लिया है--साधारण काम, असाधारण काम; विशिष्ट और अविशिष्ट; लौकिक-अलौकिक; सांसारिक-आध्यात्मिक। ये भेद अहंकार के भेद हैं।

मैं कोई विशिष्ट कार्य नहीं कर रहा हूं। मैं तो अपनी मौज में जी रहा हूं। जो मौज में आ जाता है कह देता हूं। जो मौज में आ जाता है वैसा करता हूं। न किसी परिणाम की चिंता है, न किसी सत्कार की अपेक्षा है, न किसी सम्मान की फिकर है, न किसी अपमान की कोई चिंता है। अपनी मस्ती में, अपने मन का मालिक हूं। इसलिए गालियां मुझे पड़ती हैं, कोई फर्क नहीं होता। सम्मान मुझे मिलता है, कोई फर्क नहीं होता। सब बराबर है। क्या लेना-देना है! मुझे अपने ढंग से जीना है। इसमें कुछ विशिष्टता नहीं है।

और यही मैं अपने संन्यासियों को सिखा रहा हूं कि अपनी मौज से जीओ, अपनी मस्ती से जीओ। मत किसी और कारण से जीना। क्योंकि जब भी तुम किसी और कारण से जीओगे, तुम्हें फिर जीने की धारणा को भविष्य पर स्थगित करना होगा। अगर तुम्हारा कोई हेतु है जीने का, अगर कोई फलाकांक्षा है, अगर तुम कोई परिणाम लाना चाहते हो, तो स्वभावतः परिणाम तो भविष्य में आएगा। काम अभी करना होगा, परिणाम भविष्य में आएगा। कर्म अभी, फल भविष्य में। और उसी से दुख पैदा होता है। और उसी से विषाद आता है।

अगर सफल हो गए--जिसकी संभावना बहुत कम है, सौ में एक मौका है कि सफल हो जाओ--अगर सफल हो गए तो भी विषाद आता है। क्योंकि सफलता पाकर पता चलता हैः कुछ भी तो नहीं पाया! दौड़े इतने, आपाधापी इतनी की, हाथ क्या लगा? कुछ भी तो न लगा। सब आशाएं खो गईं, पानी के बबूलों की तरह खो गईं। और अगर असफल हुए, तब तो विषाद होना ही है--कि इतने दौड़े, इतने धूपे और हाथ क्या लगा, कुछ भी न लगा! हर हाल आदमी दुखी होता है जो भविष्य के लिए जीता है।

मेरी शिक्षा तो सीधी-साफ हैः अभी जीओ। कल न कभी आया है, न आता है। यह क्षण अपने आप में साधन भी है, साध्य भी।

मैं तो अपनी बात तुमसे कह देता हूं, अपने ढंग से जी लेता हूं। न मुझे फिकर है कि इसका क्या परिणाम होगा, न मुझे इसकी चिंता है कि इसका कोई परिणाम होना चाहिए।

अब जैसे कि अभी-अभी छोटे मुरारी को मैंने कहा कि ले लो संन्यास! मैंने अपनी मौज में कह दिया। लें तो ठीक, न लें तो ठीक। कोई मैं कल इसका विचार करने बैठूंगा नहीं--कि अरे छोटे मुरारी अभी तक नहीं आए! कि छोटे मुरारी कहां गए! जहां जाना हो जाएं। आना हो आएं। न आना हो न आएं। मुझे कुछ फर्क नहीं पड़ता। अभी मैंने मौज में आकर कह दिया। यह अभी की बात है, अभी खत्म हो गई। इससे आगे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। इससे आगे मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। आ गए तो ठीक; नहीं आए तो और भी ठीक।

ये क्या सितम है कि अहसासे-दर्द भी कम है
शबे-फिराक, सितारों में भी रोशनी कम है
करीबो-दूर से आती है आपकी आवाज
कभी बहुत है गमे-जुस्तजू कभी कम है
तमाम उम्र तेरा इंतजार कर लेंगे
मगर ये रंज रहेगा कि जिंदगी कम है
उरूजे-माह को इन्सां समझ गया लेकिन
हनोज, अज्मते-इन्सां में आग ही कम है
न साथ देगी ये दम तोड़ती हुई शम्अ
नये चिराग जलाओ कि रोशनी कम है
कुछ लोग हमेशा भविष्य की ही चिंता में लगे रहते हैं।
मगर ये रंज रहेगा कि जिंदगी कम है
तमाम उम्र तेरा इंतजार कर लेंगे

तमाम उम्र इंतजार के बाद भी यह रंज रहेगा कि जिंदगी कम है, अभी और इंतजार करना था, अभी और जिंदगी चाहिए थी।

न साथ देगी ये दम तोड़ती हुई शम्अ

क्या पागलपन की बात कर रहे हो? जब तक शमा जल रही है, इसकी ज्योति के साथ नाचो!

न साथ देगी ये दम तोड़ती हुई शम्अ

नये चिराग जलाओ कि रोशनी कम है

नये चिराग जल जाएंगे, उनके लिए भी तुम यही कहोगे। तब भी यही सवाल रहेगा कि ये नये चिराग तो जल गए, मगर ये बुझ जाएंगे, और चिराग जलाओ, रोशनी कम है।

मैं तो प्रत्येक पल जीने का संदेश देता हूं।

तुम पूछते होः "आप क्या कर रहे हैं?"

कुछ भी नहीं कर रहा हूं। मस्त हूं अपनी मस्ती में। यह कोई काम भी नहीं।

पहले पीता था तेरी याद में खोने के लिए
अब तेरी याद भुलाने के लिए पीता हूं
पहले पीता था जवानी का मजा लेने को
अब जवानी को मिटाने के लिए पीता हूं
कुछ तो मेरा ख्याल करो, मैं नशे में हूं
तुम मेरे आस-पास रहो, मैं नशे में हूं
डरता हूं धूप वक्त की झुलसा न दे मुझे
तुम गेसुओं के साए करो, मैं नशे में हूं
अब मुझको कोई शर्ते-अदब याद नहीं है
दुनिया को मुझसे दूर रखो, मैं नशे में हूं
मुझको कहां है होश कि खुद भी सम्हल सकूं
तुम तो सम्हल-सम्हल के चलो, मैं नशे में हूं
ये क्या कि दो ही घूंट पीए और बहक उठे
बदनाम मयकशी न करो, मैं नशे में हूं
जब तक भी होश में था, बड़ा खाकसार था
अब मेरा एहतराम करो, मैं नशे में हूं
कुछ तो मेरा ख्याल करो, मैं नशे में हूं

तुम पूछते हो, मेरा काम क्या है। मेरा काम एक हीः तुम्हारा नशा तोड़ना। और तुम्हारा यह नशा टूट जाए तो तुम्हें उस नशे की तरफ ले चलना, जो पीओ एक बार तो फिर कभी टूटता नहीं।

अभी तुम बहुत तरह के नशों में जी रहे हो--धन का, पद का, प्रतिष्ठा का। ये सब नशे छोड़ देने हैं। और एक नशा पी लेना है--ध्यान का, समाधि का। एक शराब समाधि की। और एक घूंट काफी है। एक घूंट सागर के बराबर है। एक घूंट पीया कि नशा फिर कभी उतरता ही नहीं। और नशा भी ऐसा नशा कि बेहोशी भी आती है और होश भी आता है। साथ-साथ आते हैं, युगपत आते हैं। एक तरफ होश, एक तरफ बेहोशी। और तभी मजा है। जब बेहोशी के बीच होश का दीया जलता है, जब तुम नाचते भी हो मस्ती में और भीतर कोई ठहरा भी होता है, जब बाहर तो तुम्हारा नृत्य मीरा का होता है और भीतर तुम्हारा ठहराव बुद्ध का होता है--तब मजा है। तब जिंदगी आनंद है, तब जीवन उत्सव है।

मेरी दृष्टि में, उस क्षण ही अनुभव होता है कि परमात्मा है। उसके पहले लाख मानो, मानने से कुछ भी नहीं होता है। उस क्षण जाना जाता है। और जिसने जाना उसके जीवन में सौभाग्य की घड़ी आ गई।

जो मेरे पास इकट्ठे हैं, उनको पुराने नशे से अलग करना है और नया नशा दे देना है। यह भी कोई काम नहीं। यह भी मेरी मौज, यह भी मेरा मजा, यह भी मेरी मस्ती। इसलिए किसी का नशा टूट जाए तो ठीक; न टूटे तो मैं नाराज नहीं। टूट जाए तो शुभ; न टूटे उसकी मर्जी।

आज इतना ही।

नौवां प्रवचन

प्रेम अर्थात परमात्मा

पहला प्रश्नः ओशो, है इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजे।
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।।
क्या सच ही ओशो, प्रेम इतना दुस्तर है?

अख्तर जौनपुरी,

प्रेम तो दुस्तर नहीं। प्रेम तो सर्वाधिक स्वाभाविक, स्वस्फूर्त घटना है। लेकिन जैसे कोई झरने को चट्टान अटका कर बहने से रोक दे, ऐसा प्रेम भी अहंकार की चट्टान में दब गया है। चट्टान बड़ी है। झरना कोमल है--फूल की भांति। गुलाब के फूल को चट्टान में दबा दो तो उस फूल का विकास कठिन तो हो ही जाए। लेकिन फूल का इसमें कसूर नहीं। दबाते हो चट्टान से और फिर कहते हो कि फूल का बढ़ना कितना दुस्तर है। और फिर कहते हो कि झरने का बहना कितना दुर्गम है।

हटाओ चट्टान! फिर झरने को बहाना भी नहीं पड़ता, अपने से बहता है। इसलिए कहा--स्वस्फूर्त, सहज, स्वाभाविक।

प्रेम तो हमारी आत्मा है। प्रेम तो हमारा स्वरूप है। प्रेम ही तो है जिससे हम बने हैं। प्रेम ही तो है जिससे सारा जगत बना है। उस प्रेम को ही तो हमने नाम दिया है परमात्मा का। कोई और परमात्मा नहीं है--बस प्रेम को ही दिया गया एक नाम। प्रेम ही परमात्मा है।

और प्रेम का दीया प्रत्येक के भीतर जल रहा है। लेकिन तुमने दीवाल उठा रखी है दीये के चारों तरफ। इसमें बेचारा दीया करे भी तो क्या करे? दीया अंधेरे को मिटा सकता है, दीवाल को तो नहीं मिटा सकता। दीया, कितना ही पुराना अंधकार हो, सनातन अंधकार हो, उसे भी क्षण में तोड़ सकता है। लेकिन दीवाल को मिटाने का उपाय तो दीये की रोशनी में नहीं है। और तुम दीवाल को देखते नहीं। शायद देख लो तो फिर दीवाल को बनाओ भी न। क्योंकि कोई और दीवाल को नहीं बनाता है, कोई और चट्टान को नहीं रखता है। यह तुम ही हो जो एक तरफ प्रेम की गुहार मचाते हो और एक तरफ प्रेम की रुकावटें खड़ी करते हो। यह तुम्हीं हो। एक हाथ से करते हो, तुम्हारे दूसरे हाथ को पता भी नहीं चलता। इतनी मूर्च्छा है, इतनी बेहोशी है।

पूछा तुमने, अख्तर जौनपुरीः "है इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजे।
इक आग का दरिया है और डूब के जाना है।।"

जरूर आग का दरिया है और जरूर किसी को इस दरिये में डूब जाना है। लेकिन वह तुम नहीं हो। तुम्हें तो कोई आग जला न सकेगी। नैनं दहति पावकः। तुम्हें तो कोई तीर छेद न सकेगा। तुम्हें तो कोई तलवार काट न सकेगी। नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि। लेकिन हां, इस आग के दरिया में अहंकार जलेगा, तड़फेगा, मछली की तरह तड़फेगा। जैसे कि कोई मछली को फेंक दे जलती हुई रेत पर, अंगारों पर, यूं तड़फेगा। और अगर तुमने अहंकार को ही अपनी आत्मा समझा है तो फिर तुम भी तड़फोगे। वह तादात्म्य फिर तुम्हें भी नरक दिखला देगा।

माना कि एक आग का दरिया है और डूब कर जाना है, मगर किसको डूबना है? तुम्हें नहीं। तुम्हें तो कोई डुबाना चाहे तो भी नहीं डुबा सकता। मृत्यु नहीं डुबा सकती, आग क्या डुबाएगी? तुम्हारा डूबना संभव ही नहीं है। तुम शाश्वत हो। अमृतस्य पुत्रः! तुम तो अमृत के पुत्र हो। तुम पहले भी थे इस जन्म के और मृत्यु के बाद भी तुम रहोगे। तुम सदा से हो। ऐसा कभी न था जब तुम न थे। ऐसा कभी न होगा जब तुम न होओगे। तुम्हारा कोई डूबना नहीं है। मगर हां, कुछ तो डूबेगा--जो तुममें झूठ है, जो तुममें असत्य है, जो तुममें तुम्हारा ही निर्मित है, वह तो डूबेगा। अहंकार डूबेगा। और अहंकार के साथ वह सजावट भी डूबेगी जो तुमने अहंकार के चारों तरफ कर रखी है। अहंकार को सजाना होता है, क्योंकि अहंकार कुरूप है।

ध्यान रहे, सिर्फ कुरूप व्यक्ति ही सजते हैं, संवरते हैं। सौंदर्य तो नग्न हो तो भी सुंदर होता है। लेकिन कुरूपता नग्न खड़ी नहीं हो सकती। कुरूपता को तो सजना होगा, संवरना होगा। कुरूपता को तो जगह-जगह से ढांकना होगा, रंग-रोगन पोतना होगा, आभूषण पहनने होंगे, घूंघट मारना होगा। यह सब कुरूपता के कारण है। घूंघट की ईजाद कुरूप स्त्रियों ने की होगी। या उन पुरुषों ने की होगी जिनकी स्त्रियां कुरूप थीं। घूंघट सौंदर्य की ईजाद नहीं है। और फिर समझाया होगा--लज्जा, शील, अच्छी-अच्छी प्यारी-प्यारी बातें। और प्यारी-प्यारी अच्छी-अच्छी बातों के भीतर जहर है, और कुछ भी नहीं।

अहंकार नग्न खड़ा हो तो तुम उससे अभी छूट जाओ। लेकिन उस पर सोने की पर्तें चढ़ी हैं। उस पर हीरों का ताज। और हीरे भी ऐसे कि सदियों-सदियों से उन्हें तुमने हीरा माना है। इसलिए आज एकदम से पत्थर मानना मुश्किल हो जाता है। इसलिए आसान नहीं मालूम होता प्रेम, क्योंकि अहंकार को छोड़ना आसान नहीं मालूम होता।

किस-किस भांति अहंकार अपने को सजाता है, इसे जरा देखो। जरा पन्ने पलटो अहंकार की किताब के। कोई कहता है मैं हिंदू हूं। कोई कहता है मैं मुसलमान हूं। कोई कहता है मैं जैन हूं। कोई कहता है मैं सिक्ख हूं। कोई कहता है मैं ईसाई हूं।

तुम्हें सत्य का पता नहीं, पहचान नहीं, प्रत्यभिज्ञा नहीं। कैसे तुम हिंदू हुए? कैसे तुम ईसाई हुए? कैसे तुमने जाना कि क्राइस्ट सही, कि कृष्ण सही, कि कनफ्यूशियस सही? कैसे तुमने पहचाना कि मोहम्मद सही, कि मूसा सही, कि महावीर सही? कैसे, किस आधार पर, किस कसौटी पर तुमने परखा कि ईश्वर है या नहीं है? तुम कैसे नास्तिक हो गए, कैसे आस्तिक हो गए? सब बासी और उधार बातें। और मजा यह है कि जो भूल तुम्हें अपने में नहीं दिखाई पड़ती वह दूसरे में तत्क्षण दिखाई पड़ जाती है; न हो तो भी दिखाई पड़ जाती है।

तीन सरदारों ने एक प्रश्न पूछा है। आमतौर से एक ही आदमी एक प्रश्न पूछता है। लेकिन तीन सरदारों ने बहुत माथापच्ची की होगी, तब एक प्रश्न बना पाए। और प्रश्न भी क्या गजब का पूछा है। बड़ी मेहनत से पूछा है। पसीना बह गया होगा। डंड-बैठक लगाए होंगे। प्रश्न पूछा है कि यहां इतने पहरेदार हैं, क्या इससे सिद्ध नहीं होता कि आप मृत्यु से डरते हैं?

सरदार होकर और ऐसी बात पूछते हो! तो ये गुरु गोविंद सिंह जो तलवार लटकाए रहते हैं, किसलिए? मृत्यु से डरते होंगे, इसीलिए! नहीं तो गुरु गोविंद सिंह तलवार किसलिए लटकाए हुए हैं? तलवार काहे के लिए रखी है? तलवार से कोई चटनी बनाते हैं कि सब्जी काटते हैं? कि कच्छा में धागा पिरोते हैं, कि केश संवारते हैं? क्या करते हैं तलवार से?

सरदार होकर, जिनके कि धर्म के पांच अंगों में कृपाण एक है। पांच ककार चाहिए, तब कहीं कोई सरदार हो पाता है। कच्छा चाहिए! क्या बात कही! केश चाहिए, कंघी चाहिए, कृपाण चाहिए, कड़ा चाहिए। कृपाण किसलिए?

यहां जो पहरेदार हैं वे मेरी मृत्यु को नहीं रोक सकेंगे। कौन किसकी मृत्यु को रोक सकता है! आज तक कभी किसी की मृत्यु रोकी जा सकी है? लेकिन किसी मूर्खानंद को मूर्खता करने से रोक सकेंगे। मेरी मृत्यु को नहीं रोक सकेंगे। मेरी मृत्यु को तो देख भी नहीं सकेंगे, रोकेंगे कैसे?

महात्मा गांधी की हत्या हुई। हत्या के पहले सरदार पटेल ने उनसे पूछा था। एक तो पूछा, यही बेईमानी की बात है। सरदार के मन में कहीं न कहीं कुछ बेईमानी थी। पूछने की कोई बात है? यूं पूछा जाता है? अगर किसी के घर में कोई आग लगाने आ रहा हो, तो क्या पुलिस को जाकर पूछना चाहिए कि भाई, खबर मिली है कि तुम्हारे घर में लोग आग लगाएंगे, तो हम पहरा बिठा दें कि न बिठाएं? जैसी तुम्हारी मर्जी! अगर घर में कोई आग लगाने आ रहा है तो घर के लोग अगर मना भी करें तो भी पहरा बिठालना चाहिए। घर के लोगों से पूछने का सवाल ही नहीं उठता। यह घर बचाने का ही सवाल तो नहीं है। आग लगाने वाले जो मूर्खता करने जा

रहे हैं उनको रोकने का भी तो सवाल है। ज्यादा महत्वपूर्ण तो वही है। शायद इस तरह तुमने कभी सोचा न होगा। महात्मा गांधी को जाकर सरदार वल्लभ भाई पटेल ने पूछा--क्योंकि वे गृहमंत्री थे, यह उनकी जिम्मेवारी थी--कि आपके जीवन को खतरा है, इस तरह की खबरें मिल रही हैं, तो हम इंतजाम करें?

यह कोई पूछने की बात है? जाहिर है कि पूछने में ही यह छिपा था कि महात्मा गांधी तो कहेंगेः नहीं, इंतजाम नहीं। महात्मा गांधी ने कहा कि क्या इंतजाम की जरूरत है! जब परमात्मा मुझे उठाना चाहेगा तो उठा लेगा।

लेकिन यह बात भी ईमानदारी से भरी हुई नहीं। न तो महात्मा गांधी ईमानदारी की बात कर रहे हैं, न सरदार वल्लभ भाई पटेल ईमानदारी की बात कर रहे हैं। क्योंकि अगर महात्मा गांधी सच में ही ईमानदारी से ऐसा अनुभव करते हैं कि जब परमात्मा उठाना चाहेगा तो मुझे उठा लेगा, तो फिर सरदार वल्लभ भाई पटेल को भी रोकने की जरूरत नहीं। परमात्मा किसी से उठवाना चाहेगा और किसी से बचवाना चाहेगा। तो एक को रोकना और एक को नहीं रोकना, यह तो बेईमानी हो जाएगी।

मुझसे अगर सरदार वल्लभ भाई पटेल पूछते, तो मैं कहता, ठीक। न मैं उसको रोक सकता हूं जो मुझे उठाना चाहता है, न तुमको रोक सकता हूं जो मुझे बचाना चाहता है। उठाने वाले को उठाने दो, बचाने वाले को बचाने दो। जो जिसकी मौज है वह करे। मेरी जो मौज है मैं कर रहा हूं।

लेकिन महात्मा गांधी ने कहा कि मुझे जब परमात्मा उठाना चाहेगा तो कोई नहीं रोक सकता। इसलिए इंतजाम की कोई जरूरत नहीं है। ध्यान रहे कि इंतजाम न किया जाए।

इतना आग्रह कि इंतजाम न किया जाए, यह किस बात का सबूत है?

यह आग्रह खतरनाक साबित हुआ। और इसका खतरा सिर्फ यही नहीं हुआ कि महात्मा गांधी की हत्या हुई; इसका खतरा यह भी हुआ कि बेचारा नाथूराम गोडसे भी फांसी लटका। यह गरीब मुफ्त मारा गया। इसकी भी तो कुछ फिक्र करो। तुमको भगवान उठाना चाहता है यह तो ठीक है, मगर यह नाथूराम को! यह पूनावासी नाथूराम! यह तो बच जाता। कम से कम इस पर तो दया करते। तुम्हें जाना था, जाते।

ये यहां जो पहरेदार हैं, नाथूरामों को रोकने के लिए हैं। मेरी मृत्यु को कौन रोक सकता है? जब होनी होगी हो जाएगी। और मेरी मृत्यु मेरी मृत्यु कहां है? शरीर और मेरा संबंध किसी न किसी दिन टूटेगा। लेकिन किसी नाथूराम के द्वारा तुड़वाना, तो फिर यह नाथूराम मुश्किल में पड़ेगा। इस पर भी तो कुछ दया करते। महात्मा गांधी ने अपना महात्मापन तो बचा लिया, नाथूराम को फांसी लगवा दी। यह हिंसा हो गई। यह हिंसा रोकी जा सकती थी।

और सरदार पटेल एकदम राजी हो गए। ऐसे राजी हो गए जैसे जीवन भर महात्मा गांधी ने जो कहा हो सबको मानते ही रहे हों। उसमें से एक बात और नहीं मानी कोई, मगर यह बात मान ली। कहीं भीतर अचेतन में इनके भी हत्यारा छिपा हुआ है। सात दिन पहले ही महात्मा गांधी की हत्या के, सरदार वल्लभ भाई पटेल ने राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की लखनऊ में हुई रैली में, बड़ी प्रशंसा की थी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की। सात दिन पहले ही! कि इस देश में ऐसी कोई अनुशासनबद्ध, राष्ट्रभक्ति से भरी हुई दूसरी संस्था नहीं है। और यही लोग थे जो निरंतर कोशिश कर रहे थे। यह सात दिन पहले भी कोशिश चल रही थी, सात महीने पहले भी कोशिश चल रही थी कि गांधी को हटा देना है। और इन्हीं लोगों में से एक ने गांधी को मारा भी।

और सरदार पटेल ने फिर इंतजाम नहीं किया--कि जब गांधी कहते हैं कि इंतजाम नहीं करना, तो उनकी आज्ञा का कैसे उल्लंघन करना!

गांधी तो कहते थे, भारत को भी नहीं बंटने देना है। आज्ञा का कैसे उल्लंघन कर दिया? गांधी तो कहते थे, मेरी लाश पर भारत बंटेगा। मगर भारत बंट गया। जिन्हें बांटना था उन्होंने बांट लिया। एक बात समझ में

आ गई भारत के राजनेताओं को कि बिना बंटे हम दोनों ही, जिन्ना भी, नेहरू भी, पटेल भी, सभी सत्ताहीन रह जाएंगे। बंटवारे से ही सत्ता मिल सकती है। इसलिए बंटता हो तो बंट जाए, मगर सत्ता नहीं छोड़ी जा सकती।

यह बात मान ली। और तो कोई बात मानी नहीं कभी। अचेतन मन!

अब ये तीन सरदारों को एक ही प्रश्न उठा यहां आकर--कि यहां इतने पहरेदार! और इन्होंने कभी प्रश्न न उठाया होगा कि यह कृपाण लिए सरदार क्यों घूम रहे हैं? गुरु गोविंद सिंह कृपाण किसलिए लिए हुए घोड़े पर चढ़े हुए हैं? घोड़े ने इनका क्या बिगाड़ा? और ये कृपाण को... काहे को बोझ ढो रहे हैं? किसलिए, क्या प्रयोजन है?

नहीं, यह बड़े मजे की बात है कि अपनी आंख में पहाड़ भी पड़ा हो तो दिखाई नहीं पड़ता। और दूसरे की आंख में किरकिरी भी पड़ी हो तो दिखाई पड़ती है; न भी पड़ी हो तो भी दिखाई पड़ जाती है।

यह तो तुम्हें दिखाई पड़ता है, अख्तर जौनपुरी, कि प्रेम बहुत कठिन है।

"है इश्क नहीं आसां, इतना तो समझ लीजे!"

मैं नहीं समझूंगा। क्योंकि मैंने तो प्रेम को अत्यंत सरल पाया, सुगम पाया। इससे ज्यादा सरल और सुगम तो कुछ भी नहीं है। मगर कठिन कोई और बात है, जिसको कि तुम छिपा रहे हो, जो तुम्हें दिखाई भी शायद न पड़ रही हो, या जिसे तुम देखना नहीं चाहते। अहंकार छोड़ना कठिन है। और अहंकार न छोड़ो तो प्रेम असंभव है; कठिन ही नहीं, असंभव। हो ही नहीं सकता। अहंकार को लेकिन तुम सजाए हो। हिंदू के वस्त्र पहनाए, राम-नाम की चदरिया ओढ़ा दी, तो अहंकार भी ऐसा लगता है कि कोई महात्मा बैठे हुए हैं। राम-नाम की चदरिया ओढ़े अहंकार बैठ जाता है तो महात्मा हो जाता है। कोका-कोला पर भी राम-नाम की चदरिया ओढ़ा दो तो गंगाजल हो जाता है एकदम। राम-नाम की चदरिया चाहिए।

और फिर अहंकार कैसे-कैसे रूप रखता है! फिर दावा करता है कि हिंदू धर्म सबसे प्राचीन धर्म। सबसे महान धर्म! भारत-भूमि पुण्य-भूमि! यहां देवता पैदा होने को तरसते हैं!

मैं कई बार सोचता हूं कि देवता यहां किसलिए पैदा होने को तरसते हैं? यहां क्या है जिसके लिए देवता पैदा होने के लिए तरसते हैं? सच तो बात उलटी ही मालूम पड़ती है। क्योंकि महावीर, बुद्ध, नागार्जुन, कुंदकुंद, उमास्वाति, यह जो परंपरा है जाग्रत पुरुषों की, ये सब तो तड़पते हैं कि किस तरह आवागमन से छुटकारा हो। इस देश में ही आवागमन से छुटकारे की धारणा पैदा हुई। इस देश में हर आदमी आवागमन से छुटकारा चाहता है। तो देवता काहे के लिए आवागमन करना चाहते हैं? क्योंकि जिनको हमने यहां दिव्य पुरुष माना है--महावीर को और बुद्ध को--ये सब तो यहां से छुटकारा चाहते हैं। ये तो कहते हैं कि जितनी जल्दी छुटकारा हो जाए उतना अच्छा। फिर दुबारा देह में न आना पड़े। फिर दुबारा जन्म न लेना पड़े। यह भवसागर, यह तो दारुण पीड़ा है। इसके पार जाना है। देवता किसलिए तरस रहे हैं? उनको पीड़ा में आना है? उनको नरक में पैदा होना है?

नहीं, लेकिन हिंदू अहंकार सब तरह से अपने को सजाएगा। भारत-भूमि पुण्य-भूमि! भारत देश धार्मिक! भारत का धर्म सबसे पुराना धर्म!

और वही पागलपन जैनों को है, वही बौद्धों को है, वही ईसाइयों को है, वही मुसलमानों को है, वही सिक्खों को है, वही पारसियों को है, सभी को वही पागलपन है--हमारा धर्म श्रेष्ठतम! लेकिन सच यह है कि हमारा धर्म श्रेष्ठतम, इसकी आड़ में वे यह कहना चाह रहे हैं कि मैं श्रेष्ठ। ये सब अहंकार की सजावटें हैं। ये नक्काशियां हैं अहंकार के चारों तरफ। ये प्यारे-प्यारे रंगीन पर्दे हैं जिनमें कुरूप अहंकार को छिपाया जाता है--मेरा देश महान, मेरी जाति महान, मेरा वर्ण महान! किसी भी तरह से मैं महान। इन सबकी आड़ में मेरी महानता सिद्ध होनी चाहिए! अगर दरिद्र भी हो तुम तो दरिद्रता भी फिर महान हो जाती है, दीनता भी महान

हो जाती है। फिर तुम दरिद्रनारायण हो। अगर अछूत हो, तो अछूत कहने में कष्ट होता है अहंकार को। तो तुम्हें महात्मा गांधी जैसे लोग मिल जाते हैं, जो कहते हैं--अछूत? नहीं-नहीं, हरिजन!

और कैसी तृप्ति मिलती है हरिजन शब्द सुन कर!

कहां तो परिभाषा थी हरिजन की--नरसिंह मेहता ने कहा--हरिजन तो तेने कहिए, जे पीड़ परायी जाने रे। यह तो परिभाषा थी संतों की, कि हरिजन तो उसको कहो जो दूसरे की पीड़ा को जाने; जो दूसरे की पीड़ा को यूं अनुभव करे जैसे अपनी पीड़ा है। हरिजन तो तेने कहिए! और कहां महात्मा गांधी हैं--बाबू जगजीवन राम हरिजन! इन्होंने किसकी पीड़ा जानी? इन्होंने कौन सी पीड़ा जानी? इनमें क्या हरिजन जैसा है?

अछूतों को हरिजन कह देना, हरिजनों के अहंकार को बल दे देना है। अछूत ही कहो! क्योंकि अछूत का उन्हें अहसास बना रहे तो आज नहीं कल वे ब्राह्मणों के जाल से मुक्त हो जाएंगे। मगर उनको हरिजन कह दो, तो तुमने जंजीर को आभूषण बना दिया। तुमने जंजीर पर सोना और चांदी चढ़ा दी। तुमने जंजीर को सौंदर्य दे दिया। अब वे खुद ही जंजीर को पकड़ेंगे, छोड़ना न चाहेंगे। हरिजन होने से कौन छूटना चाहेगा? यह तो ब्राह्मण का पर्यायवाची हो गया। ब्राह्मण का अर्थ था--जो ब्रह्म को जाने। और हरिजन का अर्थ है--उससे भी ऊपर, जो हरि का प्यारा है। अरे जानना-वानना छोड़ो! तुमने भला ब्रह्म को जान लिया हो, लेकिन ब्रह्म तुम्हें प्रेम करता है कि नहीं, सवाल यह है। तुम्हारे जान लेने से ही प्रेम करेगा, यह कुछ पक्का तो नहीं। और ठीक-ठीक जान लो तो शायद कभी भूल कर भी प्रेम न करे; भाग ही खड़ा हो कि यह जानकार आ रहा है। इससे बचो, सावधान रहो।

हरिजन तो ब्राह्मण से भी ऊंचा शब्द है। ब्राह्मण तो उसको कहते हैं जिसने ब्रह्म को जाना। और हरिजन उसको कहते हैं जिसको ब्रह्म ने जाना। किसको तुम ऊंचा कहोगे? जाना ही नहीं, माना भी, प्रेम भी किया। कैसा अच्छा शब्द चुन लिया! गंदगी को छिपाने के भी कैसे-कैसे प्यारे रास्ते लोग खोज लेते हैं। हरिजन मस्त हो गया, आनंदित हो गया, आह्लादित हो गया।

हजारों तरकीबों से आदमी ने अपने अहंकार को बचाया है, आज भी बचा रहा है, सब तरह से बचाता है। चमड़ी का रंग अहंकार बन जाता है। अगर चमड़ी गोरी है तो श्रेष्ठ; अगर चमड़ी काली है तो श्रेष्ठ नहीं। काली चमड़ी वालों को भी यही ख्याल है कि चमड़ी काली है तो श्रेष्ठ; चमड़ी गोरी है तो वे गोरा नहीं कहते। अफ्रीका में अंग्रेज को गोरा नहीं कहते हैं, पीला कहते हैं। ये चले आ रहे हैं पीलिया के मरीज! गोरा तो कह ही कैसे सकते हैं? पीलिया के मरीज! रक्त की कमी है। काला आदमी भी अपने कालेपन का गौरव मानता है। गोरा आदमी अपने गोरेपन का गौरव मानता है। हर देश में एक सी मूढ़ता है। हर जाति में एक सा पागलपन है, एक सी विक्षिप्तता है। मगर सारी विक्षिप्तता का सूत्र एक ही है।

धनी धन के कारण अकड़ता है, कि मेरे पास इतना धन है। और गरीब इसलिए अकड़ता है कि जीसस ने कहा हैः धन्य हैं दरिद्र, धन्यभागी हैं, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हीं का होगा! जो दरिद्र हैं वे प्रभु के बेटे हैं! दरिद्रों को स्वर्ग मिलेगा और धनियों को नर्क।

तो दरिद्र भी अपने चारों तरफ इश्तहार लटका लेता है कि कोई बात नहीं। कोई बात नहीं, दो दिन की मालकियत है, कर लो। दो दिन उछल-कूद कर लो। फिर नरक में पड़ोगे। और कोई बात नहीं, दो दिन की तकलीफ है, हम झेल लें। यह तो तपश्चर्या है। यह तो सादगी है। सादा जीवन, उच्च विचार! तो हम सादा जीवन जी रहे हैं, ऊंचे विचार कर रहे हैं। भूखे हैं, कोई बात नहीं, मगर विचार ऊंचे कर रहे हैं। ऊंचे विचार यही हैं कि जल्दी ही, आज नहीं कल, स्वर्ग में पहुंचेंगे। ऊंचे विचार यानी ऊपर के विचार। और क्या खाक भूख में ऊंचे विचार करोगे! कि कल्पवृक्ष के नीचे बैठेंगे और मजा-मौज करेंगे। अरे गुजार लो, दो दिन की तकलीफ है। इतने दिन तो गुजर ही गए। चार दिन की तो जिंदगी ही है; यूं गई, यूं गई! जल्दी ही कल्पवृक्ष मिलेगा, और फिर हलुआ-पूड़ी। फिर तो कल्पवृक्ष के नीचे बिछा कर शय्या, जैसे कि विष्णु भगवान क्षीरसागर में बिछाए शय्या,

शेषनाग पर लेटे हुए हैं। और लक्ष्मी मैया उनके पैर दबा रही हैं। ऐसे ही कल्पवृक्ष के नीचे लेटेंगे। कोई पैर दबाएगा, कोई बांसुरी बजाएगा, कोई लोरी गाएगा। सब तरह का मजा करेंगे। ऊंचे विचार!

आदमी हर हाल में अपने अहंकार को बचा लेना चाहता है। शास्त्रों का गुणगान करता है कि वेद सबसे पुराने, कि गीता से ज्यादा और पवित्र कोई ग्रंथ नहीं, कि कुरान स्वयं परमात्मा से उतरी, परमात्मा की किताब, कि बाइबिल स्वयं पैगंबरों ने लिखी, और जिन-सूत्र स्वयं तीर्थंकरों ने कहे। यह कोई साधारण आदमियों की बातचीत नहीं है। ये अपौरुषेय ग्रंथ हैं। इन पर परमात्मा के हस्ताक्षर हैं। ये अधिकृत हैं।

अपने अहंकार को तुम कितनी सीलें लगाते हो! अधिकृत! कौन अधिकार देता है? क्या प्रमाण है कि कुरान ईश्वर की किताब है? कुरान के अतिरिक्त कहीं और कोई प्रमाण नहीं।

यह तो यूं हुआ जैसे मुल्ला नसरुद्दीन ने एक दिन बाजार में जाकर कहा कि मेरी स्त्री से ज्यादा सुंदर स्त्री दुनिया में कोई भी नहीं।

लोग थोड़े चौंके। पूछा, इसका प्रमाण क्या?

उसने कहा, प्रमाण की जरूरत ही क्या है? मेरी स्त्री ने खुद कहा है। और क्या प्रमाण चाहिए? जब मेरी स्त्री खुद कह रही है तो पर्याप्त प्रमाण है। गवाही उसी की है, उसी ने कहा है कि उससे ज्यादा सुंदर इस पृथ्वी पर कोई नहीं है।

गीता ईश्वरीय है, इसका प्रमाण क्या है? गीता के भीतर ही प्रमाण है, कि कृष्ण अपने को पूर्णावतार घोषित कर रहे हैं। तो गीता अधिकृत ग्रंथ हो गया। बाइबिल ईश्वरीय है, इसका प्रमाण क्या है? जीसस अपने को ईश्वर का बेटा कह रहे हैं। बाइबिल के भीतर ही प्रमाण है। बाइबिल के बाहर तो कोई प्रमाण नहीं है। यही प्रमाण है कि लोगों ने जीसस को सूली दे दी। तीर्थंकरों के वचनों में ही प्रमाण हैं कि ये वचन अपौरुषेय हैं। वेदों में ही प्रमाण हैं कि ये वेद अपौरुषेय हैं, ईश्वर ने बनाए हैं। हालांकि बात बिल्कुल बेहूदी जंचती है। मगर अदभुत है। हजारों साल से यह देश मान रहा है कि वेद अपौरुषेय हैं। और कभी तुम वेद के पन्ने तो उलट कर देखो, कहीं से भी पन्ने उलट कर देखो, तुमको साफ हो जाएगा कि एक बात तो तय है कि किसी ने भी रचे हों, ईश्वर ने नहीं रचे हैं। क्योंकि जो प्रार्थनाएं उसमें लिखी हैं वे ईश्वर करेगा?

वेद में प्रार्थना आती है कि हे इंद्र देवता! यह ईश्वर लिखेगा? कि हे इंद्र देवता, मेरी गऊ का दूध बढ़ा दे! कि हे इंद्र देवता, अच्छी वर्षा करना कि मेरे खेत में खूब फसल हो! कि हे इंद्र देवता, मैं तुझे सोमरस पिलाऊंगा, यज्ञ करूंगा, हवन करूंगा, पुरोहितों को दान करूंगा, तेरी स्तुति में गान करूंगा; मेरे दुश्मनों को मार डाल! यह ईश्वर लिखेगा? अंधा भी कह सकता है, मूढ़ से मूढ़ आदमी भी कह सकता है कि यह ईश्वर लिखेगा? और निन्यानबे प्रतिशत वेद के वचन यही हैं--इसी तरह की प्रार्थनाएं--कि मुझे धन मिले, मुझे धान्य मिले, मुझे सुंदर स्त्री मिले, मेरी पत्नी को सुंदर पुत्र पैदा हों, मैं सौ साल जीऊं! यह ईश्वर कहेगा--सौ साल जीऊं? फिर सौ साल के बाद? तो ईश्वर कभी का मर चुका होगा। और ईश्वर के कैसे बेटे? और इसको बेटे नहीं हो रहे? और ये इंद्र देवता क्या ईश्वर से ऊपर हैं, जिनसे यह प्रार्थना कर रहा है?

लेकिन अदभुत है आदमी का अहंकार। आंख बंद करके माने चला जाता है, चुपचाप। जो भी अहंकार को सुखद मालूम पड़ता है उसमें कभी भी तर्क नहीं उठाता, संदेह नहीं उठाता।

पहला संदेह तुम्हें उठाना चाहिए, अख्तर जौनपुरी, कि क्यों यह प्रेम इतना दुस्तर मालूम होता है? यह प्रेम के कारण या कोई और बात है?

हिंदू होकर तुम प्रेम नहीं कर सकते। भारतीय होकर तुम प्रेम नहीं कर सकते, चीनी होकर तुम प्रेम नहीं कर सकते। गोरे और काले होकर तुम प्रेम नहीं कर सकते। ब्राह्मण और शूद्र होकर तुम प्रेम नहीं कर सकते। अगर प्रेम करना हो तो ये सारे अहंकार छोड़ देने होंगे। छील डालना होगा एक-एक अहंकार की पर्त को। जैसे कोई प्याज को छीलता हैः एक-एक पर्त निकालता जाता है, निकालता जाता है, निकालता जाता है। पर्त के भीतर

पर्त है। और आखिर में जब कुछ भी न बचे, हाथ में शून्य रह जाए, प्याज खो जाए और शून्य रह जाए। अहंकार खो जाए और शून्य रह जाए, तब तुम अचानक पाओगे--फूट पड़ा झरना। कुछ करना नहीं, कुछ करने का सवाल ही नहीं। जैसे ही तुम्हारे भीतर अहंकार गया, शून्य हुआ, पत्थर हटा और जगह बनी कि झरना फूट पड़ता है। झरना तैयार है, तत्पर है, प्रतिपल उत्सुक है कि हटाओ अहंकार और मैं बहूं। सदियों से राह देख रहा है। मगर तुम हो कि अहंकार को और बड़ा करते चले जाते हो। और नये पत्थर जोड़ते चले जाते हो। और नई ईंटें, और नई सीमेंट, और नया-नया खोजते चले जाते हो। तुम्हारे अहंकार का विस्तार इतना हो जाता है कि अगर ये गुलाब के फूल जैसा नाजुक प्रेम दब कर मर जाता हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।

खलील जिब्रान का एक प्रसिद्ध वचन है, बहुत प्यारा वचन है, और उलटबांसी जैसा मालूम होगा। खलील जिब्रान ने कहा हैः जो तुममें सबसे क्षणिक, सबसे कमजोर और अव्यवस्थित है, वही तुममें सबसे दृढ़, सबल और व्यवस्थित भी है।

फिर से दोहरा दूंः जो तुममें सबसे ज्यादा क्षणिक, सबसे ज्यादा कमजोर, नाजुक और सबसे ज्यादा अव्यवस्थित है, वही तुममें सबसे दृढ़, सबल और व्यवस्थित भी है।

क्या है तुम्हारे भीतर सबसे ज्यादा क्षणिक? प्रेम। क्यों? गुलाब का फूल तो क्षणिक ही होगा, प्लास्टिक के फूल ही स्थिर हो सकते हैं। प्लास्टिक के फूल ही सनातनधर्मी हो सकते हैं। असली फूल तो अभी खिला, अभी झरा। असली फूल तो सुबह खिला, सांझ गया। अभी था, अभी नहीं। सत्य तो क्षण के अतिरिक्त और किसी अस्तित्व को नहीं जानता है।

इसलिए बुद्ध ने अपने को क्षणिकवादी कहा है। हालांकि भारत में उनके क्षणिकवाद की बहुत निंदा हुई। क्योंकि हम तो टिकाऊ चीजों में भरोसा करते हैं। अरे हम तो दो पैसे की भी हंडी खरीदने जाते हैं तो चारों तरफ से ठोंक-बजा कर लेते हैं--कि कहीं फूटी न हो, कहीं कच्ची न हो। दो पैसे की हंडी भी इतनी ठोंकते-बजाते हो! व्यवसायी का चित्त है, हिसाब लगा कर चलता है।

बुद्ध ने बड़ी अजीब बात कही। बुद्ध ने कहा कि मैं क्षणिकवादी हूं। क्योंकि क्षण के अतिरिक्त अस्तित्व किसी और समय को नहीं जानता। बाकी सब तुम्हारी या तो कल्पना है या तुम्हारी स्मृति है। अतीत तुम्हारी स्मृति, भविष्य तुम्हारी कल्पना। जो है, जिसका अस्तित्व है, वह तो क्षण है। जैसे विज्ञान इस नतीजे पर पहुंचा है कि जिसका अस्तित्व है, वह तो परमाणु है, बाकी सब तो भ्रांति है। ऐसे ही बुद्ध ने कहा है कि समय का जो सबसे छोटा हिस्सा है, परमाणु, क्षण--क्षण का विभाजन नहीं हो सकता--अविभाज्य, जो समय का सबसे छोटा हिस्सा है, वही सत्य है। और जो क्षण में जीना जान गया उसने सत्य में जीना जान लिया।

अहंकार टिकाऊ होना चाहता है। अहंकार कहता है--टिकूं। अहंकार बचना चाहता है, जितनी देर बच सके बचे। क्योंकि अहंकार सदा ही मृत्यु से घिरा हुआ है। अहंकार को डर है मरने का। मरने का डर इसलिए है कि अहंकार बुनियादी रूप से झूठ है; हमारी बनावट है, कृत्रिम है, इसलिए बिखरने का डर है। चाहे तुम महल पत्थरों के ही क्यों न बनाओ, मजबूत से मजबूत पत्थरों के, तो भी बिखर जाएंगे। कितना ही मजबूत अहंकार हो, आज नहीं कल टूटेगा, खंडहर हो जाएगा। इसलिए अहंकार हमेशा टिकना चाहता है, टिकाऊ होना चाहता है, फौलाद का होना चाहता है। और प्रेम तो गुलाब है, फौलाद नहीं। अस्तित्व प्रेम को जानता है, अहंकार को नहीं जानता। अस्तित्व क्षण को जानता है। ये टिकाऊपन की बातें सब दुकानदारी की बातें हैं।

खलील जिब्रान कहता हैः तुम्हारे भीतर जो सबसे ज्यादा क्षणिक है और सबसे ज्यादा नाजुक, यूं जैसे फूल की पंखुड़ियां, ऐसा नाजुक, और सबसे ज्यादा अव्यवस्थित... ।

क्योंकि प्रेम किसी अनुशासन को नहीं मानता, प्रेम मुक्तता है, स्वच्छंदता है। यह स्वच्छंद शब्द बड़ा प्यारा है। प्रेम का अपना छंद है, अपना गीत है, स्वयं का छंद है। वह किसी और छंद के अनुसार नहीं चलता।

वह लकीर का फकीर नहीं है, स्वतंत्र है। इसलिए जो लोग व्यवस्था में जीते हैं, जो लोग एक तरह के अनुशासन में जीते हैं, जिन्होंने जीवन को एक ढांचा बना लिया है, जो एक परिपाटी में जीते हैं, उनके लिए प्रेम अव्यवस्थित मालूम होगा ही।

खलील जिब्रान ठीक कह रहा है कि तुम्हारे भीतर जो सबसे ज्यादा क्षणिक मालूम हो, नाजुक मालूम हो, अव्यवस्थित मालूम हो, जानना कि वही तुम्हारे भीतर सबसे ज्यादा दृढ़, सबसे ज्यादा सबल, सबसे ज्यादा व्यवस्थित और वही तुम्हारे भीतर शाश्वत है।

अहंकार तुम्हारे भीतर बहुत मजबूत मालूम होता है, बहुत व्यवस्थित मालूम होता है। अहंकार बहुत सुदृढ़ और सबल मालूम होता है। अहंकार बड़ा मर्यादा में जीता है, व्यवस्था में जीता है, नियम से जीता है; यम-नियम इत्यादि साधता है; त्याग-व्रत करता है; साधनाओं में उतरता है, तपश्चर्याएं करता है। ये सब अहंकार के ही खेल हैं। ये सब अकड़ें अहंकार की ही हैं। तरह-तरह की अकड़ें हैं उसकी। मदारी के खेल हैं उसके। धन की अकड़ उसकी, पद की अकड़ उसकी, तप की अकड़ उसकी, ज्ञान की अकड़ उसकी। जहां अकड़ है वहां अहंकार है।

प्रेम की कोई अकड़ नहीं होती। प्रेम में अकड़ होती ही नहीं। प्रेम सीधा-सादा प्रवाह है। लेकिन स्वच्छंद है, जैसा झरना मुक्त होता है, किन्हीं बंधी लकीरों पर नहीं चलता; जैसे नदियां मुक्त होती हैं। लेकिन बड़े हैरान होने वाली बात है कि स्वच्छंद बहती हुई नदियां भी सागर तक पहुंच जाती हैं। कोई नक्शे लेकर नहीं चलतीं, राह पूछती हुई नहीं चलतीं। हर जगह ठहर-ठहर कर पुलिसवालों से नहीं पूछतीं कि अब किधर जाना है। मील के पत्थर भी नहीं लगे हैं कि ठीक रास्ता यही है, सागर और पचास मील दूर है; कि अब एक मील और कम हो गया, कि अब एक मील और कम हो गया; कि तीर बता रहा है कि चले चलो, इसी तरफ सागर है। रेल की पटरियों की तरह भी नहीं है नदियों का मार्ग; जैसे मालगाड़ी के डब्बे दौड़ते रहते हैं, शंटिंग करते रहते हैं, उन्हीं पटरियों पर, जिंदगी भर।

तुम्हारी जिंदगी अगर अहंकार के ढंग से जीएगी, तो शंटिंग करती रहेगी। चौबीस घंटे वही ढर्रा है, वही छंद है, बंधा-बंधाया है; दूसरों का दिया हुआ है, स्वयं का नहीं है। दूसरे बताते हैं तुम्हें--क्या करो, क्या न करो; क्या उचित है, क्या अनुचित है।

प्रेम मुक्त है। प्रेम किसी की नहीं सुनता; अपनी सुनता है, अपनी गुनता है। प्रेम का अपना गीत है, क्यों किसी और का गीत गाए? और इसीलिए समाज प्रेम का दुश्मन है। समाज प्रेम का इस कारण दुश्मन है कि प्रेम स्वच्छंद है। और समाज को डर है कि कहीं स्वच्छंदता न फैल जाए, अराजकता न फैल जाए। समाज प्रेम की हत्या करता है और अहंकार को बल देता है, अहंकार को पोषण देता है। हम छोटे-छोटे बच्चों को सिखाना शुरू कर देते हैं, किस तरह महत्वाकांक्षी बनो। राष्ट्रपति बनना है तुम्हें! प्रधानमंत्री बनना है तुम्हें! सबसे ज्यादा धन तुम्हें कमाना है! सबसे आगे होना है, पीछे मत रह जाना! कुल की लज्जा रखना, वंश की प्रतिष्ठा बचाना! ये सब अहंकार की भाषाएं हैं। और इसी के लिए हमने स्कूल खोले हैं, कालेज बनाए हैं, विश्वविद्यालय बनाए हैं। ये सब अहंकार के प्रशिक्षण देने वाले आयोजन हैं।

इस सारे प्रशिक्षण में अगर प्रेम दब जाता हो, अख्तर, तो किसका कसूर है? प्रेम का तो कोई कसूर नहीं। हां, माना कि इक आग का दरिया है और डूब के जाना है। जरूर आग का दरिया है, अगर अहंकार है तुम्हारे भीतर तो फिर प्रेम आग का दरिया है--अहंकार के लिए, अहंकार के संदर्भ में। अहंकार को जलना होगा, राख होना होगा। और अगर तुम्हारे भीतर अहंकार नहीं है तो प्रेम अमृत है, कहां आग! शीतल है, यूं जैसे सुबह की ठंडी-ठंडी हवाओं के झोंके! यूं जैसे कि फूलों की पत्तियों पर जमी हुई सुबह की शीतल ओस, शबनम! यूं जैसे रात

तारों से झड़ती हुई शीतल आभा। यूं जैसे चांद की चांदनी। कहीं कोई आग नहीं, कहीं कोई अंगार नहीं। लेकिन अहंकार अगर है तो आग ही आग है प्रेम; अहंकार के लिए तो आग है।

वो करें भी तो किन अल्फाज में शिकवा तेरा
जिनको तेरी निगाहे-लुत्फ ने बरबाद किया
इसका रोना नहीं क्यूं तुमने किया दिल बरबाद
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया

जो जानेगा, वह तो अहंकार की मृत्यु पर उत्सव मनवाएगा। वह तो कहेगा--

इसका रोना नहीं क्यूं तुमने किया दिल बरबाद
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया
वो करें भी तो किन अल्फाज में शिकवा तेरा

और कोई शिकायत नहीं फिर। क्या शिकायत? क्या शिकवा? किससे शिकायत?

जिनको तेरी निगाहे-लुत्फ ने बरबाद किया

जो उस परम प्रीतम की आंख के इशारे पर मर गए, उसकी पलक झपते... ।

और याद रखना, भूल न जानाः मेरे लिए परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं है, प्रेम की अभिव्यक्ति है, प्रेम की पराकाष्ठा है।

वो करें भी तो किन अल्फाज में शिकवा तेरा
जिनको तेरी निगाहे-लुत्फ ने बरबाद किया
इसका रोना नहीं क्यूं तुमने किया दिल बरबाद
इसका गम है कि बहुत देर में बरबाद किया

मुद्दतें हो गई हैं चुप रहते
कोई सुनता तो हम भी कुछ कहते
जल गया खुश्क हो के दामने-दिल
अश्क आंखों से और क्या बहते
हमको जल्दी ने मौत की मारा
और जीते तो और गम सहते
मुद्दतें हो गई हैं चुप रहते
कोई सुनता तो हम भी कुछ कहते
मुद्दतें हो गई हैं चुप रहते

प्रेम सदा से चुप है। अहंकार खूब ढोल बजाता है, डुंडी पीटता है, बड़ा शोरगुल करता है। भीड़ जो इकट्ठी करनी है। तुम देखते हो, कोई मदारी खड़ा हो जाए बाजार में आकर। इधर डमरू बजाया उसने, इधर बंदर नचाया उसने, कि बस लोग आने लगे। दिशाओं-दिशाओं से लोग इकट्ठे होने लगते हैं। कोई हो मदारी, कोई हो बंदर, कोई डमरू बजाए, लोग इकट्ठे होने लगते हैं। शोरगुल भर करो, उछल-कूद भर मचाओ... ।

राजनीति इसी तरह का शोरगुल है--इसी तरह बंदरों का नचाना और डमरू का बजाना! और सब मदारी दिल्ली में इकट्ठे हो गए हैं। इसलिए तो आजकल जगह-जगह मदारी नहीं दिखाई पड़ते।

मैं जब छोटा था तो मेरे गांव में बहुत मदारी आते थे। फिर पता नहीं मदारी कहां चले गए! फिर मैं पूछने लगा कि मदारियों का क्या हुआ? मेरे गांव के बीच में ही बाजार है। उस बाजार में एक ही काम होता थाः सुबह-शाम डमरू बज जाता। मदारी आते ही रहते, भीड़ इकट्ठी होती रहती। वही बकवास--कि जमूरे, नाचेगा? और जमूरा कहता--नहीं। और मदारी कहता--लड्डू खिलाएंगे, नाचेगा? वह कहता--नहीं।

बर्फी खिलाएंगे, नाचेगा?

वह कहता--नहीं!

ऐसा मदारी कहता ही चला जाता। आखिर में वह उसको राजी कर लेता कि नाचेगा। बस इसी बीच डमरू बजता रहता, और जमूरे से पूछताछ चलती रहती और भीड़ इकट्ठी होती रहती। उस भीड़ में मैंने पढ़े-लिखे लोग देखे, दुकानदार देखे, डाक्टर देखे, वैद्य देखे, पंडित देखे, पुरोहित देखे। बच्चे इकट्ठे होते थे, यह तो ठीक था; मैंने बड़ों को भी इकट्ठे देखा।

फिर धीरे-धीरे मदारी नदारद हो गए। उन्नीस सौ सैंतालीस के बाद मदारियों का पता ही नहीं। सब बंदर, सब मदारी, सब डमरू दिल्ली चले गए। आते हैं पांच साल में, जब चुनाव का वक्त आता है, तब वे डमरू बजाते हैं--कि जमूरे, नाचेगा? जमूरा कहता है कि नहीं। नाचने का मतलब--वोट देगा? कि जमूरे, वोट देगा? जमूरा कहता है--नहीं। कि लड्डू खिलाएंगे, वोट देगा? नहीं। नगद रुपये लेगा। नगद नोट देख कर लेगा कि असली है कि नकली।

फिर पांच साल के लिए सब मदारी नदारद हो जाते हैं।

यह अहंकार बहुत शोरगुल मचाता है। अहंकार की बड़ी राजनीति है। असल में, अहंकार का फैलाव ही राजनीति है। और अहंकार का विसर्जन ही धर्म है।

नुक्ताचीं है गमे-दिल उसको सुनाए न बने
क्या बने बात जहां बात बनाए न बने
मैं बुलाता तो हूं उसको मगर जज्बए दिल
उस पे बन आए कुछ ऐसी कि बिन आए न बने
खेल समझा है कहीं छोड़ न दे, भूल न जाए
काश यूं भी हो कि बिन मेरे सताए न बने
गैर फिरता है लिए यूं तेरे खत को कि अगर
कोई पूछे कि ये क्या है तो छुपाए न बने
इस नजाकत का बुरा हो, वो भले हैं तो क्या
हाथ आएं तो उन्हें हाथ लगाए न बने
मौत की राह न देखूं कि बिन आए न रहे
तुमको चाहूं कि न आओ तो बुलाए न बने
बोझ वो सर से गिरा है कि उठाए न उठे
काम वो आन पड़ा है कि बनाए न बने
इश्क पर जोर नहीं है ये वो आतिश "गालिब"
कि लगाए न लगे और बुझाए न बने

प्रेम स्वच्छंदता है। न तो लगाए बनता है, न बुझाए बनता है। न किसी नियम को मानता है, न किसी व्यवस्था को मानता है। इसलिए समाज प्रेम से भयभीत है। इसलिए समाज प्रेम का दुश्मन है। इसलिए समाज ने सदा से प्रेम को नष्ट किया है। और उसकी जगह अहंकार को व्यवस्थित किया है। अगर तुम चाहते हो, अख्तर, कि प्रेम आसां हो जाए, तो समाज ने जो तुम्हारे साथ धोखा किया है, उस धोखे के बाहर आ जाओ। इस अहंकार को जाने दो। कठिन होगा, मुश्किल होगा। क्योंकि यही तुम्हारी प्रतिष्ठा है; यही तुम्हारा सम्मान है, सत्कार है। यही तुमने आज तक जाना है कि तुम हो। छोड़ोगे तो कठिन तो होगा। लेकिन अगर छोड़ पाओ तो जो मिलेगा वह अनंत गुना है। बूंद जाएगी और सागर पाओगे। क्षुद्र जाएगा और विराट पाओगे। अहंकार तो डूबेगा, अहंकार तो मिटेगा। लेकिन जो उभरेगा, जो बचेगा, इसके डूबने के बाद, वह जीवन की परम संपदा है। चाहे उसे प्रेम कहो, चाहे उसे परमात्मा कहो।

दोहरा दूं मैंः प्रेम कठिन नहीं है, अहंकार ने कठिनाई पैदा कर दी है। अहंकार को छोड़ने को जो राजी है, उसके लिए इस जगत में प्रेम से ज्यादा सरल और स्वाभाविक और स्वस्फूर्त और कोई अनुभव नहीं है। और मजा यह है कि अहंकार तुमने छोड़ा तो प्रेम ही संभव नहीं होता, प्रेम के साथ-साथ और भी असंभव बातें संभव हो

जाती हैं। ध्यान संभव हो जाता है। स्वतंत्रता संभव हो जाती है। शाश्वतता संभव हो जाती है। अमृत संभव हो जाता है।

प्रेम का द्वार क्या खुलता है, मंदिर खुल जाता है! मंदिर, जिसके अनंत आयाम हैं। और जो मंदिर में प्रविष्ट हुआ उसने ही जीवन के अर्थ को जाना, जीवन की गरिमा को पहचाना।

मैं तो दो ही शब्दों पर जोर देता हूंः प्रेम और ध्यान। क्योंकि मेरे लेखे अस्तित्व के मंदिर के दो ही विराट दरवाजे हैंः एक का नाम प्रेम, एक का नाम ध्यान। चाहो तो प्रेम से प्रवेश कर जाओ; चाहो तो ध्यान से प्रवेश कर जाओ। हालांकि दोनों में से प्रवेश की शर्त एक ही है। इसलिए तुम्हारी मौज। फासला कुछ भी नहीं है। शर्त एक ही हैः अहंकार दोनों में छोड़ना होता है। ध्यान में भी अहंकार को छोड़ना होता है, प्रेम में भी अहंकार को छोड़ना होता है। तो चाहो तो यूं कह लो कि एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक तरफ प्रेम, एक तरफ ध्यान।

और मेरे संन्यासियों को मेरी इतनी ही शिक्षा है कि प्रेम और ध्यान, ये दो तुम्हारे जीवन में सध जाएं। ध्यान तुम्हारा अंतस्तल बन जाए और प्रेम तुम्हारा व्यवहार। ध्यान तुम्हारी आत्मा बन जाए और प्रेम तुम्हारा आचरण। ध्यान तुम्हारा आंतरिक लोक और प्रेम तुम्हारा बहिर्जगत। ध्यान से तुम अपने में ठहर जाओ और प्रेम से तुम दूसरों को बांट दो वह सब जो अपने में ठहरने से मिलता है--कि जीवन धन्य हुआ! कि जीवन कृतार्थ हुआ!

दूसरा प्रश्नः ओशो,

दस-बारह दिन हुए, मेरे एक मित्र अपनी पत्नी और बेटी के साथ आश्रम आए। बहुत समय से यहां आने का आग्रह कर रहे थे। यहां पता चला कि स्वामी विनोद भारती हैं तो उनसे मिलने का तय हुआ। उनकी सोलह वर्षीय बेटी ने कहा--मैं भी चलूंगी। इस पर मेरे मित्र ने पूछा कि लड़की को ले चलने में कुछ खतरा तो नहीं है? क्योंकि यहां के सेक्स के संबंध में मैंने किस्से सुने हैं। अंततः लड़की को छोड़ कर हम लोग आश्रम आए। और लौट कर मित्र आनंदित नजर आए और उन्होंने कहा, यहां वैसा कुछ भी तो नहीं है जैसा सुना था।

कल ही एक सरदार जी और उनके तीन साथियों ने भी यही कहा कि यहां वैसा कुछ भी तो नहीं है, प्रवचन में तो सब लोग कपड़ों में थे।

ओशो, आश्रम के संबंध में ऐसा कुप्रचार क्यों है? इस कुप्रचार के कारण अनेक लोग आपके सत्य और प्रसाद से वंचित हो रहे हैं।

किशोर भारती,

पहली तो बात, मालूम होता है ये सरदार जी और उनके साथी वही होंगे, जिनकी मैंने अभी-अभी तुमसे चर्चा की। इन सरदारों से कहना, तुमने ठीक से नहीं देखा। अरे बड़ी गहरी आंख चाहिए! सब नंगे बैठे हैं, मगर कपड़ों के भीतर नंगे बैठे हैं।

अब सरदार जी हैं बेचारे, कपड़े ही देख कर रुक गए। और जरा भीतर जाना था, और जरा गहरा प्रवेश करते। जरा दृष्टि को और निखारते। जरा पार देखते। इसको कहते हैं दूर-दृष्टि। जरा ध्यानपूर्वक देखते तो सब नंगे बैठे नजर आते--सब तीर्थंकर। सब... । जैसे देखा न अभी बाहुबली का मस्तकाभिषेक होने जा रहा है। वे एक हजार साल से नंगे खड़े हैं। कोई एतराज ही नहीं कर रहा। यहां सब बाहुबली बैठे हुए हैं। कोई कपड़ा नहीं पहने हुए है।

किशोर भारती, अपने सरदार मित्रों को कहना कि भइया, थोड़ा सोच-समझ कर देखो। क्योंकि जिन लोगों ने खबरें छापी हैं अखबारों में, वे कुछ पागल हैं? यहां आकर देखते हैं कि सब लोग नंगे बैठे प्रवचन सुन रहे हैं। आंखें हैं उनके पास! सूक्ष्म दृष्टि जिसको कहते हैं, दिव्य दृष्टि। जैसे संजय के पास थी दिव्य दृष्टि कि दूर बैठा हुआ महाभारत का युद्ध देखता रहा। ऐसे ही ये पत्रकार हैं। संजय समझो कि प्रथम पत्रकार थे। वे भी पत्रकार ही थे। काम उनका यही था कि खबर सुना रहे थे वे। अंधे धृतराष्ट्र को खबर दे रहे थे कि महाभारत के

युद्ध में क्या हो रहा है। सैकड़ों मील दूर युद्ध हो रहा है। वहां कौन मारा जा रहा है, कौन शंख फूंक रहा है, कौन गदा उठा रहा है, किसने गांडीव छोड़ दिया। और कृष्ण गीता का पाठ पढ़ा रहे हैं।

कृष्ण ने भी गजब कर दिया। कोई शंख बजा रहा है, कोई डमरू ठोंक रहा है और उन्हें गीता की पड़ी है। उधर तालें ठोंकी जा रही हैं और गीता कहे चले जा रहे हैं।

मैं एक दफा जबलपुर में कृष्ण-जन्माष्टमी पर पंजाबियों की एक सभा में फंस गया। ऐसा आनंद मुझे कभी आया ही नहीं। क्या गजब की सभा थी! ज्यादातर तो स्त्रियां थीं। और सब सज-बज कर आई थीं। सबने सिल्क के वस्त्र धारण कर रखे थे। कृष्ण की जन्माष्टमी थी। तो सबने अपनी फरिएं निकाली थीं, और सलवारें और कुर्तियां! और क्या रसपूर्ण वातावरण था वहां! करीब दस हजार लोग इकट्ठे थे। मगर उनमें से अनेक--मैं बोलने गया था--अनेक तो मेरी तरफ पीठ ही किए बैठी थीं महिलाएं। एक-दूसरे से बातचीत में लगी थीं। कोई किसी के कपड़े का पोत देख रहीं, कोई किसी के कपड़े का दाम पूछ रहीं। और कितनी बातें थीं, जन्मों के बाद मिलना हुआ था। कोई का बच्चा हो गया था, किसी को कुछ हो गया था, किसी की पत्नी भाग गई, किसी का पति भाग गया, किसी का किसी से प्रेम हो गया। एक से एक चीजें चल रही थीं। अब यहां कौन कृष्ण की फिक्र करे!

मैंने संयोजकों से कहा कि भई, मैं यहां नहीं बोल सकूंगा।

उन्होंने कहा, क्यों?

मैंने कहा, मैं कोई योगेश्वर कृष्ण नहीं हूं।

उन्होंने कहा, हम आपका मतलब नहीं समझे।

मैंने कहा, वे योगेश्वर कृष्ण थे जो बोलते रहे महाभारत के युद्ध में। उन्होंने फिक्र ही न की, वे अपनी गीता ही रटते रहे। छोटी-मोटी गीता नहीं, अठारह अध्याय बक गए। और पहलवान जूझने के लिए तैयार खड़े हैं, शंख बजाए जा रहे हैं, घंटाल पीटे जा रहे हैं, मगर उनको फिक्र ही नहीं। अर्जुन निढाल होकर बैठा है, गांडीव हाथ से गिर गया है। वह कहता है कि मैं तो मुनि होने की तैयारी कर रहा हूं, जैन मुनि होना मुझे! मगर इन भैया को कुछ फिक्र ही नहीं। ये अपनी गीता ही ठोंके जा रहे हैं। और कितनी लंबी गीता! अठारह अध्याय कह गए। गजब के आदमी रहे! या तो बहरे रहे, या बिल्कुल पागल रहे।

मैंने कहा कि न मैं बहरा, न मैं पागल। इस तरह के योग वगैरह मैंने साधे नहीं। मैं कोई योगेश्वर कृष्ण नहीं। मुझे घर जाने दो। यहां कौरव-पांडव सब इकट्ठे हो गए हैं। और क्या गजब का रस चल रहा है! इनके रस में बाधा डालना भी तो उचित नहीं। बोल कर, और इनका जो संभाषण हो रहा है... । ऐसा शोरगुल मचा था वहां, बच्चे रो रहे हैं, स्त्रियां बच्चों की पिटाई कर रही हैं। और पुरुष भी घुसे बैठे हैं, धक्का-मुक्की कर रहे हैं वहीं। ऐसे स्थान पर पुरुष भी आ जाते हैं। बड़े धार्मिक भाव से आते हैं। जहां ऐसी रस की वर्षा हो रही हो!

मैंने उनसे कहा कि मैं व्यवधान खड़ा करूं, ऐसी दुष्ट मेरी प्रकृति नहीं।

वे बोले, आप कैसी बातें कर रहे हैं! आपको हम बामुश्किल तो ला पाए हैं, बामुश्किल तो राजी कर पाए हैं।

मैंने कहा कि मैं इसीलिए तो आने को राजी नहीं था, कि इस तरह मैं कोई महाभारत के युद्ध में गीता नहीं कह सकता हूं।

ये तुम जो अखबार वाले आते हैं यहां, इन्हें क्या-क्या दिखाई पड़ जाता है! संजय को, दूर से, इतना उपद्रव मचा हुआ है... छोटा-मोटा उपद्रव नहीं था वह, शास्त्रों के हिसाब से कोई सवा अरब आदमी इकट्ठे थे कुरुक्षेत्र के मैदान में। हालांकि बन नहीं सकते इतने आदमी वहां। सवा अरब तो क्या, सवा करोड़ भी नहीं बन सकते। मैदान मेरा देखा हुआ है। फुटबाल वगैरह का मैच हो, बस इतने के ही लायक है। कोई महाभारत का युद्ध हो सके ऐसा दिखता नहीं। मगर अब शास्त्रों का क्या कहना! वहां तो चिंदी का सांप बन जाता है। अठारह अक्षौहिणी सेनाएं खड़ी हुई थीं वहां। अठारह खिलाड़ी पर्याप्त होंगे। आखिर जगह भी चाहिए दौड़ने वगैरह को

कि नहीं? अठारह अक्षौहिणी सेनाएं होंगी तो इतने ही अक्षौहिणी घोड़े, हाथी, रथ। जगह कहां? हिलने-डुलने की जगह नहीं, युद्ध होगा क्या खाक! बस यही हो सकता था जो हुआ। जैसे कि अर्जुन तो बैठे थे रथ के भीतर और उनके सारथी बकवास कर रहे थे। उनके सारथी उनको ज्ञान समझा रहे थे। फंस गया होगा, ट्रैफिक में जाम हो गया होगा रथ। जगह कहां! सो ड्राइवर मालिक को डांट रहा है। मालिक इतना घबड़ा गया है कि कहता है कि मैं छोड़ कर ही चला। मगर ड्राइवर कहता है--निकलने न दूंगा। दरवाजा बंद किए हुए हूं। तुम जाते कहां? अरे बहादुर वीर पुरुष कहीं ऐसा करते हैं! ट्रैफिक तो ऐसा अटकता ही रहता है।

रथ हिलता नहीं होगा, चलता नहीं होगा। और अर्जुन भी जो नहीं भाग पाया, उसका कारण गीता नहीं; उसका कारण यही होगा, उसने देखा होगा कि भागूंगा भी तो भागूंगा कहां, जगह कहां! इस भीड़ में से निकलना मुश्किल है। इससे रथ में ही बैठे रहो, ठीक है; सुन लो, जो ये कहते हैं सुन लो; हां-हूं भरते रहो।

मेरे पिता को यह हां-हूं भरने का बड़ा कौशल था। मैं लाख उपाय करके भी नहीं सीख पाया। बचपन से ही देखता रहा। उनको बचपन से ही मालिश करवाने की आदत थी। और नाई तो तुम जानते ही हो, बेचारे करें भी क्या! मालिश जैसा काम करें तो कुछ तो उनको जगाए रखने को चाहिए। तो वे बातचीत करने में कुशल हो जाते हैं। नाई तो बहुत कुशल हो जाते हैं बातचीत करने में। इतने कुशल हो जाते हैं कि खतरा होता है उनसे। बाल वगैरह बनवाने जाओ, ज्यादा काट दें। अगर कोई राजनीति की बात छेड़ दो, गुस्सा आ जाए, मु.ंडाई कर दें।

रोज नाई उनका आता था। नाई भी अफीमची था। पीनक में ही रहता था। मुझे भी बिठाल देते थे वे उससे बाल बनवाने को। ऐसे सर्दी के दिनों में बाहर तखत डलवा कर, और उस पर बिठाल दें। और वह नाई आकर मेरे चारों तरफ अपना कपड़ा बांध दे, और नदारद! आधे मेरे बाल बना कर नदारद! अब मैं बैठा देख रहा हूं। अब वे जब आएं तब आएं। उनको खोजने भी कहां जाऊं! अब आधे बाल बने कहीं जाओ, जो मिले वही पूछे--क्या हुआ? कपड़ा ओढ़ा कर फंसा गया। और कपड़े पर सब बाल ही बाल। उनका कोई पता ही नहीं है।

नत्थू नाई उनका नाम था। पहुंचे हुए पुरुष थे! वे रोज रात उनके पैर दबाने आते, मालिश करते। और गजब की बात यह थी कि वे एक से एक कहानियां सुनाते। और ऐसी कहानियां, जिनको हजार दफे सुना चुके। वही कहानी, वही सुनाने वाला, वही सुनने वाले। मगर मेरे पिता बीच-बीच में नींद भी लेते रहते और हां-हूं भी भरते रहते। मतलब, मैंने नत्थू नाई को कई दफे कहा कि दादा, तुम नाहक सिर पचा रहे हो, वे सो रहे हैं! मगर वे बोले, सोते जरूर हैं, लेकिन वक्त पर हां भी भर देते हैं, ठीक जगह पर हूं भरते हैं।

मैंने कहा, वही कहानी है, वही तुम हो, वही वे हैं। जनम हो गया सुनते-सुनते। उनको भी अभ्यास हो गया है कि कब ठीक जगह आती है। वे नींद में भी ठीक जगह हूं भर देते हैं। और इस हूं की वजह से वह सुनाए चला जाए। क्योंकि जब वे हूं भर रहे हैं, मतलब जागे हुए हैं।

कृष्ण भी बोलते रहे और अर्जुन फंसा हुआ बैठा हां-हूं भी भरता रहा। करे भी क्या? आखिर में बोला कि मेरे सब संशय नष्ट हो गए भइया। जाने को जगह भी नहीं है, लड़ ही लो! जो करना है कर लो।

मगर उस पंजाबियों की सभा में मैंने कहा, अभी जगह निकल जाने की है। मैं तो चल ही पड़ा। मेरे पीछे संयोजक आए। मैंने कहा, तुम कितना ही आओ, तुम कितना ही समझाओ, मैं यहां रुकने वाला नहीं हूं। यह कोई जगह है जहां कोई अर्थ की बात कही जाए?

मैं यहां व्यर्थ के लोगों को इकट्ठा नहीं करना चाहता।

किशोर भारती, तुम पूछते हो कि "आश्रम के संबंध में ऐसा कुप्रचार क्यों है?"

मेरे ही कारण। मैं ही जिम्मेवार हूं। कोई और जिम्मेवार नहीं। यह कुप्रचार गलत लोगों को आने से रोक देता है। मैं भीड़-भाड़ यहां चाहता नहीं। यहां कोई महाभारत का युद्ध थोड़े ही करवाना है! यहां मैं उन्हीं को चाहता हूं जो सच में ही जीवन को रूपांतरित करने को आतुर हैं, अभीप्सु हैं।

और तुम कहते होः "इस कुप्रचार के कारण अनेक लोग आपके सत्य और प्रसाद से वंचित हो रहे हैं।"

नहीं, जिसको सत्य चाहिए, वह इस प्रचार-कुप्रचार की फिक्र नहीं करता, वह आ ही जाता है। आखिर तुम यहां कैसे आ गए? और लोग यहां कैसे आ गए? जिसको सत्य खोजना है, वह तो सब धुएं को पार करके आ जाएगा। और जिसको सत्य नहीं खोजना है, वह आ जाए तो धुआं खड़ा कर लेगा ताकि सत्य दिखाई न पड़े।

यह कुप्रचार मेरे काम आ रहा है। इससे मैं जरा भी चिंतित नहीं हूं। इससे मेरा काम सध रहा है। इससे बड़ा सुगम हो गया है काम। इससे व्यर्थ के कूड़ा-कर्कट लोग भीतर ही नहीं आ पाते। वे भागे ही रहते हैं, दूर ही रहते हैं।

और दूसरा भी एक फायदा हुआ है। जो तुम कहते हो कि तुम्हारे मित्र आए और अपनी लड़की को तक लाने में यहां डरे। और फिर आकर देखा जो उन्होंने तो कहा कि नहीं, जो मैंने सुना था वैसा तो नहीं है। वह जो सुना था उससे पृष्ठभूमि बन जाती है। उससे कोई नुकसान नहीं हो रहा है। मेरा अपना हिसाब है, मेरा अपना गणित है। मैं अपने धंधे को ठीक से समझता हूं।

यहां जो लोग सब तरह की गलत बातें सुन कर आते हैं वे एक पृष्ठभूमि बना कर आते हैं। कांटे ही कांटों की पृष्ठभूमि बना कर आते हैं। उस पृष्ठभूमि में, यहां अगर उन्हें एक फूल भी खिलता हुआ दिखाई पड़ जाता है तो तत्क्षण क्रांति घटित होती है। अगर वे कांटों की पृष्ठभूमि न लाते तो शायद फूल दिखाई भी न पड़ता। जैसे काले ब्लैकबोर्ड पर सफेद खड़िया से लिखते हैं न। काला ब्लैकबोर्ड जरूरी है, नहीं तो सफेद खड़िया की लिखावट दिखाई न पड़ेगी।

तो मैं एक काला ब्लैकबोर्ड अपने चारों तरफ खड़ा भी कर रहा हूं। मैं ही खड़ा कर रहा हूं। इसको मैं यूं बदल सकता हूं। दो दिन में बदल सकता हूं। इसमें कुछ मामला नहीं है। सुप्रचार करवाना हो तो मुझे कोई अड़चन है? अभी शुरू हो जाए। कुछ मुझे अड़चन नहीं है। बहुत आसान है। इससे ज्यादा आसान कोई चीज ही नहीं है। एक अनाथालय खोल दूं, एक अस्पताल खोल दूं, एकाध मरीज के पास बैठ कर पांव दबाने लगूं--इसमें कौन सी अड़चन है? खासकर जब फोटो उतर रही हो तब पांव दबा दूं। एक फावड़ा लेकर जमीन खोदने लगूं। झाड़ लगाने लगूं। खासकर जब फोटोग्राफर मौजूद हो, अखबारवाले आएं, तो एकदम वृक्षारोपण... । इसमें क्या मामला है? यह बहुत आसानी से हो सकता है। दरिद्रता की प्रशंसा करने लगूं। भारत के गुण-गौरव का विस्तार से उल्लेख करने लगूं। मुझे कुछ अड़चन तो नहीं है।

लेकिन तब, जो मैं कर रहा हूं, वह नहीं हो पाएगा। तब यहां भीड़-भड़क्का हो जाएगा। और उस भीड़-भड़क्के में मैं रह चुका हूं।

कल ही मुझे एक पत्र मिला। अखबार में छपा है। एक सज्जन ने लिखा है कि आप जब बंबई के क्रास मैदान में गीता पर प्रवचन देते थे तो कैसा महान कार्य कर रहे थे! वह आपने क्यों छोड़ दिया? और आप कहां की उपद्रव की बातें करने लगे? इससे नाहक आपकी बदनामी हो रही है। तब आपका कैसा सुनाम था!

तो अभी फिर गीता-ज्ञान-यज्ञ शुरू कर सकता हूं। इसमें क्या अड़चन है? मुझे कोई कठिनाई तो नहीं। बहुत आसान सा मामला है।

एक चित्रकार का बेटा अपने मित्र से कह रहा था कि मेरे पिता बड़े अदभुत चित्रकार हैं। कल एक चित्र बना रहे थे। और एक उदास आदमी की तस्वीर। मैंने उनसे कहा कि क्यों इतना उदास बनाया इसे? उन्होंने कहा, अच्छा ठीक। उठाई तूलिका और सिर्फ एक लकीर खींच दी उस आदमी के चेहरे पर। और उदास आदमी एकदम हंसने लगा! उदास आदमी को बस एक इशारे से हंसता हुआ बना दिया।

उस दूसरे बच्चे ने कहा, यह कुछ भी नहीं। अरे मेरी मां, मैं हंस रहा होऊं, एक चपत लगाती है और खेल खतम। मेरे पिताजी भी तो मुस्कुराते चले आते हैं घर में और जैसे ही मां को देखते हैं, चपत भी नहीं लगानी पड़ती, एकदम उदास हो जाते हैं। इसमें कौन सी खूबी की बात है? सिर्फ देखते ही से उदास हो जाते हैं। चारों खाने चित्त, होश-हवास गुम! बाहर रहते हैं तो सब ठीक-ठाक। उनकी अकड़ देखने लायक। सिंह की तरह

दहाड़ते हैं। और घर में आए कि बस ढेंचू-ढेंचू। पूंछ दबाए, अखबार के पीछे छिपे। मेरी मां की मौजूदगी काफी है। इसमें कौन सी खूबी की बात है?

यह कुछ अड़चन की बात नहीं है। भीड़ इकट्ठी करनी हो तो मैं बीस साल बहुत भीड़ में जीया हूं। ऐसी भीड़ में जीया हूं कि मैं अच्छी तरह जानता हूं, भीड़ को इकट्ठा करने में क्या दिक्कत है! थोड़ा सा डमरू बजाना पड़े, और बस भीड़ आ जाएगी।

मगर भीड़ को क्या करना है? भीड़ सत्य की खोजी नहीं है।

यह कुप्रचार अच्छा है। जो कर रहे हैं, उनको पता नहीं कि मेरी सेवा में लगे हैं। काश, उनको पता हो जाए! बताना मत, किसी को कहना मत! मैंने तुमसे राज की बात कह दी, इसका यह मतलब नहीं कि तुम हर किसी को कहते फिरो। संयम रखना। कुछ तो संयम सीखो! इसको तो अपने भीतर ही सम्हाल कर रखना। किसी को कहना ही मत। उनको कुप्रचार करने दो। और उनकी जितनी सहायता बन सके तुम किया करो, कि कुप्रचार होने दो।

इस कुप्रचार के दो परिणाम हो रहे हैं। एक तो यह परिणाम हो रहा है कि लोग सोचते हैं कि बात क्या है? एक आदमी के खिलाफ सारा देश अगर लगा हो तो कुछ न कुछ माजरा होना चाहिए। मामला क्या है?

तो जिनको उत्सुकता है, जिज्ञासा है, खोज है, वे चले आते हैं देखने--कि एक दफा तो देख लो जाकर कि बात क्या है। और एक दफा देख लेते हैं तो सारी बात बदल जाती है। और वह कुप्रचार काले तखते की तरह काम आ जाता है। उस पर जो देखते हैं वह सफेद खड़िया की तरह उभर आता है। जैसे रात के अंधेरे में तारे उभर कर दिख जाते हैं। दिन में नहीं दिखाई पड़ते। सुप्रचार में नहीं दिखाई पड़ेंगे। दिन की रोशनी में भी तारे तो वहीं हैं जहां रात को होते हैं। मगर दिन की रोशनी में दिखाई नहीं पड़ते, रात के अंधेरे में चमकते हैं। अमावस की रात तारों में जैसा निखार आता है वैसा किसी और रात को नहीं होता।

तो एक तो कुप्रचार का फायदा यह है कि उससे पृष्ठभूमि बन गई है, बन रही है।

दूसरा फायदा यह है कि जो गलत लोग हैं, जिनको मैं चाहता हूं कि यहां आएं ही न, उनके लिए रुकावट हो जाती है। जो ठीक लोग हैं वे जानने के लिए आना चाहते हैं--कि क्या बात है? और जो गलत लोग हैं वे प्रचार को मान कर ही रुक जाते हैं कि वहां जाकर क्या करना! वहां जाना ही नहीं। दोनों अर्थों में लाभ है।

मैं अपने धंधे को बहुत व्यवस्थित रूप से समझता हूं। भीड़ भी पहले मैंने इकट्ठी कर ली थी, उसका भी उपयोग था। शुरुआत में जरूरत थी। क्योंकि उसी भीड़ में से मुझे वे लोग चुनने थे जो सत्य के खोजी हैं। उनको मैंने चुन लिया। भीड़ को मैंने विदा कर दिया। विदा करने में मुझे देर नहीं लगती। बस तूलिका का जरा इशारा।

जैसे जैनियों की भीड़ मेरे पास थी। फिर उसमें से मुझे जिन-जिन को विदा करना था, उनको विदा करने में देर न लगी। हिंदुओं की भीड़ मेरे पास थी, उनको विदा करने में मुझे देर न लगी। गांधीवादियों की भीड़ मेरे पास थी, उनको विदा करने में मुझे देर न लगी। एक वक्तव्य दे दिया कि वे भाग खड़े हो जाते हैं। किसी को विदा करने में क्या देर लगती है?

इस तरह मैं छांटता रहा हूं। अब मैंने वे लोग बचा लिए हैं... सब घास-पात उखाड़ फेंकी है, अब सिर्फ गुलाब बचा लिए हैं। अब उन पर ही श्रम करना है। मेरा प्रत्येक संन्यासी बुद्धत्व को उपलब्ध हो सके, इस तरफ मेरी चेष्टा है। जिसने भी संन्यास की हिम्मत की है उसके लिए कम से कम इतना पुरस्कार तो मिल ही जाना चाहिए, कि उसके जीवन में बुद्धत्व का फूल खिल जाए। उसने अगर इतना समर्पण किया है तो इतनी भेंट पाने का वह हकदार हो गया है। अब यहां अगर भीड़ इकट्ठी कर लूं तो यह संभव नहीं हो सकेगा। यह महत कार्य असंभव हो जाएगा।

इसलिए किशोर भारती, चिंता न करो कुप्रचार की। वह मेरा ही करवाया हुआ है। और उसके लाभ हैं। और मैं उनके पूरे लाभ उठा रहा हूं। जो मेरे काम में लगे हैं, उन बेचारों को पता नहीं कि मेरी सेवा कर रहे हैं, मुफ्त नौकरी कर रहे हैं। कितने लोगों को मैंने लगा रखा है प्रचार में! मुझे गालियां देने के लिए कितने लोग मैंने

लगा रखे हैं, यह तुम देखते हो? न तनख्वाह देता उनको, जान-पहचान भी नहीं है, आमना-सामना भी कभी नहीं हुआ। और एक देश में ही नहीं, सारी दुनिया के कोने-कोने में लगा रखे हैं। ऐसा कोई देश नहीं है जहां मेरे आदमी न हों।

मेरे आदमी दो तरह के हैं। एक तो मेरे संन्यासी हैं, जो सत्य की शोध में लगे हैं। और एक मेरे विरोधी हैं, जो इनको सत्य की शोध में लगवा रहे हैं। कचरे को तो मैंने छांटा है।

गो जरा-सी बात पर बरसों के याराने गए
लेकिन इतना तो हुआ, कुछ लोग पहचाने गए

यूं मैंने बहुत गंवाए लोग, मगर इतना तो हुआ--कुछ लोग पहचाने गए। जो गंवाए वे कचरा थे। कौड़ियां तो फेंक दीं मैंने, हीरे बचा लिए।

गो जरा-सी बात पर बरसों के याराने गए
लेकिन इतना तो हुआ, कुछ लोग पहचाने गए
गर्मिए-महफिल फकत एक नारा-ए-मस्ताना है
और वो खुश हैं कि इस महफिल से दीवाने गए
मैं इसे शोहरत कहूं या अपनी रुसवाई कहूं
मुझसे पहले उस गली में मेरे अफसाने गए
यूं तो वो मेरी रगे-जां से भी थे नजदीकतर
आंसुओं की धुंध में लेकिन न पहचाने गए
वहशतें कुछ इस तरह अपना मुकद्दर हो गईं
हम जहां पहुंचे, हमारे साथ वीराने गए
अब भी उन यादों की खुशबू जेहन में महफूज है
बारहा हम जिनसे गुलजारों को महकाने गए
क्या कयामत है कि "खातिर" कुश्तए-शब भी थे हम
सुबह भी आई तो मुजरिम हम ही गर्दाने गए
गो जरा-सी बात पर बरसों के याराने गए
लेकिन इतना तो हुआ, कुछ लोग पहचाने गए

बहुतों से मेरी दोस्ती थी, बहुतों से मेरा याराना था, लाखों से मेरे संबंध थे। लेकिन जरा सी बात पर! और वह जरा सी बात के लिए वे जिम्मेवार नहीं, मैं ही जिम्मेवार। जब मैंने उन्हें विदा करना चाहा, जरा सी बात कह दी और विदा कर दिया। और इस ढंग से विदा कर दिया कि उन्हें यह भी अहसास न हुआ कि मैंने विदा किया है। वे यही समझ कर गए कि अपनी मर्जी से जा रहे हैं, मुझे छोड़ कर जा रहे हैं। मैंने उन्हें यह मजा भी लेने दिया कि वे अपनी मर्जी से मुझे छोड़ कर जा रहे हैं। असल में, मैंने उन्हें छोड़ दिया था। लेकिन वे मुझे न छोड़ पाते अगर मैं कुछ बात न कहता। कुछ बात मुझे कहनी जरूरी थी।

और जरा सी बात से लोग चले जाते हैं। जो जरा सी बात से चले जाते हैं वे सत्य की लंबी यात्रा पर चल न पाएंगे। वहां बहुत बातें होंगी। वहां तुम्हारी बहुत धारणाएं तोड़ी जाएंगी। वहां तुम्हारे बहुत से विश्वास खंडित किए जाएंगे। वहां तुमसे बहुत कुछ छीना जाएगा। जो जरा सी बातों में चले जाते हैं, वे उतनी लंबी यात्रा पर कैसे साथ दे सकेंगे?

अब तो मैंने उन लोगों को रोक रखा है, जो सब तरह से मेरे साथ चलने को राजी हैं--सब तरह से, हर तरह से। जो हटेंगे ही नहीं, चाहे मैं कुछ भी कहूं। चाहे मैं यूं कहूं, चाहे यूं कहूं। चाहे पक्ष में कहूं उनके, चाहे विपक्ष में कहूं उनके। जिन्होंने तय कर लिया है कि वे हटेंगे ही नहीं, बस अब उन्हीं के लिए हूं। और उन्हीं के लिए कुछ करने योग्य भी है।

बदनामी के लिए मैं ही जिम्मेवार हूं, कोई और नहीं।

ये न थी हमारी किस्मत कि विसाले-यार होता
अगर और जीते रहते, यही इंतजार होता
तेरे वादे पे जिए हम, तो ये जान झूठ जाना
कि खुशी से मर न जाते, अगर एतबार होता
कोई मेरे दिल से पूछे, तेरे तीरे-नीमकश
कोये खलिश कहां से होती, जो जिगर के पार होता
ये कहां की दोस्ती है कि बने हैं दोस्त नासेह
कोई चारासाज होता, कोई गमगुसार होता
रगे-संग से टपकता, वो लहू कि फिर न थमता
जिसे गम समझ रहे हो, ये अगर शरार होता
कहूं किससे मैं कि क्या है, शबे-गम बुरी बला है
मुझे क्या बुरा था मरना, अगर एक बार हो
ताये मसाइले-तसव्वुफ, ये तेरा बयान "गालिब"
तुझे हम वली समझते, जो न वादाख्वार होता

गालिब ने प्यारी बात कही। कहा कि यह तेरा सूफियाना ढंग, ये तेरी सूफियों जैसी बातें! ये मसाइले-तसव्वुफ। ये दर्शन की तेरी ऊंचाइयां, तसव्वुफ! प्रेम की ये तेरी ऊंचाइयां।

ये मसाइले-तसव्वुफ, ये तेरा बयान "गालिब"
और ये तेरे कहने का ढंग और ये तेरा बयान गालिब!
तुझे हम वली समझते...
हमने तुझे तीर्थंकर समझा होता। हम तुझे पैगंबर समझते।
... जो न वादाख्वार होता

बस शराबी था, इसलिए सब गड़बड़ हो गया।

मैं भी शराबी हूं। यह महफिल पियक्कड़ों की है। बदनामी के लिए जिम्मेवार मैं हूं।

ये मसाइले-तसव्वुफ, ये तेरा बयान "गालिब"तुझे हम वली समझते, जो न वादाख्वार होता

लोग तो तीर्थंकर समझते, कसूर मेरा है। लोग तो तीर्थंकर समझ ही रहे थे, कसूर मेरा है। मैंने ही भीड़ को इनकार कर दिया, क्योंकि भीड़ के साथ समय खराब करना था। जब तक जरूरत थी तब तक भीड़ को मैंने साथ रखा। अब कोई जरूरत नहीं है। अब तो सिर्फ उन थोड़े से लोगों की जरूरत है, जो तैयार हैं उस आग से गुजरने को जिसमें अहंकार जल जाता है और प्रेम का कमल खिलता है।

आज इतना ही।

दसवां प्रवचन

अपने ही प्राणों को पढ़ो

पहला प्रश्नः ओशो, जब-जब आया द्वार तिहारे, बस खाली हाथ चला। फूल न लगा एक हाथ भी, मन का माली साथ चला। तेरे दया भंडार में मेरे लिए ही कुछ कम है। हाथ पसारे दुआ मांगते अब मेरी आंखें नम हैं। अब तक न की दया मुझ पे, बस इतना सा गम है। दया के सागर से अपनी ले, खाली प्याली साथ चला। जब-जब आया द्वार तिहारे, बस खाली हाथ चला।

भगवानदास आर्य,

द्वार आना इतना आसान तो नहीं। और द्वार जो आ जाए, खाली हाथ जाता नहीं--जा सकता नहीं। तुम आए भी, गए भी; मगर न तो आए, न खुले। बंद-बंद, अपनी धारणाओं, अपने तथाकथित ज्ञान से इतने दबे हो कि मैं जो कहता हूं वह तुम्हें सुनाई भी नहीं पड़ता। तुम्हारे हाथ पहले ही इतने भरे हैं कि मैं जो भेंट दूं उसके लिए अवकाश भी नहीं है।

झेन फकीर रिंझाई के जीवन में यह प्यारा उल्लेख है कि एक बहुत बड़े पंडित ने, पहाड़ी चढ़ कर लंबी यात्रा की रिंझाई के झोपड़े तक। थक गया था, पसीने से चेहरा तमतमा रहा था, सांस भर आई थी, चढ़ाई बड़ी थी। और जब रिंझाई के झोपड़े में प्रविष्ट हुआ तो उसने पूछा, जानना चाहता हूं--ईश्वर है या नहीं? आत्मा है या नहीं? ध्यान क्या? समाधि क्या? बुद्धत्व की, संबोधि की घटना क्या? यूं प्रश्नों की कतार लगा दी।

रिंझाई ने प्रश्न सुने, थोड़ा हंसा और कहा कि थक गए हैं आप। थोड़ा विश्राम कर लें। मैं एक कप चाय बना लाऊं। चाय पी लें, फिर पीछे बातें हो लेंगी।

और रिंझाई ने चाय बनाई, चाय लेकर आया। हाथ में पंडित को प्याली दी और प्याली में चाय ढालनी शुरू की तो ढालता ही गया। प्याली पूरी भर गई। साथ की बसी भी भर गई। और अब और एक बूंद कि चाय फर्श पर गिरनी शुरू हो जाएगी--कि पंडित चिल्लाया, अब रुको भी, क्या पागल हो! मेरी प्याली में जगह तो जरा भी नहीं और तुम हो कि चाय ढाले ही चले जाते हो।

रिंझाई ने कहा, मैं तो सोचता था तुम निपट पंडित हो, लेकिन थोड़ी अक्ल तुम में भी है। इतना तुम भी समझ पाते हो कि प्याली अगर पूरी भरी हो तो उसमें एक बूंद चाय और नहीं डाली जा सकती। क्या मैं तुमसे पूछूं, तुम्हारे भीतर की प्याली खाली है जिसमें तुम ईश्वर को समा सकोगे? क्या तुम्हारे भीतर का आकाश तैयार है जहां बुद्धत्व के सूर्य को उगा सकोगे? क्या तुम्हारे भीतर जरा सी भी जगह है कि एक बूंद भी समाधि प्रवेश कर जाए? मैं देखता हूं तुम इतने कचरे से भरे हो, इतने ज्ञान--थोथे, उधार, बासे ज्ञान से। और सब बासा ज्ञान कचरा है, कि इस कचरे में कहां समाधि? कहां संबोधि? कहां बुद्धत्व? कैसा बुद्धत्व? मैं तुम्हें उत्तर दूं तो क्या दूं? उत्तर लेने वाला तैयार कहां है?

और यही मैं तुम्हारे संबंध में पाता हूं, भगवानदास आर्य। यह तुम्हारे नाम के पीछे लगी "आर्य" की पूंछ काफी खबर देती है, प्याली भरी है। यह क्या आर्य और अनार्य का झगड़ा बना रखा है? आर्य शब्द का अर्थ होता हैः श्रेष्ठ। यह अहंकार, यह अस्मिता, यह श्रेष्ठ होने का दंभ, इतना तुम्हें भरे हुए है कि मैं तो तैयार हूं सब देने को, मगर तुम लेने को तैयार कहां! हां, तुम वह लेना चाहते हो जो तुम्हारे पक्षपातों के अनुकूल हो, सत्य नहीं। तुम्हारे सिद्धांतों से जो मेल खाए। और तब अड़चन है। तब मुझसे मेल नहीं बैठेगा।

मैं किन्हीं सिद्धांतों का प्रतिपादक नहीं हूं। मैं किन्हीं शास्त्रों का समर्थक नहीं हूं। मैं किसी आर्य समाज, किसी सनातन धर्म, किसी हिंदू, किसी मुसलमान, किसी जैन का परिपोषक नहीं हूं। इस सारे कचरे को छांट देना होगा, विदा करना होगा इस "आर्य" को, तभी तुम भगवानदास हो सकोगे। यह "आर्य" रहा तो भगवानदास होना भ्रांति है, हो नहीं सकता। यह श्रेष्ठ होने का भाव, फिर कैसा समर्पण! फिर कैसी दासता!

और तुम कहते होः "जब-जब आया द्वार तिहारे... ।"

आए कहां? मेरे द्वार तो सिर्फ मेरे संन्यासी हैं। बाकी राहगीर हैं, रुक जाते हैं, दो क्षण कुतूहल, झांक कर देख लेते हैं, फिर आगे बढ़ जाते हैं। सिर्फ संन्यासी ही भीतर प्रविष्ट होता है। संन्यास का इतना ही अर्थ हैः अपने को खाली करने की तैयारी, ताकि मैं तुम्हें पुनः भर सकूं। और मैं किन्हीं सिद्धांतों या सूचनाओं से तुम्हें भरना नहीं चाहता। उससे भरना चाहता हूं जो तुम्हारा निज स्वभाव है। अभी बीज की तरह है, अगर घास-पात उखाड़ दिया जाए तो वही तुम्हारे भीतर गुलाब बन जाएगा। वही तुम्हारे भीतर सहस्रदल कमल बनेगा। तुमसे ही तुम्हें भरना चाहता हूं।

लेकिन तुम्हारे मोह हैं। तुम अपनी धारणाओं से ऐसे चिपटे हो कि रत्ती भर उन धारणाओं को छोड़ने की तुम्हारी तैयारी नहीं। हां, उनको बचा कर अगर कुछ मिल जाए तो तुम जरूर लेने को राजी हो। मगर उनको बचाने में ही मिलना असंभव है। तुम किन्हीं पंडितों के द्वार पर जाओ, वहां से शायद तुम्हें कुछ मिले; थोड़ा और कचरा बटोर लाओगे। यह किसी पंडित का द्वार नहीं है।

मंजिल से आगे भी कुछ और हैं राहों के निशां
राह के पहले भी, कुछ और राहे-मंजिल हैं
सीना-ए-साहिल पे हैं कुछ मौजे-तूफां के दस्तख्त
मौजों के दिल में भी छुपे हुए कुछ साहिल हैं
सम्हल-सम्हल के भी भटके यहां कई राह
बरबहक-बहक के भी पहुंचे हुए कुछ गाफिल हैं
बचाने में औरों को खुद खो गए कई रहनुमा
मिटा कर जिंदगी बख्शें, कुछ ऐसे कातिल हैं
जल-जल कर धुआं उगलें, कुछ ऐसे हैं चराग
अश्क पी-पी कर जलें, ऐसे भी शमा-ए-दिल हैं
मुश्किलें मुश्किलें हैं, मुश्किलों का क्या कहिए
मुश्किलें हो गईं आसान, ये क्या कम मुश्किल है

तुम्हारी तकलीफ यह है कि तुम ज्यादा समझदार, जरूरत से ज्यादा समझदार--और यह जगह है गाफिलों के लिए।

सम्हल-सम्हल के भी भटके यहां कई राह
बरबहक-बहक के भी पहुंचे हुए कुछ गाफिल हैं

तुम अपने को बचा रहे हो। और यहां मिटाने वाले पाते हैं।

बचाने में औरों को खुद खो गए कई रहनुमा
मिटा कर जिंदगी बख्शें, कुछ ऐसे कातिल हैं

तुम डूबना नहीं चाहते। तुम अपने को आनंद के उत्सव में खोना नहीं चाहते। अपने को बचा लेना चाहते हो। अपने को बचा कर तुम सत्य को पाना चाहते हो।

सीना-ए-साहिल पे हैं कुछ मौजे-तूफां के दस्तखत
मौजों के दिल में भी छुपे हुए कुछ साहिल हैं

कुछ मंजिलें ऐसी हैं कि केवल डूब कर ही पाई जाती हैं। पाकर नहीं पाई जातीं, खोकर पाई जाती हैं। और तुम्हारी खोने की बिल्कुल तैयारी नहीं है। तब मैं क्या करूं? खाली हाथ आओगे, खाली हाथ जाओगे।

कहते होः "जब-जब आया द्वार तिहारे, बस खाली हाथ चला।"

जिम्मेवारी तुम्हारी है और शिकायत तुम मुझसे कर रहे हो।

"फूल न लगा एक हाथ भी, मन का माली साथ चला।"

वही मन का माली तो तुम्हारी जान ले रहा है। वही मन तो फूलों को खिलने नहीं देता। मन तो दुश्मन है वसंत का। मन तो यूं समझो कि पतझड़ है; यूं समझो कि रेगिस्तान है। वहां कहां फूल हाथ लगेंगे? मगर तुम मन से बुरी तरह भरे हो। मन ही तो है ज्ञान। मन ही तो है सिद्धांत। मन ही तो है सारे प्रत्यय और धारणाएं। मन ही तो बनाता है हिंदू और मुसलमान और ईसाई। मन ने ही तो सारे उपद्रव खड़े किए हैं। और वह मन के माली को तुम अपना राहबर बनाए हुए हो। वह तुम्हारा मार्गद्रष्टा है। उसे तुम विदा करो! उसे तुम द्वार के बाहर छोड़ आओ, तो ही मेरे द्वार में प्रवेश कर सकोगे।

नजर में ढल के उभरते हैं दिल के अफसाने
ये और बात है, दुनिया नजर न पहचाने
वो बज्म देखी है मेरी निगाह ने कि जहां
बगैर शम्अ भी जलते रहे हैं परवाने
ये क्या बहार का जोबन, ये क्या नशात का रंग
फसुर्दा मयकदे वाले, उदास मयखाने
मेरे नदीम, तेरी चश्मे-इल्तिफात की खैर
बिगड़-बिगड़ के संवरते गए हैं अफसाने
ये किसकी चश्मे-फुसूंसाज का करिश्मा है
कि टूट कर भी सलामत हैं दिल के बुतखाने

मिटो, टूटो, तो भीतर की प्रतिमा प्रकट हो। जैसे कोई मूर्तिकार छैनी और हथौड़ी लेकर पत्थर को तोड़ता है, हजार चोटें करता है, चोटों पर चोटें करता है, तब कहीं बामुश्किल मूर्ति प्रकट हो पाती है। मूर्ति तो पत्थर में छिपी है, मौजूद है, कहीं से लानी नहीं है। सिर्फ मूर्ति के चारों तरफ जो व्यर्थ के आवरण हैं, जो असार इकट्ठा हो गया है, उसे जला कर राख कर देना है।

मैं तुम्हारे भीतर छिपे भगवान को प्रकट कर लूं, लेकिन यह तुम्हारा "आर्य" तो काटना पड़े। और तुम इस "आर्य" के मोह में इतने पड़े हो कि भगवान रहे कि जाए, मगर "आर्य" को बचाना है। वही तुम्हारी अड़चन है। इसलिए आते तो जरूर हो, मगर आ नहीं पाते। हां, पूना तक आ जाते हो, मुझ तक नहीं आ पाते। और पूना तक आ जाना मुझ तक आना नहीं है। इस आश्रम तक आ जाना भी मुझ तक आना नहीं है। यहां आकर भी तुम यूं बैठे रहते हो जैसे वर्षा होती हो और कोई घड़ा उलटा रखा रहे। वर्षा होगी और घड़ा खाली रहेगा। या अगर घड़ा सीधा भी रहे, तो खुद के कचरे से इतना भरा है कि वर्षा की एक बूंद भी उसमें प्रवेश न कर पाएगी।

कहते हो तुमः "तेरे दया भंडार में मेरे लिए ही कुछ कम है।"

किसी के लिए कम नहीं है। और मैं बेशर्त दे रहा हूं। मेरी कोई शर्त नहीं है। यह कोई सौदा नहीं है। यह केवल प्रेम का, यह केवल आनंद का सहज बहाव है। मेघ जब वर्षा के जल से भर जाएगा तो बरसेगा ही बरसेगा। और फूल जब सुगंध से भर जाएगा तो सुगंध उड़ेगी ही उड़ेगी। और दीया जब जलेगा तो रोशनी फैलेगी ही फैलेगी। सूरज निकलेगा तो सुबह होगी, पक्षी गीत गाएंगे, जीवन जागेगा। इसमें कुछ लेना-देना नहीं है। मैं कुछ दे नहीं रहा हूं। मैं बस हूं। अब यह सब तुम पर निर्भर है। फूल खिला है, लेकिन तुम्हारे नासापुट तो खुले होने चाहिए, तो ही सुगंध पहुंचे। यह रोशनी जली है, लेकिन तुममें आंख खोलने की जुर्रत भी नहीं। यह शमा मौजूद है, लेकिन परवाना कहां है, जो जल जाने को राजी हो, जो मिट जाने को राजी हो?

तुम आते हो और बचा-बचा कर चले भी जाते हो। अब इसमें कसूर किसका है?

शिकवा बेसूद, शिकायत से भला क्या हासिल

जिंदगी है तो बहरहाल बसर भी होगी
इसी उम्मीद पे मजलूम जिए जाता है
पर्दए-शब से नमूदार सहर भी होगी
चाहता हूं तेरा दीदार मयस्सर हो जाए
सोचता हूं कि मुझे ताबे-नजर भी होगी
यादे-अय्यामे-गुलिस्तां को भुला रक्खा था
क्या खबर थी ये खलिश बारे-जिगर भी होगी
हाय इन्सान, दरिंदों से हैं बढ़ कर वहशी
क्या किसी दौर में तकमीले-बशर भी होगी
मुतमइन हूं मैं बहुत चश्मे-तवज्जोह से तेरी
इक न इक रोज उधर से ये इधर भी होगी
आज तारीकिए-माहौल से दम घुटता है
कल खुदा चाहेगा "तालिब" तो सहर भी होगी

मगर कल पर भी क्यों टालते हो? खुदा पर भी क्यों टालते हो? सहर तो हो गई है, तुम आंख बंद किए बैठे हो।

शिकवा बेसूद, शिकायत से भला क्या हासिल

बंद करो शिकवा और शिकायत। यह आदत भली नहीं। लूट सको तो लूटो। न लूट सको तो अपना सिर पीटो।

शिकवा बेसूद, शिकायत से भला क्या हासिल
जिंदगी है तो बहरहाल बसर भी होगी

भगवानदास आर्य, यूं ही जिंदगी गुजारनी हो जैसी अब तक गुजारी है, तो बसर भी हो जाएगी। जन्म भी हुआ, मौत भी हो जाएगी। चार दिन हैं, कुछ बहुत लंबे नहीं। आर्य ही रहना है तो ढोओ बोझ।

कुल लोगों को बोझ से ऐसा मोह होता है कि मैंने सुना है, एक भिखारी अपने चीथड़ों की गठरी को सिर पर रखे हुए राह से चल रहा था, कि सम्राट का स्वर्ण-रथ पास से गुजरा। कोई और तो था नहीं राह पर, जंगल की राह थी, सम्राट शिकार करके लौटता था। यूं तो बाजार होता, राजपथ होता, भीड़-भाड़ होती, तो शायद भिखारी पर नजर भी न जाती। लेकिन बूढ़ा भिखारी, गठरी सिर पर लादे, लाठी से टेकता-टेकता चलता है। सम्राट ने अपने सारथी को कहा, रुक! भिखारी से कहा, बाबा, तू रथ में बैठ जा। तुझे कहां उतरना है, हम उतार देंगे। तू बोल तुझे कहां जाना है, हम छोड़ देंगे।

भिखारी झिझका, ठिठका। स्वर्ण-रथ और मैं भिखारी! बोला, नहीं-नहीं। आप भी कैसी बातें करते हैं! कभी नहीं, कभी नहीं!

सम्राट ने कहा, तू पागल है! मैं निमंत्रण देता हूं, बैठ!

मगर भिखारी ने कहा, मुझे क्षमा करो। मैं गरीब आदमी। यह स्वर्ण-रथ! सोने पर पैर रखना पाप।

सम्राट को हंसी आ गई। उसने कहा, फिर मैं आज्ञा देता हूं। निमंत्रण तू नहीं मानेगा तो आज्ञा देता हूं कि बैठ!

आज्ञा को भिखारी समझा, वह उसकी भाषा थी। जल्दी से बैठ गया। फिर भी भिखारी भिखारी है। ढंग, पुरानी आदतें, बामुश्किल छूटते हैं। गठरी अभी भी सिर पर ही रखे हुए है।

सम्राट ने कहा, तू होश में है या पागल है? अब गठरी तो नीचे रख दे नासमझ!

भिखारी कहने लगा, नहीं-नहीं। इतनी कृपा की, यही क्या कम है कि मुझे बिठा लिया! अब अपनी गठरी का बोझ भी तुम्हारे रथ पर डालूं! यह मुझसे न हो सकेगा। अब तो तुम आज्ञा भी दो, तो भी मैं न मानूंगा। इतना

कृतघ्न मैं नहीं हूं। मुझे बिठा लिया, यही क्या कम है! गठरी तो मैं अपने सिर पर ही रखूंगा। तुम्हारे रथ पर इतना बोझ और कैसे डालूं?

अब इस भिखारी का गणित देखते हो! खुद बैठा है, गठरी सिर पर रखे है, बोझ तो रथ पर पड़ ही रहा है। मगर वह गठरी को सिर से नीचे नहीं रखना चाहता। चीथड़े ही हैं उस गठरी में। टूटे-फूटे बर्तन होंगे कुछ।

भगवानदास आर्य, क्या है तुम्हारे पास जिसे छोड़ने में इतनी अड़चन हो रही है? और मैं तो निमंत्रण ही दे सकता हूं, आज्ञा नहीं दे सकता। मैं तो बुलावा ही भेज सकता हूं, प्रेम-पाती लिख सकता हूं कि आ जाओ, बैठ जाओ मेरे रथ पर!

मगर तुम कहते हो, नहीं-नहीं! यह कैसे हो सकता है! मैं भगवानदास आर्य, और यह आपका रथ। इसमें हिंदू बैठे, मुसलमान बैठे, ईसाई बैठे, जैन बैठे, बौद्ध बैठे, यहूदी बैठे, सिक्ख बैठे। इसमें तरह-तरह के लोग बैठे हैं, मैं कैसे बैठ सकता हूं? और फिर मेरी यह गठरी--यह सत्यार्थ प्रकाश, जिसको सिर पर रखे बैठा हूं। और सत्यार्थ प्रकाश के ऊपर बैठे हैं महर्षि दयानंद। वजन भारी है।

महर्षि दयानंद के चित्र वगैरह देखे? क्या घुटा हुआ सिर! क्या तोंद! क्या जम कर बैठे हैं! और सत्यार्थ प्रकाश जैसी कचरा किताब। बहुत किताबें हैं, मगर सत्यार्थ प्रकाश जैसी कचरा किताब मैंने नहीं देखी। बहुत कचरा किताबें हैं। जब भी मैं कभी गीता में कृष्ण के उस वचन को पढ़ा हूं जिसमें कृष्ण अपनी स्तुति में कुछ अदभुत बातें कहते हैं--कि मैं हाथियों में ऐरावत! गऊओं में कामधेनु! इत्यादि-इत्यादि, वहां हमेशा मुझे ख्याल आ जाता है कि कुछ और बातें जोड़ देते; जैसे कचरा किताबों में सत्यार्थ प्रकाश! या शीतल पेयों में कोकाकोला! या बाबाओं में गोबरपुरी के गणेश मुक्तानंद! ऐसे कुछ सुंदर वचन और जोड़ देते। कहां का पुराना दकियानूसी ऐरावत हाथियों में, और कहां की कामधेनु गऊ।

तुम्हारे ऊपर बहुत बोझ है। दयानंद तुम्हें दबाए डाल रहे हैं। ऐसे चढ़ कर बैठते हैं कि जिस पर बैठ जाते हैं उतरते नहीं। एक तो गलत आदमी ही उन्हें बैठने देते हैं। समझदार तो फौरन कहता है, आगे बढ़ो! यहां कहां घुसे आ रहे हो? क्योंकि दयानंद की बातों में सिवाय बकवास के और कुछ भी नहीं। कोई न तो आत्म-अनुभव है, न कोई समाधि है। तर्कजाल है। और वह भी ओछा, टुच्चा, दो कौड़ी का। इस सब बोझ को लेकर तुम आ जाते हो, इसलिए तकलीफ हुई जा रही है। आते हो जरूर, क्योंकि वह बोझ तृप्ति भी नहीं देता। आना तुम्हें पड़ता है। महीने, दो महीने में तुम फिर हाजिर हो जाते हो। आना भी पड़ेगा। क्योंकि जो बोझ तुम ढो रहे हो, उससे कुछ तृप्ति नहीं है, कोई संतोष नहीं है, कोई पोषण नहीं है।

इसी उम्मीद पे मजलूम जिए जाता है
पर्दए-शब से नमूदार सहर भी होगी
कभी न कभी रात का पर्दा उठेगा। सुबह भी प्रकट होगी, कभी न कभी।

मगर कभी पर क्यों टालते हो जो अभी हो सकता हो? और कभी का क्या भरोसा है? चाहते तो हो तुम...

चाहता हूं तेरा दीदार मयस्सर हो जाए
चाहते तो हो कि दर्शन मिल जाए, कि सत्य की अनुभूति हो जाए, कि परमात्मा का साक्षात्कार हो जाए।
चाहता हूं तेरा दीदार मयस्सर हो जाए
सोचता हूं कि मुझे ताबे-नजर भी होगी
कि मुझमें देखने की शक्ति भी होगी, ऐसा सोचता हूं।

है! सोचने का सवाल नहीं। लेकिन देखने की शक्ति काफी नहीं है; क्योंकि कोई अपनी आंख बंद रख सकता है। देखने की शक्ति तो पड़ी है भीतर। मगर आंख बंद हो तो जरा सी पलकें पर्याप्त हैं, परमात्मा भी सामने खड़ा रहे तो दिखाई नहीं पड़ेगा।

और मैं तुमसे कहता हूं, परमात्मा सदा सामने खड़ा है। मगर दिखाई नहीं पड़ता, क्योंकि किसी की आंख पर काबा का पत्थर रखा है, किसी की आंख पर वेद रखे हुए हैं, किसी आंख पर तीर्थंकर बैठे हुए हैं, किसी आंख पर बुद्ध सवार हैं। हर आंख भरी है, हर आंख में कचरा है। आंख खाली होनी चाहिए, निर्दोष होनी चाहिए। आंख छोटे बच्चे की भांति होनी चाहिए। फिर तुम खाली हाथ नहीं जा सकोगे।

तुम कहते होः "हाथ पसारे दुआ मांगते... ।"

तुम कह गए। शायद तुमने सोचा भी नहीं कि क्या कह रहे हो। न तो तुमने कभी हाथ पसारा है और न कभी दुआ मांगी है। क्योंकि जो हाथ पसारेगा वह संन्यासी हो जाएगा। जो दुआ मांगेगा वह संन्यासी हो जाएगा।

गौतम बुद्ध ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद घर वापस लौटे। बारह साल बाद वापस लौटे। जिस दिन घर छोड़ा था, उनका बच्चा, उनका बेटा एक ही दिन का था, राहुल एक ही दिन का था। जब आए तो वह बारह वर्ष का हो चुका था। और बुद्ध की पत्नी यशोधरा बहुत नाराज थी, स्वभावतः। और उसने एक बहुत महत्वपूर्ण सवाल पूछा। उसने पूछा कि मैं इतना ही जानना चाहती हूंः क्या तुम्हें मेरा इतना भी भरोसा न था कि मुझसे कह देते कि मैं जा रहा हूं? क्या तुम सोचते हो मैं तुम्हें रोकती? मैं भी क्षत्राणी हूं। अगर हम युद्ध के मैदान पर तिलक और टीका लगा कर तुम्हें भेज सकते हैं, तो सत्य की खोज पर नहीं भेज सकते? तुमने मेरा अपमान किया, बुरा अपमान किया। जाकर किया अपमान, ऐसा नहीं। तुमने पूछा क्यों नहीं? तुम कह तो देते कि मैं जा रहा हूं। एक मौका तो मुझे देते। देख तो लेते कि मैं रोती हूं, चिल्लाती हूं, रुकावट डालती हूं?

कहते हैं, बुद्ध से बहुत लोगों ने बहुत तरह के प्रश्न पूछे होंगे। मगर जिंदगी में एक मौका था जब वे चुप रह गए, जवाब न दे पाए। और यशोधरा ने एक के बाद एक तीर चलाए। और यशोधरा ने कहा कि मैं तुमसे दूसरी यह बात पूछती हूं कि जो तुमने जंगल में जाकर पाया, क्या तुम छाती पर हाथ रख कर कह सकते हो कि वह यहीं नहीं मिल सकता था?

यह भी बुद्ध कैसे कहें कि यहीं नहीं मिल सकता था। क्योंकि सत्य तो सभी जगह है। जंगल में मिल सकता है, तो बाजार में मिल सकता है। यह और बात है कि बाजार में जो है वह सोचता हो कि नहीं मिल सकता। मगर मिल जाने के बाद तो कोई कैसे कहेगा कि बाजार में नहीं मिल सकता? वह तो सब जगह है। फिर आंखें झुक गईं।

और तीसरी बात उसने बड़ी गहरी चोट की की, मगर उस चोट में ही यशोधरा उलझ गई। तीसरी बात उसने की, राहुल को सामने किया और कहा कि ये तेरे पिता हैं। ये देख, ये जो भिखारी की तरह खड़े हैं हाथ में भिक्षापात्र लिए, यही तेरे पिता हैं। ये तुझे छोड़ कर भाग गए थे जब तू एक ही दिन का था, अभी पैदा ही हुआ था। अब ये लौटे हैं, फिर पता नहीं कब मिलना हो या न हो। इनसे तू अपनी वसीयत मांग ले। तेरे लिए क्या इनके पास देने को है, वह मांग ले।

यह बड़ी गहरी चोट थी। बुद्ध के पास देने को था क्या? यशोधरा प्रतिशोध ले रही थी बारह वर्षों का। लेकिन उसने कभी सोचा भी न था कि यह घटना यूं रुख ले लेगी, यह बात यूं बदल जाएगी। भगवानदास आर्य ने भी पूछते वक्त नहीं सोचा होगा कि बात यूं रुख ले लेगी।

बुद्ध ने तत्क्षण अपना भिक्षापात्र राहुल को दे दिया और कहा कि बेटे, मेरे पास कुछ और देने को नहीं। लेकिन जो मैंने पाया है वह तुझे दूंगा। तू संन्यस्त हो जा।

बारह वर्ष के बेटे को संन्यस्त कर दिया! यशोधरा की आंखों से झर-झर आंसू गिरने लगे। उसने कहा, यह आप क्या करते हैं!

पर बुद्ध ने कहा, जो मेरी संपदा है वही तो दे सकता हूं। समाधि मेरी संपदा है, और उसको बांटने का ढंग संन्यास है। और यशोधरा, जो बीत गई बात उसे बिसार दे। आया ही इसलिए हूं कि तुझे भी ले जाऊं। अब राहुल तो गया, तू भी चल। जिस संपदा का मैं मालिक हुआ हूं, उसकी तू भी मालिक हो जा।

और सच में ही यशोधरा ने सिद्ध किया कि वह क्षत्राणी थी। तत्क्षण पैरों पर झुक गई और उसने कहा, मुझे दीक्षा दें। और दीक्षा लेकर भिक्षुओं में, संन्यासियों में यूं खो गई कि फिर उसका कोई उल्लेख नहीं आता। उल्लेख ही नहीं आता! कभी उसने संन्यासियों में इस तरह की अस्मिता प्रकट नहीं की कि मैं बुद्ध की पत्नी हूं, कि मैं विशिष्ट हूं, कि मैं खास हूं। वह यूं खो गई कि बौद्ध शास्त्रों में इस घटना के बाद उसका फिर कोई उल्लेख नहीं आता। कैसे जीयी, कैसे मरी; कब तक जीयी, कब मरी; कुछ पता नहीं चलता। वह सारे संन्यासियों की भीड़ में चुपचाप एक हो गई, यूं लीन हो गई, यूं डूब गई। इसको आना कहते हैं, भगवानदास आर्य!

तुम कहते होः "हाथ पसारे दुआ मांगते... ।"

हाथ पसारो, और देखो मैं क्या देता हूं! वही दे सकता हूं जो मेरे पास है। जो मैंने पाया वही दे सकता हूं। और यह कुछ ऐसा है कि जितना दो उतना बढ़ता है। दुआ मांगो, खाली नहीं जा सकोगे।

कहते हो तुमः "हाथ पसारे दुआ मांगते अब मेरी आंखें नम हैं।"

झूठी बातें न कहो। अगर आंखें नम हो जाएं तो फिर इस महफिल से उठने की कहां गुंजाइश? फिर इस मैकदे को छोड़ कर जाने का कहां सवाल?

कहते होः "अब तक न की दया मुझ पे, बस इतना सा गम है।

दया के सागर से अपनी ले, खाली प्याली साथ चला।

जब- जब आया द्वार तिहारे, बस खाली हाथ चला।"

किस खाली प्याली की बात कर रहे हो? खाली ही प्याली हो तो मैं भर न दूं? प्याली तो तुम्हारी भरी हुई है। और प्याली हजार शर्तें रखती है कि इस तरह भरो तो ही भरूंगी--मेरे अनुकूल, मेरे अनुसार। और तब मैं मजबूर हूं। मैं तुम्हारे अनुसार न तो तुम्हें कुछ दे सकता हूं, न तुम्हारे अनुसार चल सकता हूं।

लेकिन साधारणतः यही होता है। जिनको तुम नेता कहते हो, वे अपने अनुयायियों के भी अनुयायी होते हैं। और जिनको तुम साधु कहते हो, वे अपने भक्तों के भी भक्त होते हैं। तुम्हारे साधु तुम्हारी मान कर चलते हैं। तुम्हारे मुनि तुम्हारी मान कर चलते हैं।

एक तेरापंथी जैन मुनि कोई दस वर्ष पहले मुझसे मिलने आए थे। मैंने उनसे पूछा कि यह मुंह-पट्टी? फेंको-फांको!

वे कहने लगे कि जानता तो मैं भी हूं कि बेकार है, मगर मेरे श्रावकों का क्या होगा? श्रावक यानी मेरे अनुयायियों का क्या होगा? वे बड़े नाराज होंगे। और उन्होंने मुझे पहले ही चेताया था कि आप वहां जा रहे हो, कुछ गड़बड़ करके न आ जाना। पहले तो मुझे रोका उन्होंने आने से। बामुश्किल तो आ पाया हूं। और आपने आते से ही यह बात मुंह-पट्टी की छेड़ दी। जानता तो मैं भी हूं कि इस मुंह-पट्टी में क्या रखा है! मगर मेरे श्रावक इसी मुंह-पट्टी के कारण तो मुझे साधु मानते हैं। यह मुंह-पट्टी गई कि मेरी साधुता गई। और अब इस उम्र में, साठ साल का हो गया, अब कहां जाऊं, क्या करूं? यह मुंह-पट्टी है तो लोग चिंता करते हैं, सेवा करते हैं, ध्यान रखते हैं। मुंह-पट्टी गई तो सब गया। यह मेरी दुकान है। और मेरे श्रावक तत्क्षण मेरे दुश्मन हो जाएंगे।

न मालूम कितने साधुओं के पत्र मुझे मिलते हैं, साध्वियों के पत्र मिलते हैं, कि हम आपकी बातें पढ़ते हैं, समझते हैं, समझ भी पाते हैं; मगर अड़चन यह है कि हमारे आस-पास जो समूह है हमारे मानने वालों का, उसके सामने हम घोषणा नहीं कर सकते। उसके सामने हम दिखा भी नहीं सकते।

मजा है यह कि मुझे गालियां देते हैं उस समूह के सामने। और एकांत में किताबें पढ़ते हैं और मुझे पत्र भी लिखते हैं। अभी कुछ दिन पहले दिगंबरों के एक बहुत बड़े ज्ञानी--तथाकथित ज्ञानी--कानजी स्वामी की मृत्यु

हुई। मेरे एक संन्यासी स्वराज्यानंद उनसे मिलने गए थे। मेरे संन्यासी को देख कर कई लोग यूं भड़क जाते हैं कि जैसे मौत आ गई। बस स्वराज्यानंद को देखा कि एकदम भड़क गए। और कहा कि तुम भी इस चक्कर में पड़ गए!

पुराने परिचित थे उनके। पहले भी जाते थे; जब संन्यासी नहीं थे तब भी जाते थे।

तुम भी इस चक्कर में पड़ गए! इस आदमी की किताबों से बचना! इस आदमी की किताबें जहर हैं! इसकी बातों से बचना। यह तुम्हें डुबा लेगा। यह तुम्हें भ्रष्ट कर देगा।

स्वराज्यानंद ने गौर से देखा कि वे जो किताब पढ़ रहे थे वह मेरी किताब थी। कानजी स्वामी मेरी एक छोटी सी किताब "अहिंसा-दर्शन" कुंदकुंद के बड़े शास्त्र में छिपाए हुए रखे थे। मगर स्वराज्यानंद पहचान गए कि किताब तो भीतर जो है वह मेरी है। उन्होंने कहा कि जरा मैं यह किताब देखूं!

कानजी स्वामी बहुत बेचैन हुए। उन्होंने कहा कि मैं जरा देख रहा था कि यह आदमी किस तरह लोगों को भ्रष्ट करता है।

फिर स्वराज्यानंद ने पता लगाया तो पता चला कि वे एक-एक किताब पढ़ते हैं, टेप भी सुनते हैं। और दूसरों को समझा रहे हैं कि किताब पढ़ना मत। मजबूरी है।

तुम न तो अभी हाथ पसारे हो, न तुमने प्रार्थना की है, न तुम्हारी आंखें अभी गीली हैं, न तुम्हारी प्याली खाली है। काश! तुम इतना कर सको कि प्याली खाली हो, आंखें गीली हों और हाथ तुम पसारो, दुआ तुम मांगो! फिर खाली हाथ जा सकते हो? असंभव! एकदम असंभव! तुम भर कर जाओगे। मधुमास से भर कर जाओगे। संगीत से भर कर जाओगे। आनंद और उत्सव से भर कर जाओगे। मगर उसके पहले कुछ तो करना होगा।

और देर न करो। यूं भी तुमने बहुत देर कर दी है।

मिट गया जब मिटने वाला, फिर सलाम आया तो क्या
दिल की बरबादी के बाद उनका पयाम आया तो क्या
छूट गईं नब्जें, उम्मीदें देने वाली हैं जवाब
अब उधर से नामाबर ले के पयाम आया तो क्या
आज ही मिटना था ऐ दिल, हसरते-दीदार में
तू मेरी नाकामियों के बाद काम आया तो क्या
काश अपनी जिंदगी में हम ये मंजर देखते
अब सरे-तुर्बत कोई मशहर-खिराम आया तो क्या
सांस उखड़ी, आस टूटी, छा गया जब रंगे-यासना
माबर लाया तो क्या, खत मेरे नाम आया तो क्या
मिल गया वो खाक में, जिस दिल में था अर्मानि-दीद
अब कोई खुर्शीद-वश बालाए-बाम आया तो क्य
ामिट गया जब मिटने वाला, फिर सलाम आया तो क्या

और मिटने की कौन कहे? कल का भरोसा नहीं। अगले क्षण का भरोसा नहीं। तुम आते हो बार-बार, जाते हो, प्रश्न भी पूछते हो। लेकिन पुराने आग्रह, पुरानी आदतें, पुराने संस्कार नहीं छोड़ पा रहे हो। अगर तुम्हें उन संस्कारों से आनंद मिल रहा है तो यहां मत आओ। अगर उन पुराने संस्कारों से तुम्हें कुछ भी नहीं मिल रहा है तो उन्हें छोड़ो और यहां आओ। मगर कुछ तय करो। ऐसे तो न घर के रहोगे न घाट के रहोगे, धोबी के गधे हो जाओगे। मेरी बातें सुनोगे तो पुरानी बातों से भरोसा हट जाएगा। फिर अगर उनको छोड़ा नहीं तो बहुत मुश्किल में पड़ोगे। जब तक भरोसा था, तब तक कम से कम इतना तो था कि जो ढो रहे हैं वह सोना है। अब जब भरोसा न रहेगा तो पत्थर ढो रहे हो। जानते हो कि सोना नहीं है, मगर ढोना भी नहीं छूटता।

दो साधु एक जंगल से गुजरते थे--गुरु और शिष्य। बार-बार बूढ़ा गुरु अपने शिष्य से पूछता था--क्योंकि सांझ होने लगी, सूरज ढलने लगा--गांव कितनी दूर है? गांव कितनी दूर है? गांव कितनी दूर है?

युवक ने कहा कि आज तक कभी आपने इस तरह उत्सुकता नहीं दिखाई। जंगल पड़ा तो हम जंगल में ठहर गए, गांव आ गया तो गांव में ठहर गए। आप तेजी से भी चल रहे हो, जल्दबाजी भी कर रहे हो। और भी मैं एक काम देख रहा हूं जो आप बार-बार कर रहे हो, अपने झोले में हाथ डाल-डाल कर देखते हो। माजरा क्या है? मामला क्या है? राज क्या है?

गुरु ने कहा, तू इन बातों में मत पड़। समय न गंवा, जल्दी चल, हमें गांव पहुंचना है, जंगल में ठहरना खतरनाक है।

तभी कुआं आया; दोनों हाथ-मुंह धोने, पानी पीने को रुके। गुरु ने अपना झोला शिष्य को दिया और कहा कि सम्हाल कर रखना, होशियारी से रखना।

शिष्य को मौका मिला। झोले में हाथ डाल कर देखा, दो सोने की ईंटें थीं। सब राज खुल गया। इन्हीं ईंटों की वजह से आज चिंता है, आज परेशानी है। अब तक कभी न थी। गांव पहुंचने की जल्दी है, जंगल में कहीं ठहरना न पड़े। घबड़ाहट है। गुरु तो पानी खींच रहा था कुएं से, हाथ-मुंह धो रहा था, जल्दी-जल्दी में था; शिष्य ने दोनों ईंटें निकाल कर जंगल में फेंक दीं। उनकी जगह दो पत्थर के टुकड़े, उसी वजन के करीब-करीब, झोले के भीतर डाल दिए।

गुरु ने जल्दी से हाथ-मुंह धोकर... बड़ी जल्दी-जल्दी किया। क्योंकि सूरज ढला ही जा रहा है, अंधेरा हुआ ही जा रहा है... जल्दी से झोला वापस लिया, कंधे पर टांगा, टटोल कर देखा--ईंटें अपनी जगह हैं। फिर दोनों चल पड़े। तेजी से चले जा रहे हैं। कोई दो मील चलने के बाद--लेकिन गांव का कोई पता नहीं, रास्ता लगता है भटक गए हैं--युवक से कहा कि बड़ी मुसीबत है, गांव का कुछ पता नहीं है, रात उतर आई, देर होने लगी। गांव पहुंचना जल्दी जरूरी है। दीया भी नहीं दिखाई पड़ता दूर अंधेरे में कहीं कोई। कोई झोपड़ा भी दिखाई नहीं पड़ता। क्या हम रास्ता तो नहीं भूल गए?

युवक हंसने लगा। उसने कहा, आप फिकर न करें। अब हम रास्ता भी भूल जाएं तो कोई चिंता की बात नहीं। चिंता तो मैं कुएं के पास ही फेंक आया।

घबड़ा कर गुरु ने जल्दी से झोले में हाथ डाला। समझ में आ गया कि चिंता का क्या मतलब! झोले में देखा तो दो पत्थर के टुकड़े थे। एक क्षण तो धक्का लगा। एक क्षण को तो हृदय नहीं धड़का होगा। एक क्षण को तो सांस अटक गई होगी। लेकिन फिर गुरु को समझ में भी बात आ गई। समझ में इसलिए आ गई कि दो मील से वह पत्थर ढो रहा था और चिंतित हो रहा था सोने के लिए। सोना था ही नहीं। झोला उसने वहीं गिरा दिया। हंसने लगा। उसने कहा, तूने अच्छा किया कि चिंता फेंक दी। मैं खुद ही परेशान हो रहा था, मगर फेंक न पाता, मैं न फेंक पाता। अब हम यहीं सो जाएं। अब गांव वगैरह क्या जाना! अब इसी झाड़ के नीचे आराम कर लें। अब कोई फिकर ही न रही।

भगवानदास आर्य, तुमसे मैं यही कहता हूं। तुम जो ढो रहे हो, जब तक तुम सोचते हो सोना है, तब तक तो ठीक। है तो सोना नहीं, मगर कम से कम ढोओगे, सुख से ढोओगे कि सोना है। मेरे पास आते रहे तो दिखाई पड़ना शुरू हो जाएगा कि पत्थर है। और तब मुसीबत होगी। छोड़ न पाओगे पुरानी आदत सोने को पकड़ने की। और अब जान भी लिया कि पत्थर है, सोना नहीं है। अब विडंबना पैदा होगी। अब तुम किंकर्तव्यविमूढ़ अपने को अनुभव करोगे। वही मेरी प्रतीति है जो तुम्हें हो रहा है।

तुम छोड़ दो पुराने कचरे को, झोला खाली करो, मैं भरने को राजी हूं। और मैं अपने से नहीं भरूंगा। यही भेद है। यही बुनियादी भेद है। पंडित-पुरोहित अपने से भर देते हैं तुम्हारे प्राणों को। सदगुरु वही है जो तुम्हें दूसरे से तो खाली कर देता है, ताकि तुम अपने से भर सको। पत्थर हटा देता है, ताकि तुम्हारे झरने मुक्त हो जाएं, तुम्हारे जल-स्रोत मुक्त हो जाएं, तुम्हारा अमृत-रस मुक्त हो जाए। तुम्हारे भीतर विराट झरने छिपे पड़े हैं। जरा से पत्थर हटाओ, और तुम सागर हो। कहीं मांगने नहीं जाना है। जिसको तुम मांग रहे हो वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। किसी से मांगना नहीं है। किससे मांग रहे हो, मालिकों का मालिक तुम्हारे भीतर मौजूद है!

न सुकूने-दिल की है आरजू, न किसी अजल की तलाश है
तेरी जुस्तजू में जो खो गई, मुझे उस नजर की तलाश है
जिसे तू कहीं भी न पा सका, मुझे अपने दिल में वो मिल गया
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या, ये नजर-नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...
तुझे दो जहां की खुशी मिली, मुझे दो जहां का अलम मिला
वो तेरी नजर की तलाश थी, ये मेरी नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...
मेरी राहतों को मिटा के भी, तेरे गम ने दी मुझे जिंदगी
तेरा गम नहीं यूं ही मिल गया, मेरी उम्र भर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू...
रही "नूर" मेरी ये आरजू, न रहे ये गर्दिशे-जुस्तजू
जो फरेबे-जल्वा न खा सके, मुझे उस नजर की तलाश है
न सुकूने-दिल की है आरजू, न किसी अजल की तलाश है
तेरी जुस्तजू में जो खो गई, मुझे उस नजर की तलाश है
जिसे तू कहीं भी न पा सका, मुझे अपने दिल में वो मिल गया
तुझे जाहिद इसका मलाल क्या, ये नजर-नजर की तलाश है

जिसको तुम खोज रहे हो, वह तुम्हारे भीतर मौजूद है। जिसके लिए तुम जन्मों-जन्मों से भटक रहे हो, उसे एक क्षण को भी तुमने गंवाया नहीं है, वह सदा से तुम्हारे भीतर बैठा है। अपने भीतर लौट आओ। जरा लौटो, बस इतना ही तो मेरा शिक्षण है। अपनी तरफ आंख खोलो। अपनी किताब खोलो। अपने प्राणों को पढ़ो। अपनी आत्मा को पहचानो। और फिर कोई असंतोष नहीं, कोई दुख नहीं, कोई पीड़ा नहीं। स्वर्ग के द्वार खुल जाते हैं।

दूसरा प्रश्नः ओशो, अतीत के सभी ज्ञानी, जिनमें पिछली सदी के परमहंस रामकृष्ण को भी सम्मिलित करना उचित होगा, स्त्री के बहुत विरोध में थे। इसका क्या कारण हो सकता है? ज्ञान को उपलब्ध होने के बाद भी उन्हें स्त्री में विशेष खतरा क्यों नजर आया किया? क्या ज्ञानोपलब्धि के बाद भी कुछ अतीत के संस्कार शेष रह जाते हैं?

सुलोचना भारद्वाज,

मैं तुम्हारे अतीत के ज्ञानियों को जितना ही विचारता हूं, सोचता हूं, उतनी ही एक बात साफ होती चली जाती है कि उन सौ में से निन्यानबे तो सिर्फ तुम्हारी मान्यता के कारण ज्ञानी हैं। शायद एकाध सच में जागा है। और जो जागा है उसकी भी मजबूरी है। मजबूरी है यह कि उसे अपने युग की भाषा में बोलना पड़ेगा।

सौ में से निन्यानबे तो जागे हुए नहीं हैं। यह कहता हूं तो लोगों को कष्ट होता है। तुम कहो तो मैं उनके नाम भी गिना दूं, लेकिन लोगों की भावनाओं को बड़ी ठेस लगती है। लोगों की भावनाएं क्या हैं? छुई-मुई!

तुमने लजनू नाम का पौधा देखा? जरा हाथ से छू दो कि बस लाज खा जाता है। पत्ते कुम्हला जाते हैं, मुरझा जाते हैं, डाल झुक जाती है। लजनू--ऐसी दशा है लोगों की। तैयार ही बैठे हैं लाज खा जाने को। तैयार ही

बैठी है उनकी भावना ठेस खा जाने को। उघाड़े ही बैठे हैं कि आ बैल, सींग मार! और फिर चीख-पुकार मचाते हैं।

सौ में निन्यानबे तो तुम्हारे ज्ञानी ज्ञानी नहीं हैं, पंडित हैं, जानकार हैं, प्रबुद्ध नहीं। और वह जो एक प्रबुद्ध भी है, उसकी भी मजबूरी है। वह भी अपने युग की ही भाषा में बोल सकता है। दूसरे युग की भाषा में बोलेगा भी कैसे? आखिर महावीर बोलेंगे तो पच्चीस सौ साल पहले की भाषा में ही बोलेंगे। मैं जिस भाषा में बोलता हूं उसमें कैसे बोल सकते हैं? मेरे बाद पच्चीस सौ साल बाद जो लोग बोलेंगे, निश्चित ही वे अपने समय की भाषा में बोलेंगे। वे मेरी भाषा में नहीं बोल सकेंगे। बोलना तो किसी भाषा में पड़ेगा। और भाषा के अपने निहित अर्थ होते हैं। और भाषा सिर्फ वही नहीं होती जो तुम बोलते हो, जो तुम सोचते हो, विचारते हो। भाषा के कारण ही तो दुनिया में तीन सौ धर्म हैं। ये विभिन्न भाषाओं के कारण। ये बोलने के अलग-अलग लहजे, अलग-अलग शैलियां, अलग-अलग समयों की शैलियां।

रामकृष्ण परमहंस वही पुरानी भाषा में बोल रहे हैं, यद्यपि वे जाग्रत पुरुष हैं। उन सौ लोगों में से एक में मैं उनकी गिनती करता हूं। रामकृष्ण परमहंस और महर्षि दयानंद दोनों समकालिक थे। महर्षि दयानंद की गिनती मैं निन्यानबे लोगों में करता हूं, परमहंस रामकृष्ण की गिनती मैं एक व्यक्ति में करता हूं। लेकिन बेपढ़े-लिखे थे। आधुनिक बिल्कुल नहीं थे। दूसरी कक्षा तक पढ़े थे। ग्रामीण थे, ग्राम्य उनकी भाषा है।

यह जान कर तुम्हें हैरानी होगी, हालांकि कोई किताब यह लिखती नहीं, लेकिन पीढ़ी दर पीढ़ी जिन लोगों ने रामकृष्ण से संबंध रखा है, उनसे मुझे पता चला है। मेरे एक प्रोफेसर उस परिवार में से आते हैं जिनके दादा-परदादा रामकृष्ण के सत्संगियों में से थे। ऐसे बंगाल में बहुत से परिवार हैं जिनकी पिछली पीढ़ियों में से किसी ने रामकृष्ण का सत्संग किया। उन सबका कहना है कि वे मां-बहन की गाली भी देते थे।

अब तुम बहुत चौंकोगी, सुलोचना भारद्वाज, कि रामकृष्ण परमहंस! और मां-बहन की गालियां देते थे! मगर परमहंसों का कुछ न पूछो। ग्राम्य थे और आधुनिकता से तो बिल्कुल परिचित नहीं थे। इसलिए भाषा जो बोल रहे थे वह कम से कम दो-ढाई हजार साल पुरानी थी। उस भाषा में अध्यात्म पर्यायवाची थाः कामिनी-कंचन का त्याग करो। हालांकि इस बात में कुछ सचाई है, मगर सचाई कुछ ऐसी है कि समझनी पड़े।

अगर तुम मुझसे पूछो तो मैं कहूंगा कि जो व्यक्ति अध्यात्म को उपलब्ध होता है, वह कामिनी और कांचन का अतिक्रमण कर जाता है। मैं भी वही कह रहा हूं। कामिनी और कांचन का अतिक्रमण कर जाता है, जो व्यक्ति समाधि को उपलब्ध होता है। जिस व्यक्ति ने स्वयं के आनंद को पा लिया वह क्यों किसी और में आनंद खोजेगा? आखिर स्त्री में या पुरुष में हम आनंद क्यों खोजते हैं? क्योंकि खुद दुखी हैं। कहीं और से मिल जाए। पुरुष स्त्रियों की तरफ देख रहे हैं, स्त्रियां पुरुषों की तरफ देख रही हैं कि आनंद किसी से मिलेगा। मां-बाप बच्चों की तरफ देख रहे हैं, बच्चे मां-बाप की तरफ देख रहे हैं कि आनंद किसी से मिलेगा। सब किसी और की तरफ टकटकी लगाए बैठे हैं। और आनंद का स्रोत भीतर है। और जब भीतर के स्रोत का पता चल जाता है तो स्वभावतः बाहर की आकांक्षा अपने आप विलुप्त हो जाती है।

पुरानी शैली यह थी कि कामिनी-कांचन का त्याग करो तो समाधि मिलेगी। और मैं तुमसे कहना चाहता हूं, ज्यादा वैज्ञानिक यह होगा कहना कि समाधि को उपलब्ध हो जाओ, अपने आनंद को पा लो, कामिनी-कांचन का अतिक्रमण हो जाता है। त्याग शब्द का भी उपयोग नहीं करूंगा, क्योंकि त्याग में चेष्टा मालूम होती है--छोड़ना। नहीं, मैं कहूंगाः छूट जाता है।

और छोड़ने में और छूट जाने में जमीन-आसमान का फर्क हो जाता है। जब तुम छोड़ते हो, तो तुम भयभीत हो जाते हो। जिसको छोड़ा है उससे भागते हो, कि कहीं फिर न पकड़ जाओ। हालांकि धन किसी को पकड़ता नहीं, तुम्हीं धन को पकड़ते हो। इसलिए भय यही है कि कहीं मैं ही फिर न पकड़ लूं। पुरानी धारणा। और अभी आत्मज्ञान तो हुआ नहीं है, समाधि तो मिली नहीं। समाधि पाने के लिए धन छोड़ा है। अब समाधि

कब मिलेगी, क्या पता! इस बीच धन फिर मिल जाए, फिर रास्ते में मिल जाए, तो विचार उठने लगे कि अब समाधि जब मिलेगी, मिलेगी, अगले जन्म में देखेंगे, कोई जल्दी क्या है? अब यह धन तो पड़ा मिल गया, इसको क्यों छोड़ना? इसको तो भोग ही लो। और बहाने और तर्क तो आदमी खोज ही ले सकता है कि जब परमात्मा ने भेजा ही है, प्रसाद-स्वरूप... जैसे संजीव रेड्डी कहते हैं कि उनको राष्ट्रपति परमात्मा ने बनाया है, परमात्मा का प्रसाद।

गजब का प्रसाद परमात्मा बांट रहा है! परमात्मा भी लगता है अंधा हो गया। कहावत है न--अंधा बांटे रेवड़ी, देख-देख कर दे! पहचान-पहचान कर देता है, अपना वाला है कि नहीं। अब ये संजीव रेड्डी! इनको रेवड़ी मिली। सत्तर करोड़ के इस देश में अंधे ने रेवड़ी बांटी, इनको दी! इनमें क्या खूबी थी? शायद रेड्डी और रेवड़ी में कुछ थोड़ा सा तुकबंदी हो तो हो, और तो कुछ कारण दिखाई नहीं पड़ता।

और अब? यह अभी पंद्रह दिन पहले ही उन्होंने कहा था कि परमात्मा के प्रसाद से मुझे यह रेवड़ी मिली। और अभी पंद्रह दिन बाद ही कहने लगे कि रेवड़ी सड़ी है, कि यह राजनीति तो बिल्कुल सड़ी-गली है। अगली बार मुझे राष्ट्रपति नहीं बनना है।

यह बड़ा मजा हो गया। पंद्रह दिन पहले कह रहे थेः परमात्मा ने रेवड़ी दी। परमात्मा की रेवड़ी भी सड़ी-गली निकल गई! और अगर परमात्मा फिर रेवड़ी दे तो फिर क्या करोगे? माने ही नहीं, वह कहे कि नहीं, रेड्डी, लेना ही होगा! हम तो रेवड़ी तुम्हीं को देंगे! हमें कोई और जंचता ही नहीं। हम तो तुम्हीं को देंगे। तुमने खूब सम्हाल कर भी रखी! फिर क्या करोगे? क्या परमात्मा के प्रसाद को इनकार कर दोगे?

कैसे-कैसे आदमी धोखे अपने को देते हैं और दूसरों को देते हैं! परमात्मा का प्रसाद था, पंद्रह दिन में सड़ा-गला हो गया। और अब नहीं लेना इनको। अब ये कहते हैं, हमें राष्ट्रपति बनना ही नहीं! अरे तो पहले ही क्यों नहीं कह दिया कि हमें बनना ही नहीं है? तो परमात्मा और बड़ी रेवड़ी देता! मगर अब दिखता है कि रेवड़ी छिन जाएगी। इसके पहले कि छिने, साफ कह दो कि हमें चाहिए ही नहीं। अरे हमें लेना ही नहीं। हमें इस रेवड़ी में कोई रस नहीं। यह सड़ी-गली रेवड़ी! इसमें रखा क्या है?

धन मिल जाए, अगर तुम धन छोड़ कर भागो, तो घबड़ाहट होगी। हाथ-पैर कंपने लगेंगे। विनोबा भावे के सामने तुम रुपये ले जाओ--सौ रुपये का हरा नोट--और वे एकदम से आंख बंद कर लेते हैं! तुम ले जाकर देख लो। इसको अध्यात्म माना जाता है कि उन्होंने आंख बंद कर ली। मगर आंख बंद करने की... कागज को देख कर आंख बंद करते शर्म नहीं आती? मराठी मानुष हैं, इन्होंने कहानी तो सुनी ही होगी न रांका-बांका की!

मराठी कहानी है कि रांका एक बड़े संत पुरुष थे। मगर ऐसे ही संत पुरुष--भगोड़े, छोड़ कर भागे। धन छोड़ दिया, त्याग कर दिया धन का। लकड़ी काट-काट कर बेचते। उसी से जो मिल जाता, काम चलाते। एक बार तीन दिन वर्षा होती रही और लकड़ी काटने जाना मुश्किल हुआ। तीन दिन भूखे रहे। घर तो पैसा था नहीं पास में। मांग सकते नहीं थे--पुरानी अकड़। धन तो छूट गया, अकड़ नहीं गई थी। रस्सी जल जाती है, अकड़ नहीं जाती। अरे मांग लेते, मुहल्ले-पड़ोस वालों से मांग लेते। मगर मांगा नहीं। तीन दिन भूखे ही रहे। तीन दिन बाद गए। पत्नी भी साथ गई। क्योंकि कमजोर, तीन दिन की भूख, अकेले ला सकेंगे लकड़ी का गट्ठा या नहीं, तो दो बांट कर दो हिस्सों में ले आएंगे। लकड़ियां काटीं, बामुश्किल तो लकड़ियां काट पाए, फिर गट्ठा बांध कर चले। रास्ते में आ रहे थे कि देखा कि किसी घुड़सवार का... दिखता है, आगे-आगे एक घोड़ा निकला है, टापें अभी भी सुनाई पड़ रही हैं... उसकी बसनी गिर गई है। बसनी नगद सोने के सिक्कों से भरी है। कुछ सिक्के बसनी के बाहर भी गिर गए हैं। और सिक्के बसनी में भरे हुए हैं। सोचा रांका ने कि मैं तो पुरुष हूं... ।

पुरुष को तो हमेशा यह ख्याल है कि स्त्री तो नरक का द्वार है। पता नहीं अगर स्त्री नरक का द्वार है तो पुरुष ही नरक जा सकते हैं, स्त्रियां तो नरक जा ही नहीं सकतीं। द्वार कहां जाएगा? अरे द्वार तो द्वार पर रहेगा। इसलिए मैं तो मानता हूं कि स्त्रियों को खुश होना चाहिए कि कम से कम तुम द्वार तो हो! भेजो इन दुष्टों को,

जाने दो! द्वार तो बाहर ही रहेगा न! ये जितने भैया आएं, इनको भेजते जाओ कि चले आओ, अंदर जाओ। और निकलने मत देना बाहर। भीतर कर दिया और फिर बाहर निकलने देना मत। और द्वार तो बाहर है ही। द्वार को क्या पड़ी है? द्वार का क्या लेना-देना नरक से? यह तो फायदे की बात है। संत तो गलती में कह गए। वे समझे नहीं इसका राज कि द्वार, फिर द्वार का क्या होगा?

रांका ने भी सोचा कि यह स्त्री है, पीछे आ रही है, कहीं इसका मन न डोल जाए, कहीं धन पर इसका मन न आ जाए। इतने सोने के सिक्के, तीन दिन की भूख! परेशानी! औरत औरत है, अरे औरत का क्या भरोसा!

पुरुषों को औरत का भरोसा ही नहीं है। और इस न भरोसे का कुल कारण इतना है कि खुद का भरोसा नहीं है। नहीं तो औरत से क्या तकलीफ है? स्त्रियों को पुरुषों पर इतना गैर-भरोसा नहीं है जितना पुरुषों को है। असलियत यह है कि पुरुषों को अपने पर भरोसा नहीं है, डर है।

जल्दी से उन्होंने बसनी को डाल दिया गड्ढे में और मिट्टी से पूरने लगे। तभी उनकी पत्नी आ गई। उसने पूछा, क्या करते हो? तो सच बोलने की कसम खाई थी, इसलिए मजबूरी में सच बोलना पड़ा। कहा कि अब तुझसे कैसे छिपाऊं! मैंने कसम खा ली है सच बोलने की। यहां अशर्फियां पड़ी थीं--सोने की अशर्फियां, चमकती हुई अशर्फियां--सोचा कहीं तेरा मन न आ जाए। इसलिए उनको गड्ढे में दबा कर मिट्टी से ढांक रहा हूं।

स्त्री खिलखिला कर हंसी। उसने कहा, यह भी हद हो गई! और तुम तो मुझे समझाते थे कि सोना मिट्टी है। मिट्टी में मिट्टी को दबाते तुम्हें शर्म नहीं आती? और तुम्हीं तो मुझे समझाते थे कि सोना मिट्टी है! और अब मिट्टी को मिट्टी में दबा रहे हो? अभी तुम्हें सोना दिखाई पड़ता है? अभी चमकदार सोना दिखाई पड़ता है?

तब से ही उनकी स्त्री का नाम बांका हुआ। रांका को मात दे दी न, इसलिए बांका!

अब विनोबा भावे को पता होगा--रांका और बांका की कहानी। महाराष्ट्र की ही घटना है। लेकिन वे भी नोट को देख कर आंख बंद कर लेते हैं। अरे जब कागज ही है तो आंख क्या बंद करना! दूसरे किसी कागज को देख कर आंख नहीं बंद करते, इसी कागज का क्या कसूर है? आंख बंद करने की क्या जरूरत?

कहीं भीतर रस मौजूद है। कहीं भीतर किसी न किसी तल पर रस मौजूद है। यह जो भीतर का रस है, वही इन उदघोषणाओं में प्रकट हुआ है। स्त्री का विरोध इसी भय के कारण शुरू हुआ।

तू जो पूछती है, सुलोचना, ठीक पूछती है कि "अतीत के सभी ज्ञानी, जिनमें पिछली सदी के परमहंस रामकृष्ण को भी सम्मिलित करना होगा"--करना ही होगा--"स्त्री के बहुत विरोध में थे। इसका क्या कारण हो सकता है?"

वे जो निन्यानबे झूठे संत हैं, जो स्त्रियों को, धन को छोड़ कर भागे हैं, उन्होंने बड़ा तूफान मचा रखा है। उन्होंने भाषा निर्णीत की, उन्होंने आध्यात्मिक बोलने का ढंग निर्णीत कर दिया। रामकृष्ण जैसे लोग गैर पढ़े-लिखे हैं, सुशिक्षित नहीं हैं, वे इसी भाषा को बेचारे बोलते हैं जो भाषा उन्होंने सुनी है। यद्यपि रामकृष्ण भलीभांति जानते हैं कि वे मुक्त हैं।

तुम जान कर हैरान होओगे कि रामकृष्ण अपनी पत्नी को मां कहते थे। और यूं नहीं कि बाद में कहने लगे थे। रामकृष्ण जब चौदह साल के थे, तब उनको पहली समाधि हुई। आ रहे थे अपने खेत से वापस। झील के पास से गांव में से गुजरते थे। सुंदर गांव की झील, सांझ का समय, सूरज का डूबना, बस डूबा-डूबा! सूरज की डूबती हुई किरणों ने, आकाश में फैली छोटी-छोटी बदलियों पर बड़े रंग फैला रखे हैं। वर्षा के दिन करीब आ रहे हैं। काली बदलियां भी छा गई हैं, घनघोर! जल्दी रामकृष्ण लौट रहे हैं। तभी बगुलों की एक पंक्ति झील से उड़ी और काली बदलियों को पार करती हुई निकल गई। काली बदलियों से सफेद बगुलों की पंक्ति का निकल जाना, जैसे बिजली कौंध गई। यह सौंदर्य का ऐसा क्षण था कि रामकृष्ण वहीं गिर पड़े। घर उन्हें लोग बेहोशी में लाए। लोग समझे बेहोशी है, वह थी मस्ती। बामुश्किल से वे होश में लाए जा सके।

उनसे पूछा, क्या हुआ?

उन्होंने कहा, अदभुत हुआ, बड़ा आनंद हुआ! बार-बार ऐसा ही होना चाहिए। अब मुझे होश में रहने की--जिसको तुम होश कहते हो--उसमें रहने की कोई इच्छा नहीं!

गांव के लोगों ने, घर के लोगों ने सोचा कि लड़का बिगड़ा जा रहा है। यह तो मामला खराब है। यह ऐसे भी साधु-संग करता था, जाता था सुनने सत्संग, तब तक भी ठीक था; अब यह समाधि में भी जाने लगा। अब यह बेहोश हो-हो कर गिरने लगा। यह मामला बिगड़ा जा रहा है। यह हाथ से गया। गदाधर उनका नाम था। जो घर के लोगों का आम सोचने का ढंग होता है, उन्होंने कहा, जल्दी से इसके विवाह वगैरह का इंतजाम करो, हथकड़ी-बेड़ी डाल दो, तो यह रास्ते पर आ जाएगा। सो रामकृष्ण से पूछा कि बेटा, विवाह करोगे?

रामकृष्ण ने कहा, करेंगे!

घर के लोग थोड़े चौंके। उन्होंने सोचा था यह इनकार करेगा।

उन्होंने कहा, जरूर करेंगे! किससे करना है?

घर के लोगों ने कहा, अरे! हम तो सोचते थे तू सत्संगी हो गया है, समाधि लगने लगी और गांव में बड़ी चर्चा है कि तू ज्ञानी हुआ जा रहा है। इसीलिए तो विवाह कर रहे हैं। और तू कहता है करेंगे, किससे करना है? तू इतनी जल्दी में है!

पास में ही गांव में एक लड़की खोजी गई। रामकृष्ण को दिखाने ले गए। रामकृष्ण को जब लड़की मिठाई परोसने आई। बंगाल, तो वहां संदेश परोसा होगा। जब संदेश उसने रामकृष्ण की थाली में रखे, रामकृष्ण ने देखा। शारदा उसका नाम था। खीसे में जितने मां ने रुपये रख दिए थे, सब निकाल कर उसके पैरों पर चढ़ा दिए, और कहा कि तू तो मेरी मां है। शादी हो गई।

लोगों ने कहा, तू पागल है रे! पहले तो शादी करने की इतनी जल्दी की और अब पत्नी को मां कह रहा है! कुछ अक्ल है? बेअक्ल कहीं का!

मगर उसने कहा कि यह तो मेरी मां है। शादी होगी, मगर यह मेरी मां ही रहेगी।

शादी भी हो गई। शादी में इनकार नहीं किया। इसको मैं खूबी कहता हूं रामकृष्ण की। इसलिए रामकृष्ण से मुझे प्रेम है, एक लगाव है। यह आदमी अदभुत है। शादी करने में इनकार ही नहीं किया। नोट देख कर आंख बंद करने वाला आदमी नहीं है यह। अरे शादी से भी नहीं भागा। मगर शादी भी किस मस्ती से की! कहा कि मेरी मां है। और फिर जीवन भर मां ही माना। मां ही कहते थे वे शारदा को। और हर वर्ष जब बंगाल में काली की पूजा होती, तो वे काली की पूजा तो साल भर करते थे, मगर जब काली की पूजा का दिन आता है, उस दिन वे शारदा की पूजा करते थे। और यूं नहीं, तुम थोड़े चौंकोगे, शारदा को नग्न बिठा लेते थे सिंहासन पर। नग्न शारदा की पूजा करते थे। नोट भी यूं नहीं कि कागज में लपेटा हो--अरे बिल्कुल नोट, खाली नोट! शारदा को नग्न बिठा लेते सिंहासन पर। और फिर चिल्लाते, रोते, नाचते, मां और मां की गुहार मचा देते। शारदा पहले तो बहुत बेचैन होती थी कि किसी को पता न चल जाए, कि यह तुम क्या कर रहे हो! कोई क्या कहेगा! मगर धीरे-धीरे शारदा के जीवन में भी रामकृष्ण ने क्रांति ला दी।

रामकृष्ण की भाषा जरूर पुरानी है, सुलोचना, लेकिन रामकृष्ण उन सौ में से एक व्यक्तियों में से हैं। उन्होंने पत्नी को छोड़ा नहीं, हालांकि वे कहते यही रहेः कामिनी-कांचन से मुक्त हो जाओ! पुरानी भाषा। वे करें क्या? नई भाषा का उन्हें पता नहीं था।

मैं कहूंगाः कामिनी-कांचन से मुक्त होने का सवाल नहीं है, कामिनी-कांचन का अतिक्रमण करना है। रामकृष्ण ने वही किया--अतिक्रमण किया। मगर उनको इस भाषा का साफ-साफ भेद नहीं था। वे बोलते रहे पुराना ढंग, पुरानी शैली।

मगर रामकृष्ण जैसे सभी लोग नहीं हैं। निन्यानबे ज्ञानी तो, सुलोचना, अज्ञानी हैं, महाअज्ञानी हैं। वे सिर्फ बकवास कर रहे हैं। वे अपने भय का सिर्फ निवेदन कर रहे हैं। वे दो चीजों से डरे हैंः स्त्री से डरे हैं,

क्योंकि स्त्री में सुख की आशा मालूम पड़ती है और धन से डरे हैं। बस दोनों को गालियां दे रहे हैं। उनकी गालियां सबूत हैं कि उनके भीतर रस मौजूद है।

अब वक्त आ गया कि यह पुराना ढर्रा बंद होना चाहिए। इसलिए मैं धर्म को नई भाषा देने की कोशिश कर रहा हूं। स्वभावतः मुझे गालियां पड़ेंगी। क्योंकि वे निन्यानबे लोग मेरी भाषा की बदलाहट से स्वभावतः नाराज होने वाले हैं। उनके तो हाथ से धंधा गया। उनकी तो मैं जमीन खींचे ले रहा हूं। हां, सौ में से वह जो एक व्यक्ति है, वह मेरे साथ राजी होगा। रामकृष्ण जैसा व्यक्ति मेरे साथ राजी होगा। रामकृष्ण मुझे मिल जाएं तो मैं उनकी भाषा बदल दूं। वे मुझसे राजी हो जाएंगे। वे कहेंगे, अरे यही मैं कहना चाहता था, मगर मुझे कहने का पता नहीं था! मुझे जो पता था, वैसा मैंने कह दिया था। यही कहना चाहता था।

जीसस मुझे मिल जाएं, मुझसे राजी होंगे। बुद्ध मुझे मिल जाएं, मुझसे राजी होंगे। लेकिन जिन बुद्धुओं को तुम ज्ञानी समझ रही हो, वे मुझसे राजी नहीं हो सकते।

आज इतना ही।